Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री चारित्रस्मारक ग्रंथमाला पु० नं० ३१

Shvetamber-Digamber.

Part I, II

श्वेताम्बर-दिगम्बर

भा. १-२

By,
Muni Darshan Vijaya.

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रीचारित्रस्मारक ग्रन्थमाला पु० नं० ३०

श्वेताम्बर-दिगम्बर।

(समन्वय)

भाग. १-२

कर्त्ता—
मुनि दर्शनविजय.

प्रकाशक—
शा. मफतलाल माणेकचंद.

वी० सं० २४६९ } मूल्यं { क० चा० सं० २५
वि० सं० २००० } २—४—० { यी० सं० १९४३

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राप्ति-स्थान.

१ शा. मफतलाल माणेकचंद.
पत्ता–बोरडी बजार,
मु० वीरमगाम. (गुजरात)

२ पं. कांतिलाल दीपचंद देशाई.
पत्ता–पटेलका माढ, मादलपुरा
पो. एलीसब्रीज,
मु. अमदावाद. (गुजरात)

मुद्रक :—

A भाग १ ला
राजमलजी लोढा
भारत प्रीन्टींग प्रेस. अजमेर

B भाग २ रा
हीरालाल देवचंद शाह.
शारदा मुद्रणालय, सेन्ट्रल टॉकीझ
के पांस, पानकोर नाका–अमदावाद.

નાગજીભુદરની પોળના ઉપાશ્રયના જ્ઞાનખાતાની રકમમાંથી રૂ. ૩૬૯–૮–૦ ની મદદ આ પુસ્તકના બીજા ભાગના ખર્ચ પેટે મળેલ

પ્રકાશક.

इस ग्रन्थके पूर्व ग्राहक

प्रति	नाम	स्थान
१००)	श्रीमती पोपटबहिन मारफत श्रीमान् शाह सदुभाई तलकचंद.	अहमदावाद।
२५)	सेठ हमीरमलजी गोलेच्छा द्वारा,	जैन संघ, जयपुर।
१३)	श्रीमती सेठाणी सकरुबाई द्वारा,	श्राविकासंघ, जयपुर।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्राक् कथन

विक्रम सं. १९९५ के वैशाख–ज्येष्ठ महिनेमें हम देहलीमें अवस्थित थे। उस समय एक रोज एक बन्द लिफाफा मेरे पर आया। उसमें एक पत्र था, जिसे स्थानकमार्गी सम्प्रदायके माननीय प्र० व० पं० चौथमलजीस्वामी के साथवाले मुनि सुखमुनिजीने भेजवाया था। वह पत्र निम्न प्रकार है—

"बडौत (मेरठ) ता. ३–६–३८ इ.

"श्रीमान् दर्शनविजयजी महाराज !

"सादर वन्दन।

"निवेदन है कि + + + + + उस 'कल्पित कथा समीक्षा' नामक पुस्तक में जैनागमों के विरुद्ध जो जो बातें लिखी गई हैं उनका प्रत्युत्तर क्या आपने दिया है! यदि नहीं तो क्यों? क्या उन बातों का प्रत्युत्तर देनेका साहस नहीं है? यदि है, तो कमर कस कर तैयार हो जाइयेगा। और आगमविरुद्ध तथा श्वेताम्बर समाज के विरुद्ध जो जो बातें उन्होंने लिखीं हैं उनका मुंहतोड उत्तर अवश्य दीजिएगा। तभी पंडिताई सार्थक होगी। ऐसा महाराज श्री सुखमुनिजीने फरमाया है। पत्रोत्तर नीचे के पते पर दीजिएगा।

"लाला न्यायतसिंहजी मोतीराम जैन.
मंडी आनंदगंज बडौत (मेरठ)

\+ + + + +

भवदीय, **दीपचन्द सुराना**"

उन मुनिओंकी इच्छा थी कि मैं कुछ लिखुं। अतः मैंने, कुछ लिखुं उसके पहिले, दिगम्बरीय शास्त्रोंका विशेष अध्ययन किया। और इस विशेष अध्ययनके फल स्वरूप, खण्डनमण्डन के रूपमें नहीं किन्तु पारस्प-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रिक समन्वयके रूपमें, यह 'श्वेताम्बर–दिगम्बर' ग्रन्थ तैयार हुआ,जिसका प्रथम–द्वितीय भाग आज श्रीसंघके करकमलमें समर्पित करता हूं। और अवशिष्ट ग्रन्थ तृतीय–चतुर्थ भाग के रूप में यथाशक्य शीघ्र प्रकाशित कराने की उम्मीद रखता हूं।

हिन्दी मेरी मातृ-भाषा नहीं है अतः इस ग्रन्थ में तद्विषयक गलतियोंका होना स्वाभाविक है। आशा है सुज्ञ पाठक उन्हें सुधार कर पढेंगे।

और अनुपयोग या दृष्टिदोषसे इस ग्रन्थ में कुछ अनुचित लिखा गया हो तो उसके लिये मैं "मिच्छामि दुक्कडं" देता हूं।

वि. सं. २०००, अ. शु. ६
ता. ८–७–४३ इ० गुरु
अहमदाबाद.

लेखक —

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वेताम्बर–दिगम्बर

भाग पहिला की अनुक्रमणिका

नाम अधिकार

विश्वव्यापि धर्म १
आजीवक से उत्पत्ति २
कुछकुछ प्रमाण ४

मुनि–उपधि

परिग्रहण लक्षण ८
नग्नता १०
(बैबल–त्रिपीटक)
निर्गन्थ (४२) १३
अचेल परिषह १६
जिनकल्प १७
उपधि त्याग १९
मोरपीच्छ आदि २२
पाँच ज़ातिके वस्त्र २३
सीर्फ नग्नता ही... २५
जितेन्द्रियता २८
आचेलक्य–कल्प २९
सामायिक में वस्त्र ३१
(अतिथि संविभाग)
गुणस्थानमें वस्त्र ३३
केवलज्ञानमें वस्त्र ३५
उपधिके दि० पाठ ३७
ऊन–पींछे ४४
पात्र ४४
(रात्रिभोजन आदि)
दंड ४७
उपधि–उपाधि ४८
उपधि से लाभ ४८
द्रव्यलिंगके खिलाफ ५१

मुनि–आचार

स्कंदक सत्कार ५६
गणधर–घोडा ५६
गोचरी–भ्रमण ५६
अजैन से आहार ५७
(भ० शीतलनाथ)
शूद्रसे गोचरी ५७
शूद्रका पानी ५८
खडे खडे आहार ५८
(एकासन–आदि)
प्रत्याख्यान आव० ५९
एक दफे आहार ५९
(तप–परिभाषा)
मांस (अष्ट मूल गुण) ६०
यादव–मांस ६२
(मयूरपीच्छ–चर्चा)
रात का पानी ६४
काम भोग ६४
उत्सर्ग–अपवाद ६७
कृत्रिम–जिनवाणी ७०
(विष्णुकुमार मुनि)
(धर्मद्वेषी को दंड)
धर्मलाभ–धर्मवृद्धि ७३

मोक्ष–योग्य

गृहस्थ ७४
(भरतचक्रवर्ती–पाठ)
(भावलिंग–प्रधानता)
आभूषण ७९
(पाण्डव–साभरण)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अजैन	७९	वेदोंका गुणस्थान	१०४
शूद्र	८०	स्त्रीके संहनन	१०६
गोत्र-व्यवस्था	८१	स्त्री की आगति	१०७
गोत्र परिवर्तन	८२	स्त्रीको अप्राप्य	१०८
गोत्रके दि० पाठ	८३	स्त्री आचार्य, अबला	११०
(जाति कल्पना)		स्त्रीकी उत्कृष्ट गति	१११
शूद्र-जिनपूजा	९०	(गति-आगति)	
शूद्र दीक्षा-मुक्ति प्रमाण	९१	(अध्यवसाय वैचित्र्य)	
फिर मना क्यों !	९६	स्त्री विज्ञान	११६
बाहुबली-अनार्य	९७	स्त्री-जिनपूजा	११९
आर्य भूमि में म्लेच्छ	९७	स्त्री मुनिदीक्षा	१२०
स्त्री मुक्ति	९८	स्त्री दीक्षा योग्यता	१२१
स्त्री की त्रुटियां	९८	(४ अनुयोग-पाठ)	
स्त्री के दूषण	९९	(अनुसंधान-पाठ)	(प्रस्ता०१२)
अभेदता	१००	फिर मना क्यों !	१३५
द्रव्य-वेद (नो कर्म)	१००	जैन-विशालता	१३५
वेदों का परावर्तन	१०२	नपुंसक-मुक्ति	१३६

समाप्त.

श्वेताम्बर-दिगम्बर

भाग दूसरे की अनुक्रमणिका

केवली अधिकार

प्रश्नका उत्थान	१	नो कर्म-आहार (छे आहार)	११
उदय प्रकृति १२२	२	कवलाहार	१२
केवली कर्मप्रकृति	३	ज्ञानावरणीय-भूख	१२
(कर्म शक्ति) (असंक्रमण)		दर्शनावरणीय-भूख	१३
वेदनीय कर्म	५	मोहनीय-भूख	१३
(ग्यारह परिषह)		प्रमाद-भूख	१३
अठारह दूषण	८	आहारक	१४
(निरीह भाव-प्रवृत्ति)		अंतराय-भूख	१४
		पसीना-	१४

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेदनीय-भूख	१४
उपचार-ताकात	१४
सताना	१५
संक्रमण	१५
आहार-कारण	१६
चार आहार	१६
(छद्म० योगधारण)	
(उपवासमें पानी)	
आहार के दि० प्रमाण	१८
रोग, निहार	२४
औदारिक-शरीर	२५
सात धातुएं-पाठ	२६
(वज्रऋषभनाराच)	
अग्निसंस्कार	२९
तीर्थ-दाढाएं	३०
उपसर्ग वध	३१
विनय	३१
(प्रदक्षिणा, आहारदान, गमन, सर्पनिवेदन, वहन, नृत्य)	
नाच (कपील०)	३२
अनासक्ति (कूर्मापुत्र)	३२
मूद्रा-आसन	३३
(नेत्र-रंग आदि)	
केवली वस्त्र	३५
भूमि-विहार	३५
(स्पर्ष-वस्त्र)	३६
वाणी-उपदेश	३६
(निरक्षरी, गणधर, मागधदेव, अतिशय, दशम द्वार, प्रश्नोत्तर, अपौरुषेय, सर्वांग)	
साक्षरीवाणीप्रमाण	४०
मन	४२
द्रव्यमन प्रमाण	४४
सिद्ध अवगाहना	४६
फिर मना क्यों!	४८

अतिशय

जन्म से १०	४९
(निहार, दाढी मूछ)	
केवल से १०	५१
(जिन-केवली, भेद)	
भूमि विहार	५१
बैठना	५२
गगन गमन	५२
(कमल संख्या)	
भूविहार दि० प्रमाण	५३
कवलाहार-प्रमाण	५३
देवकृत १४	५४
(आठ प्रातिहार्य)	
(विषमता-व्यत्यय)	
चोत्तीस अतिशय	५५
(बैबल-प्रमाण)	

तीर्थंकर

नाभिराजा-रानी	५७
(युगलिक व्यवस्था)	
ऋषभदेव-पत्नी	५९
(१०० पुत्र २ पुत्री)	
भरतसुन्दरी	५९
मातापिता निहार	६०
स्वप्न	६१
(जिनेन्द्र आगति)	
(तीन कल्याणक)	
(स्वप्न फल)	
ऋषभदेव पुत्र	६२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वार्षिक दान ६३
ऋषभदेव-वैराग्य ६४
ऋषभदेव-भोजन ६४
देवदूष्य- ६४
ऋषभदेव लोच ६५
अनार्य विहार ६५
नग्नता ६६
मारुदेवा-मुक्ति ६७
(धनुष, गजासन)
कुमार-तिर्थंकर ६७
(पुराणों का मतभेद) ६९
व्याह के दि० पाठ ७१
स्त्री तीर्थंकरी ७४
मुनि सुव्रत-गणधर ७४
(मल्लीनाथ-वर्ण)
(नेमि दीक्षाकाल)
वीर-२७ भव ७४
गर्भापहार ७६
वीर-अभिग्रह ७६
मेरु-कंपन ७७
वीर लेखशाला ७८
वीर-विवाह ७८
(जमाली-निन्हव)
देवदुष्य-दान ७९
वीर छींक ७९
वीर-उपसर्ग ८०
(आगमशैली, प्राणीवाचक वनस्पति, प्राणी जैसे नाम, वीरअहिंसा रेवती परिचय, रोग स्वरूप, मूल पाठ, कपोत-मज्जार-कुक्कुड-मंसए के अर्थ)
वीर निर्वाण वर्ष १०७
दीवाली-तिथि १०७
२०-स्थानक १०७
कल्याणक-३, २ (६२) १०८
(१७० तीर्थंकर)

आश्चर्य

१ ओर स्थानमें जन्म १०९
२ पुत्री की प्राप्ति ११०
३ अवधि प्रकाशन ११०
४ जिन-उपसर्ग १११
५ ओर स्थान में मोक्ष १११
६ चक्री-मानभंग ११२
७ वासुदेव-मृत्यु ११२
८ शलाका '५९ ११३
९ नारद रुद्र ११४
१० कल्कि-उपकल्कि ११४
विच्छेद ११५
(आ० कुंदकुंद)
ब्राह्मण कुल ११८
बडी-आयू ११९
(भद्र० चंद्र) (आ०धरसेन)
१ अट्ठसयसिद्ध १२०
२ असंयत पूजा १२२
३ हरिवंश १२२
४ स्त्री तीर्थ १२४
५ अपरकंकागमन १२८
६ गर्भापहार (गर्भ विज्ञान) १२८
७ चमरोत्पात १३४
८ अभाविता पदिषद् १३५
९ उपसर्ग १३७
१० सूर्य-चंद्रावतरण १३७
(मृगावती)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आधार–ग्रन्थ

जैन ग्रंथ

आचारांग
सूत्रकृतांग
ठाणांग
भगवतीसूत्र
उपासकदशांग
उववाई सूत्र
जीवाभिगम
पन्नवणा
अनुयोगद्वार
पयन्नय
आवश्यक निर्युक्ति
विशेषावश्यक भाष्य
उत्तराध्ययन
दशवैकालिक
बृहद् कल्प भाष्य
तत्वार्थ सूत्र
,, भाष्य–टीका
,, भाषा–
ललित विस्तरा
षड्दर्शन समु०
बृहद्क्षेत्रसमास
पंच वस्तु
कल्याण मन्दिर
भक्तामर
प्रवचन सारोद्धार
त्रिषष्ठी० चरित्र
परिशिष्ट–पर्व
योग शास्त्र
अभिधान चिंतामणि
,, राजेन्द्र
कर्मग्रन्थ
प्रबंध चिंतामणि
लोक प्रकाश
तपगच्छ पट्टावली
हीमवंत स्थवीरावली
काल संबंधी विचारणा
सम्राट खारवेल लेख

अखबार

जैन
जैन धर्म प्रकाश
जैन सत्य प्रकाश

दिगम्बर–ग्रन्थ

अंगपन्नत्ति
अनगार धर्मामृत
आदिपुराण
आराधना (मूल)
,, विजयोदया
उत्तरपुराण
कथाकोष
बृहद् कथाकोष
पुण्याश्रव कथाकोष
आराधना कथाकोष
कल्याण आराधना
कार्तिकेयानुपेक्षा
कुंदकुंद चरित्र
कुंदकुंद गुटका
केवलिमुक्ति प्रकरण
गोम्मट सार
गौतम चरित्र
चारित्रसार
चर्चा सागर
चर्चा० समीक्षा
छेदपींडम्
छेदशास्त्र
जैनसिद्धांत संग्रह
जैनधर्मकी उदारता
जैनाचार्योंके शासनभेद
जंबूचरित्र
तत्वार्थाधिगम
,, सर्वार्थसिद्धि
,, राजवार्तिक
,, श्लोकवार्तिक
,, सार
,, श्रुतसागरी
,, भाषा–टीका
तिलोयपन्नति
तिलोय सार
त्रिवर्णाचार–३
दर्शन सार
दशभक्त्यादि
दि० पट्टावली
देवशास्त्र गुरुपूजा
द्रव्यसंग्रह
धर्म परीक्षा
नंदीश्वर भक्ति
नंदीश्वर० पूजा
निर्वाण कांड
निर्वाण भक्ति
नीतिसार
नीति वाक्यामृत
प्रवचन सार

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रवचन चरणानुयोग
 -चूलिका
प्रवचन सारोद्धार
पंचास्तिकाय
परमात्म प्रकाश
पद्म चरित्र
पद्मपुराण समीक्षा
पार्श्वपुराण
पुरुषार्थ सिद्धि
प्रायश्चित चूलिका
,, संग्रह
बनारसी विलास
बाईश परिषह
ब्राह्मणोकी उत्पत्ति
भद्रबाहु संहिता
भ्रम निवारण
भाव संग्रह
मनोमति खंडन
महा पुराण
महावीर और बुद्ध
मुनिवंशाभ्युदय
मूलाचार
मोक्षमार्ग प्रकाशक
यशस्तिलकं
रत्नमाला
राजावली
लब्धि सार
लाटी संहिता
वरांग चरित्र
बर्धमान पुराण
विद्वद् जन बोधक
शिलालेख संग्रह

विरंचीपुर सं०
श्रवणबेलगोल सं०
 श्रावकाचार
रत्नकरंड ,,
धर्मसंग्रह ,,
प्रश्नोत्तर ,,
आशाधरीय ,,
मेधाविकृत ,,
सकलकीर्ति० ,,
अमृतचंद्र ,,
श्रुतसागरी टीकाएं
श्रुतावतार
शूद्र मुक्ति
षट् खंडागम
,, धवला
,, जयधवला
,, महाधवल
षट् प्राभृत
दर्शन ,,
चारित्र ,,
लींग ,,
बोध ,,
मोक्ष ,,
भाव ,,
सूत्र ,,
समयसार (प्राभृत)
समयसार प्रस्तावना
सत्यसमीक्षा
सम्यक्त्व कौमुदी
समाधि तंत्र
समाधि भक्ति
सागार धर्मामृत

सिद्धांतसार प्रदीप
सुअखंधो
सुदर्शन चरित्र
सूर्य प्रकाश
सोमा रानी चरित्र
स्त्री मुक्ति प्रकरण
स्त्रीमुक्ति (हींदी)
स्वामी समन्तभद्र
स्वयंभू स्तोत्र
हरिवंश पुराण
हरिवंश घत्ताबंध
हरिवंश बचनिका
ज्ञानार्णव

दि० अखबार

अनेकान्त
खंडेलवाल हितेच्छु
जीनविजय (कनडी)
जैन गजट
जैन जगत्
जैन दर्शन
जैन मित्र
जैनसिद्धांत भास्कर
वीर

बौद्ध-ग्रंथ

अवदान कल्प लता
दिव्यादान
मज्झिम निकाय
महा सच्चक
महा सीहनाद
महा सुकुलदायी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विभीन्न-ग्रंथ

अभिधान संग्रह
अभिधान निघण्टु
अमर कोष
कयदेव निघंटु
तामोल शब्द कोष
निघंटु रत्नाकर
भावप्रकाश निघंटु
वागूभट्ट

वैद्यक शब्दसिंधु
शब्द चिंतामणि
शब्द सागर
शब्द सिन्धु
शब्द स्तोम महानिधि
शालिग्राम निघंटु
पाणिनीय
भागवत
गीताजी

मत्स्य पुराण
बैबल
जीव-विज्ञान
कल्पित कथासमीक्षा
मोडर्नरीव्यु
एपिग्राफिका इन्डिका
एन् साईक्लोपीडिया
ओफ रीलीजियन
एन्ड एथिक्स वो०
१ पृ०२५९

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाग १ पृष्ट १३४ के अनुसन्धानमें

स्त्रीदीक्षा–मुक्ति के पाठ.

पमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे । +++ तिण्णिअंतो मुहुत्तब्भहिय अट्ठवस्से णूण अट्ठेदालीस ४८ पुव्वकोडिओ पमत्तुक्कस्स अंतरं होदि । (पृ० ५२)

अपमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे ।

तीहिअंतो मुहुत्तेहिं अब्भहिय अट्ठवस्सेहिं ऊणाओ अट्ठेदालीस पुव्व कोडिओ उक्कस्स अंतरं । पज्जत्त मणुसिणीसु एवं चेव । णवरि पज्जत्तेसु चउवीस पुव्वकोडिओ, मणुसिणीसु अट्ठ पुव्वकोडिओत्ति वत्तव्वं (पृ० ५३)

इत्थी वेदेसु पमत्तस्स उच्चदे ।

अट्ठवस्सेहिं तीहिं अंतो मुहुत्तेहिं ऊणिया त्थीवेदट्ठिदी लद्धमुक्कस्संतरं । एवमपमत्तस्स वि उक्कस्संतरं भाणिदव्वं, विसेसा भावा (पृ० ९६)

(छक्खंडागमे जीवट्ठाणं–अंतराणुगमे अंतरपरूवणं पु० ५वाँ)

वेदाणुवादेण इत्थि वेदएसु दोसु वि अद्धासु (अपूव्व–अणिवट्टिकरणेसु) उवसमा पवेसेण तुल्ला थोवा (१० होनेसे) ॥ सूत्र–१४४ ॥ (पृ० ३००)

खवा संखेज्जगुणा (२० होनेसे) ॥सूत्र–१४५॥

अप्पमत्त संजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥१४६॥

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥१४७॥

संजदा संजदा असंखेज्जगुणा ॥१४८॥

पमत्त अपमत्त संजदट्ठाणे सव्वथोवा खइय सम्मादिट्ठी ॥१५६॥ (पृ० ३०३)

उवसम सम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदग सम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एवं दोसु अद्धासु ॥ १५९ ॥

इसीप्रकार अपूर्व करण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्री–वेदिओं का अल्प बहुत्व है ॥ १५९ ॥ (पृ० ३०३)

सव्व थोवा उवसमा ॥१६०॥ (प्रवेशसे नहीं, संचयसे)(पृ० ३०४)

खवा संखेज्जगुणा ॥१६१॥

(षड् खंडागम–जीवस्थान–अल्पबहुत्वानुगम–स्त्रीवेदी अल्पबहुत्व प्ररूपणा–धवला टीका मुद्रित पुस्तक पांचवा)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ ॐ अर्हँ ॥

श्वेताम्बर दिगम्बर

धृत्वा सन्मतिं चारित्रं, स्याद्वादं हृदि सादरं।
श्वेताम्बर दिगम्बर—समन्वयो निगद्यते ॥

नाम अधिकार

जैन—यह त्रिकालाबाधित सत्य है कि-जिसमें सन्मति सद्रूप और सत् तत्व के प्रणेता भगवान् सन्मति वगैरह देव हैं सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र युक्त पूज्य श्री चारित्र विजयजी वगैरह गुरुवर हैं तथा नय निक्षेप सप्तभंगी और प्रमाणों से सापेक्ष स्याद्वाद ज्ञान आगम है, वही धर्म विश्वव्यापी होने के लायक है।

दिगम्बर--ऐसा तो सिर्फ दिगम्बर जैन धर्म ही है।

जैन--महानुभाव ? जैन धर्म तो इन लक्षण से युक्त है ही ! किन्तु आपने दिगम्बर का विशेषण लगाकर उसको एकान्तवाद में जकड़ लिया है एवं बेकार बना दिया है। वास्तव में भिन्न भिन्न नयों की अपेक्षा से भिन्न २ दर्शन बने हैं। वैसे एकान्त मताग्रह से दिगम्बर वगैरह संप्रदाय बने हैं। एकान्तिक संप्रदाय कतई विश्वव्यापी धर्म नहीं हो सकता है।

दिगम्बर--जैन धर्म में श्वेताम्बर और दिगम्बर ये दो प्रधान शाखायें हैं। मानता हूं कि श्वेताम्बर धर्म झूठा है दिगम्बर सच्चा है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतएव दिगम्बर विश्वव्यापी होने के लायक है।

जैन—कसोटी के कसे बिना मनमानी रीति से किसी को सच्चा या झूठा कहदेना यह केवल ज्ञान की अराजकता है। श्वेताम्बर और दिगम्बर के वास्तविक सत्यों का एकीकरण करने से ही शुद्ध जैन धर्म का स्वरूप मालूम होता है। और ऐसी अनेकान्त दृष्टि वाला जैनधर्म ही विश्वव्यापी बनने के योग्य है।

दिगम्बर--क्या दिगम्बर मान्यतायें हैं, वे कल्पना मात्र ही है? आप स प्रमाण खुलासा करें।

जैन—महानुभाव! क्रमशः प्रश्न करो! पूज्य गुरुदेव की कृपा से मैं उत्तर देता हूं आपको स्वयं निर्णय हो जायगा कि जो जो मान्यताएं प्रचलित हैं वे एकान्तिक है? जिनवाणी से विरुद्ध है? तर्क शून्य है? पराश्रित है? अपने २ शास्त्र से भी विरुद्ध है? कि ठीक है?

दिगम्बर–यदि ऐसा है तो श्वेताम्बर दिगम्बर को एक बनाने की जो कोशिश होरही है उसमें बड़ी सफलता मिलेगी। अस्तु। पहले तो यह तय हो जाना चाहिये कि श्वेताम्बर और दिगम्बर ये वास्तव में एक है कि भिन्न है?

जैन--दोनों सम्प्रदायों की जड तो एक ही है। परन्तु दोनों में शुरू से ही सापेक्ष भेद हैं। जो इस प्रकार है।

भगवान महावीर के श्रमणसंघ में और दो मुनि संघ आकर सम्मिलित हुए थे।

१. भगवान पार्श्वनाथ का मुनि संघ, जो चातुर्याम याने चार महाव्रत वाला था। विविध रंग वाले वस्त्रों का धारक था। इस संघ के आचार्य केशीकुमार थे जिन्होंने गणधर इन्द्रभूति गौतमस्वामीसे परामर्श करके भगवान महावीर स्वामी के संघ में प्रवेश

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

किया। श्री उत्तराध्यान सूत्र में इस मुनि संघ का विचारभेद पाया जाता है। और बौद्ध त्रिपटकों में भी इस सघं का "चाउज्जामो धम्मो" इत्यादि शब्दों से उल्लेख मिलता है। इस संघ की मुनि परम्परा आज भी उपकेश गच्छ कवलागच्छ इत्यादि नामों में प्रख्यात है।

२· मंखलीपुत्र गौशाल का मुनि संघ, यह भगवान महावीर के छद्मस्थ अवस्था के एक शिष्य का संघ है जो प्रधानतया नग्न ही रहा करता था, इसका आचार्य लोहार्य या अन्य कोई था जिन्होंने अपने गुरु की अन्तिम आज्ञा को शिरोधार्य बनाकर अपने गुरुके भी गुरु भगवान महावीर स्वामी के संघ में प्रवेश किया।

श्री सूत्र कृतांग और भगवती सूत्र में इस मुनि संघ का विस्तृत वर्णन मिलता है।

दिव्यावदान (१२ । १४२, १४३) अवदान कल्पलता (पल्लव १७ । ४११) मज्झिम निकाय के चूलसागरोपम सुत्तंत १ । ३ । १० सन्दक २ । ३ । ६ (पृष्ट ३०१, ३०४) महासुकुलदायी सुत्तंत २ । ३ । ७ । महासच्चक १ । ४ । ६ (पृष्ट १४४) महासीहनाद १२ । २ । २ (पत्र ४८) वगैरह बोद्ध शास्त्रो में भी इस मत के विभिन्न उल्लेख हैं।

एनसाईक्लो पीडिया ओफ रीलिजियन एन्ड एथिक्स वॉल्यूम १ पृ० २५६ में बड़े लेख द्वारा इस मुनि संघ पर अच्छा प्रकाश डाला गया है उसके लेखक ए० एफ० आर होअर्नेल साहब बड़ी छान बीन के बाद बताते हैं कि उसके मत में १ शीतोदक २ बीजकाय ३ आधाकर्म और ४ स्त्री सेवन की मना नहीं है (सूत्र कृतांग) ये अचेलक हैं मुक्ता चार हैं हस्तावलेपन (कर पात्र) हैं। एकागारीक (एक घर से आधाकर्मी भिक्षा लेने वाले) हैं (मज्झिमनिकाय पृ० १४४ व ४८) यह मत पुरुषार्थ, पराक्रम का निषेध करता है और नीयति को ही प्रधान मानता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(मज्झिमनिकाय पृ० ३०१ । ३०४ उपासक दशांग) वगैरह वगैरह ।

कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस मुनि संघ ने उपरोक्त बातों में सुधार कर और भ० महावीर स्वामीकी आज्ञाको अपना कर उनके संघ में प्रवेश कीया था परन्तु यह संघ अनेकांत दृष्टि से अचेलक रहने में भी स्वतंत्र था।

इस संघ की मुनि परम्परा आज भी आजीवक, त्रैराशिक और दिगम्बर इत्यादि नाम से विख्यात है।

(हलायुधकृत अभिधान रत्नमाला, विरंचीपुर का शिलालेख, तामिल शब्द कोष, सूत्रकृतांगटीका)

इस प्रकार ये दोनों संघ श्रमण संघ में सम्मिलित हो गये। उस समय वह श्रमण संघ अविभक्त था। उसमें न वस्त्र का एकांत आग्रह था? न नग्नता का? न पुरुष जाति से पक्षपात था? न स्त्री जाति से? इसी प्रकार ६०० वर्ष तक अविभक्तता जारी रही। बाद में किसी एक मुहूर्तकाल में दिगम्बरत्व को प्रधानता देकर, आजीवक संघ का कोई दल अलग होगया, और उसने आजीवक मत की शीतोदक ग्रहण वगैरह जो मान्यताएं थीं उनमें से कई को पुनः स्वीकार कर लिया। उस समय उसके नायक थे आ० शिव भूति याने भूतबली और आ० कुंद कुंद वगैरह

दिगम्बर—उपलब्ध दिगम्बर शास्त्रों में भी शीतोदक ग्रहण आदि के प्रमाण मिलते हैं?

जैन—हाँ? आपकी जानकारी के लिये थोड़े से प्रमाण देता हूँ

१ पाषाण स्फोटितं तोयं, घटी यंत्रेण ताडितं।
सद्यः संतप्त वापीनां, प्रासुकं जल मुच्यते॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

❀ देवर्षिणां प्रशौचाय, स्नानाय गृहमेधिनां।

(आ० शिव कोटि कृत रत्नमाला श्लोक ६३, ६४)

(जैन दर्शन व० ४ अं ३ पृ० १११-११२ अं ४ पृ १५५-५८)

२ मुहूर्त गालितं तोयं, प्रासुकं प्रहर द्वयम् ।
उष्णोदक महोरात्र–मतः संम्मूर्छितं भवेत् ॥

(रत्न माला, जैन दर्शन वर्ष ४ अं० ३ पृ ११६)

३ वृक्षपर्णोपरि पतित्वा यज्जलं यत्युपरि पतति तस्य प्रासुक त्वा द्विराधनाप्काथिकानां जीवानां न भवति

(आ० कुन्द कुन्द कृत भाव प्राभृत गा० १११ की टीका पृ० २६१)

४ विलोडितं यत्र तत्र विक्षिप्तं वस्त्रादि गालित जलं ।

पानी के विलोड़ित इत्यादि चार भेद हैं। विलोडित छना हुआ पानी अचित्त है। पाषाण स्कोटितं इत्यादि पानी भी विलोड़ित मान जाते हैं।

(दि० आ० श्रुत सागर कृत तत्वार्थ सूत्र टीका)

५ अत्यक्तात्मीय मसद्वर्ण-संस्पर्शादिक मंजसा।
अप्रासुकमथा तप्तं, नीरं त्याज्यं व्रतान्वितैः ॥

(प्रश्नोत्तर श्रावकाचार, संधी २२, श्लो० ६१)

६ नभस्वता हतं ग्राव—घटी यन्त्रादि ताडितम्
तप्तं सूर्यांशुभिर्व्याप्यां मुनयः प्रासुकं विदुः ॥ ५३ ॥
स्नानादि ॥ ५४ ॥

(पं० मेधावि पं० कुल तिलक कृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार)

❀ दिगम्बर मत में आकाश चारण सिद्धि प्राप्त मुनि देवर्षि माने जाते हैं। (चारित्र सार पृ० २२, प्रवचनसार पृ० ३४३ जैन दर्शन व० ४ पृ० १३१)
अथवा एक विहारी या मासोपवासादिक धारक महामुनि देवर्षि हैं। (जैन दर्शन, व० ४ पृ १५९)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१ मल १४ हैं जिनमें कन्द, मूल, बीज, फल, कण और कुण्ड (भीतर से अपक्व चावल) ये भी सब मल हैं किन्तु ये अप्रासुक नहीं हैं याने इनके सद्भाव में सचित्त निक्षिप्त, सचित्त पिहित या सचित मिश्र का दोष नहीं है।

(पं० आशाधर कृत अनगार धर्मामृत अ० ५ श्लो० ३९)

२ कन्दादिषट्कंत्यागार्हं, इत्यन्नाद्विभजेन्मुनिः
न शक्यते विभक्तुं चेत्, त्यज्यतां तर्हि भोजनम्।

टीका-कन्दादिषट्कं मुनि पृथक् कुर्यात माने ये सचित्त नहीं है अतः इनको दूर करके दिगम्बर मुनि आहार करें।

(पं० आशाधर कृत अनगार धर्मामृत अ० ५ श्लो० ४१)

३ मूलाचार पिण्ड विशुद्धि अधिकार गा० ६५ की टीका में भी उपरोक्त विधान आया है

विशेष जानकारी करनी हो तो ता० १६।८।१९३६ इस्वी० के खंडेलवाल हितेच्छु अंक २१ में प्रकाशित ब्यावर निवासी दि० ब्र० महेन्द्रसिंह न्यायतीर्थ का "वनस्पति आदि पर जैन सिद्धान्त" शीर्षक लेख पढना चाहिये।

उपर के ऐतिहासिक प्रमाणों से सिद्ध है कि-दिगम्बर श्वेता॰ इन दोनों का उद्-गम एक ही स्थान से है परन्तु दोनों में शुरु से ही सापेक्ष भेद है जो भेद आज अनेक शाखा प्रशाखाओं से अति विस्तृत हो उठा है।

दिगम्बर—यह भेद आचार्य भद्रबाहु स्वामी के बाद हुआ है दिगम्बर विद्वानों ने इस भेदका समय वि० सं० १३६ लीखा है।
(आ० देवसेन कृत दर्शनसार, और भाव संग्रह गा० १३७. पं० नेमिचन्द्रजी कृत सूर्यप्रकाश श्लो० १४७ पृ० १७९, भट्टारक इन्द्रनन्दि कृत नीतिसार श्लो० ९ पं० गजाधरलालजी सम्पादित "समयसार प्राभृत" प्रस्तावना)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—ठीक है, दिगम्बर के दूसरे भद्रबाहु स्वामी याने श्वेताम्बर मतानुसार वज्रस्वामी के बाद यह भेद पडा है। जिसका समय वि० सं० १३६ है। विचार भेद होना, जोड़ने का प्रयत्न करना और आखिर में अलग २ हो जाना, इसमें तीन वर्ष व्यतीत हो जाय यह स्वाभाविक है। इस विषय के लिये दोनों में खास मत भेद नहीं है।

दिगम्बर—इस मत भेद की जड़ क्या है?

जैन—मत भेद की उत्पत्ति के लिये तो प्रसंग आने पर बताया जायगा। समुचित यह मानना होगा कि वस्त्र के निमित्त यह मत भेद खड़ा हुआ है यानी जैन मुनि वस्त्र पहिने कि न पहिने?

इस वस्त्र के ही झगड़े में "जैनधर्म" यह नाम लुप्त हो गया और वस्त्र के कारण ही दिगम्बर और श्वेताम्बर ये दो नाम प्रसिद्ध हुए। अम्बर के निषेध में इतना आग्रह था कि उसके लिये जैन नाम को हटा कर दिगम्बर नाम ही अपना लिया और उसको अच्छा माना।

वस्त्र के निषेधकार को अपनी मान्यता की पुष्टि के लिये स्त्री मोक्ष, केवली भुक्ति, द्रव्य शरीर वचन और मन के प्रयोग, औदारिक शरीर, परिषह, साक्षरी वाणी इत्यादि अनेक बातों का निषेध करना पड़ा। मगर प्रधान दिगम्बर आचार्य इन सब निषेधों को स प्रमाण मानते नहीं हैं। जो कि आपके प्रश्नों के उत्तर में क्रमशः बताया जायगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुनि उपधि-अधिकार

दिगम्बर—पांच महाव्रत वाले साधु परिग्रह के त्यागी होते हैं। अतः उन्हें परिग्रह नहीं रखना चाहिये वस्त्र पात्र वगैरह का त्याग करना चाहिये।

जैन—आप परिग्रह का लक्षण क्या मानते हैं?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्र में परिग्रह का स्वरूप इस प्रकार है!

१ मूर्छा परिग्रहः

(आ० श्री उमास्वाति कृत तत्वार्थ सूत्र अध्याय ७ सूत्र १७)

२. ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्मम त्ति मुवदिट्ठो।

(आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गाथा ५०)

मूच्छादि जणण रहिदं, गेण्हदु समणोयदिवि अप्पं

(आ० कुन्द कुन्द प्रवचन सार, चरणीनु योग चूलिकागाथा २२)

४. पाखंडियलिंगेसु व, गिहलिंगेसु व बहुप्पयारेसु।
कुव्वंति जे ममत्ति, तेहिं ण णादं समयसारं ॥४४३॥

टीकांश—निर्गन्थ रूप पाखंडि द्रव्य लिंगेषु कौपीन चिन्हादि गृहस्थलींगेषु बहु प्रकारेषु ये ममतां कुर्वन्ति।

याने जो किसी भी लिंग ऊपर ममत्व रखता है वह परमार्थ को जानता नहीं हैं।

(आ० कुन्द कुन्द कृत समय प्राभृत गा० ४४३)

५ या मूर्छानामेयं विज्ञातव्यः परिग्रहो ह्येषः।
मोहोदयादुदीर्णो, मूर्छा तु ममत्व परिणामः॥ १११।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूर्छा लक्षण करणात्, सुघटा व्याप्तिः परिग्रहत्वस्य
सग्रन्थो[४] मूर्छावान्[३] विनापि[२] शेषसंगेभ्यः[१] ॥ ११२ ॥
हिंसा पर्यायत्वात् सिद्धा हिंसान्तरंग संगेषु ।
बहिरंगेषु तु नियतं, प्रयातु हिंसैव मूर्छात्वं ॥ ११६ ॥
(आ० अमृतचन्द्र सुरि कृत पुरुषार्थ सिद्धि उपाय वि० सं० ६६२)

इन सब प्रमाणों से स्पष्ट है कि मूर्छा यानी ममत्व ही परिग्रह है। किसी वस्तु पर ममता होने से परिग्रह विरमण व्रत में दूषण लगता है, ममता नहीं है वहाँ परिग्रह नहीं है अममत्व के कारण ही समोसरन आदि से युक्त तीर्थंकर भगवान अपरिग्रही हैं।

दिगम्बर आचार्य जिनेन्द्र की विभूतियाँ बताते हैं

१ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र ?
धर्मोपदेशन विधौ न तथा परस्य ॥
(भक्तामर स्तोत्र श्लो० ३३ । ३७)

अशोक वृक्ष सिंहासन, चम्मर छत्र, पद्म ये सब तीर्थंकर की निकट वर्ती विभूति हैं।

२ माणिक्य हैम रजत प्रविनिर्मितेन ।
साल त्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ २६ ॥
(कल्याण मन्दिर स्तोत्र)

३ अनीहितु स्तीर्थ कृतोपि विभूतयः जयन्ति ॥
(आ० पूज्यपाद कृत समाधितन्त्रम्)

४ जलद जलद ननु मुकुट सपतफण
(पं० बनारसीदास कृत)
(पं० चम्पालाल कृत चर्चा सागर चर्चा २२८ पृ० ४३५)

साँप की फण भी भगवान की निकट वर्ती विभूति है इस

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विभूतिओं के होने पर भी अममत्व के कारण वे अपरिग्रही हैं परिग्रह से मुक्त हैं।

सारांश यह यह है कि दिगम्बराचार्य मूर्च्छा को ही परिग्रह मानते हैं।

जैन—तब तो जैन साधु वस्त्रादि उपधि को रखते हैं उसमें भी अममत्व होने से परिग्रह दोष नहीं है।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान तो नग्न ही होते हैं मगर अतिशय से अनग्न से दीख पड़ते हैं।

जैन—तीर्थंकर भगवान के ३४ अतिशयों में ऐसा कोई भी अतिशय नहीं है जो नग्नता को छिपावे, वास्तव में तीर्थंकर भगवान सवस्त्र ही होते हैं बाद में किसी का वस्त्र गिर जाय तो अनग्न भी होते है। इस प्रकार तीर्थंकरो में नग्नता या अनग्नता का कोई एकान्त नियम नहीं है।

बौद्ध धर्म के त्रिपीटक शास्त्रों में भ० पार्श्वनाथ के अनुयायीयों को चातुर्याम धर्मवाले और सर्वज्ञ माने है यानी भगवान पार्श्वनाथ और उनकी सन्तान सवस्त्र थी नग्न नहीं थी। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त दो हजार वर्ष की पुराणी जिनेन्द्र प्रतिमाएं अनग्न हैं। दिगम्बर चिन्ह से रहित है। जिनके ऊपर श्वेताम्बर आचार्य के नाम खुदे हुए हैं। वहाँ करीब ६०० वर्ष पुरानी दिगम्बरीय प्रतिमाएं भी है जो खुल्लम खुल्ला दिगम्बर ही है इससे भी स्पष्ट है कि दो हजार वर्ष पहिले "तीर्थंकर भगवान नग्न ही होते हैं" ऐसी मान्यता नहीं थी।

मकाशफते बाब ४ आयात ४ में तख्त नशीन सफेद वस्त्रवाले और सोने के ताज वाले २४ बुजुर्ग का वर्णन है संभवतः वह २४ तीर्थंकरों का वर्णन है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विद्वानों का मत है कि—इसा मसीह ने कई वर्ष पर्यन्त हिन्द में रह कर जैन बौद्ध या शैव धर्म का परिशीलन किया और बाद में यूरोप में जाकर इसाई धर्म की स्थापना की। यहां के २४ अवतारों को उन्होंने उक्त शब्दों द्वारा ईश्वरी स्थान दिया है। मगर बौद्ध धर्म में इस प्रचार २४ बौद्ध नहीं है और शैव धर्म में २४ अवतार मनुष्य रूप से नहीं है। सिर्फ जैन धर्म में ही २४ तीर्थंकर है और वे मनुष्य ही है, अतः उस आयात में २४ बुजुर्ग के रूप में इनका ही सूचन है। इसके अलावा इसाई धर्म में पापों की क्षमा मांगने की विधि भी जैन प्रतिक्रमण का ही कुछ अनुकरण है। इससे तय पाया जाता है कि—इसा मसीह ने यहां जैन धर्म का परिशीलन किया हैं। यदि यह बात सच्ची है तो उस समय में २४ तीर्थंकर पोषाक में माने जाते थे। यह भी स्वीकृत करना पडेगा।

दिगम्बर—भगवान महावीर स्वामी के युग के जैन मुनि नग्न ही थे।

जैन—यह बात निम्नलिखित प्रमाणों से गलत है।

१—बौद्ध शास्त्रों में सूचित "चाउज्जामो धम्मो" वाले जैन साधु सवस्त्र ही थे!

२—बौद्ध आगमों में आजीवक मत की चर्चा है कि आजीवक मत में समस्त जीवों के वर्गीकरण से छे अभिजातियाँ (छे लश्या के समान विकास पायरी) मानी गई हैं जो इस प्रकार हैं!

१—कृष्णाभिजाति—क्रूर मनुष्य

२—नीलाभिजाति—भिक्षु, बौद्ध भिक्षु

३—लोहित्याभि जाति-निर्गन्थ साधु जो नियत तथा चोल पट्टा को पहिनते हैं माने जो वस्त्रधारी ही हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४—हरिद्राभिजाति—सर्व वस्त्र त्यागी-आजीवक गृहस्थ(एलक वगैरह गृहस्थ)

५—शुक्लाभिजाति—आजीवक श्रमण, श्रमणी

६—परम शुक्लाभिजाति—आजीवक धर्माचार्य नंदवत्स किस संकिच्च और मक्खली गौशाला वगैरह।

इन अभिजातियों का परमार्थ यह है कि अधिक वस्त्र वाले मनुष्य प्रथम पायरी पर खड़ा है अल्प वस्त्र वाला बीच में खड़ा है और बिलकुल नग्न छुठी पायरी पर जा पहुचाँ है।

इस हिसाब से बौद्ध श्रमण दूसरी कक्षा में जैन निर्ग्रन्थ तीसरी और आजीवक श्रमण पाँचवीं कक्षा में उपस्थित है। साफ बात है कि उस काल में निर्ग्रन्थ श्रमण वस्त्रधारी थे और आजीवक श्रमण नंगे रहते थे।

(एन साई क्लो पीडिया ऑफ रीलिजियन एण्ड एथिक्स वॉ० १ पृ० २५९ का आजीवक लेख)

३—लोहित्या भिजाति नाम "निर्ग्रं था-एक साटिक" ति वदन्ति। लोहिता भि जाति माने वस्त्रवाले जैन निर्गन्थ।

दि० बाबू कामता प्रसादजी कृत "महावीर और बौद्ध)

यह पाठ भी ऊपर के पाठ का ही उद्धृत अंश है। इसमें जैन साधुओं को सवस्त्र माना है।

४--पाणीनीय व्याकरण में "कुमारश्रमणादिभिः" सूत्र से गणधर श्री केशिकुमार का उल्लेख है ये आचार्यभी वस्त्र धारी थे इन्होंने गणधर श्री गौतम स्वामी से आचार पर्यालोचना की थी।

(उतराध्ययन सूत्र अ०)

५—कलिंगाधिपति सम्राट् खारवेल ने जैन मुनिओं को वस्त्र दान किया था ऐसा उसके उत्कीर्ण शिला लेख में लिखा गया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

६--द्वादशांगी जिनवाणी का आदिम अंग "श्री आयरंग सुत्त" में जैन निर्गन्थों को पाँच जाति के वस्त्रों की आज्ञा है विक्रमी दूसरी शताब्दी पर्यन्त के किसी भी ग्रन्थ में इसका विरोध नहीं किया गया। पहले पहल आचार्य कुन्द कुन्द ने "षट् प्राभृत" ग्रन्थ में इसका विरोध किया। इसी से स्पष्ट है कि उस समय पर्यन्त जैन श्रमण वस्त्र धारी थे और पाँच जाति के वस्त्र पहिनते थे किसी को नग्नता का आग्रह नहीं था। यकायक आ० कुन्द कुन्द ने पाँच जाति के वस्त्र का निषेध लिखा और बाद के श्वेताम्बर आचार्यों ने भी एकान्त नग्नता तथा इस कृत्रिम नग्नता का विरोध किया। भूलना नहीं चाहिये कि वीर निर्वाण के ६०० वर्ष तक के किसी जैन आगम में दिगम्बर का विरोध नहीं है किन्तु बाद में ही श्वेताम्बर शास्त्रों में दिगम्बर विरोध लिखा गया है। जब दिगम्बर के प्राचीन या अर्वाचीन सब शास्त्रों में श्वेताम्बर का विरोध जोर शोर से किया गया है। इसीसे कौन साहित्य प्राचीन है और कौन अर्वाचीन है, यह निर्विवाद हो जाता है, और जिसका विरोध किया जाता है उसकी प्राचीनता भी स्वयं सिद्ध हो जाती है।

सारांश यह है कि-विक्रम की दूसरी शताब्दी तक जैन शास्त्रों में वस्त्र का निषेध नहीं था। जैन मुनि वस्त्रधारी थे वस्त्र के एकांत विरोधी नहीं थे।

दिगम्बर--जैन मुनि का असली नाम निर्गन्थ है निर्गन्थ का अर्थ यही होता है कि दिगम्बर।

जैन--दिगम्बर सम्मत शास्त्र पांच प्रकार के निर्गन्थ मानते हैं और ये सब वस्त्रधारी थे ऐसा साफ २ बताते हैं। देखिये-

१—पुलाक बकुश कुशील निर्गन्थस्नातका निर्गन्थाः।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थ लिंग लेश्योपपातस्थान विकल्पतः साध्याः ।

(वा० उमास्वति कृत तत्वा० अ० ९ सू ४६ ४७)

अविविक्त परिग्रहाः परिपूर्णोभयाः कथंचिदुत्तर गुण विराधिनः प्रति सेवना कुशीलाः ।

निर्गन्थ वस्त्र पात्र और उपकरण वाले तो होते ही है परन्तु उसमें ममता नहीं रखते हैं यदि उनमें "अत्यक्त परिग्रह "यानी मूर्छा करते हैं । तो भी वे तीसरी कोटि के निर्गन्थ ही हैं ।

प्रति सेवना कुशीलाः द्वयोः संयमयोः दश पूर्व धराः ।

वे निर्गन्थ दो चारित्र वाले और दश पूर्व के ज्ञान वाले भी होते हैं ।

तत्र उपकरणाभिष्वक्त चित्तो, विविधाविचित्र परिग्रह युक्तः, बहु विशेषयुक्तोपकरणकांची, तत्संस्कार प्रतिकार सेवी, भिक्षुः ॥

निर्गन्थ के पास वस्त्र पात्रादि उपकरण होते ही हैं । परन्तु वह उनमें आसक्त चित्त रहे, विविध और विचित्र वस्त्रादि को धारण करें या तीर्थंकर की आज्ञा से अतिरिक्त विशेष उपकरणों की चाहना करे तो वह पाँच में से दूसरी कक्षा का निर्गन्थ है ।

लिंग द्विविधं, द्रव्यलिंगं भावलिंगंच । भावलिंगं प्रतीत्य सर्वेपि निर्गन्थाः लिंगिनो भवन्ति । द्रव्यलिंगं प्रतीत्य भाज्याः ।

श्रमण लिंग दो प्रकार के हैं । १-द्रव्यलिंग-साधु वेष और २—भावलिंग--चारित्र । चारित्र के जरिये पाँचो निर्गन्थ "लिंगी" हैं । द्रव्यलिंग के ज़रिये उनके अनेक भेद होते हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर के—विद्वज्जन बोधक पृष्ठ १७८ में भी लिखा है-- कि द्रव्यलिंग ने प्रतीतिकरि तिसे विचारिये तो पांचों ही भेद भाज्य है भेद करने योग्य हैं।

इस पाठ से स्पष्ट है कि पाँचों निर्ग्रन्थ के भिन्न २ साधु वेश होने के कारण अनेक भेद होते हैं। यदि निर्ग्रन्थ का द्रव्यलिंग सिर्फ नग्नता ही होती तो भावलिंग के समान द्रव्यलिंग का भी एक ही भेद होता, किंतु यहाँ अनेक भेद माने हैं, अतः स्पष्ट है कि-निर्ग्रन्थों का द्रव्यलिंग नग्नता नहीं किन्तु साधुवेश यानी साधु के उपकरण ही है, और वे उपकरण अनेक प्रकार के हैं।

(तत्वार्थ सूत्र अ० ९ सू० ४६, ४७ की सर्वार्थ सिद्धि और राजवार्तिक टीका पृ० ३५८, ३५६)

संनिरस्त कर्माणोंतमुहूर्त केवल ज्ञान दर्शन प्रापिणो निर्ग्रन्थाः।

चौथा "निर्ग्रन्थ" नामक निर्ग्रन्थ वही है जो कि बाह्य और अभ्यंतर ग्रन्थी से रहित है, और जिसको अन्त मुहूर्त में केवल ज्ञान व केवल दर्शन होता है। इससे भी स्पष्ट है कि नंगे को निर्ग्रन्थ मानना, सरासर भ्रम ही है।

प्रकृष्टा प्रकष्ट मध्यमानां निर्ग्रन्थाभावः ।"'''न वा''''''' संग्रह व्यवहारा पेक्षत्वात् ॥

तरतमता के होने पर भी पाँचों निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ ही है। नयों की अपेक्षा से यह भेद भी उचित हैं।

(तत्वार्थ सूत्र टीका)

तयो रुपकरणा सक्ति संभवात् आर्त ध्यानं कदाचित्कं संभवति, आर्तध्यानेन कृष्णलेश्यादि त्रयं भवति।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बकुश और प्रति सेवना कुशीलको छै लेश्या होती है निर्गन्थ वस्त्रादि उपकरण वाले हैं अतः उन्हें कभी उपकरणों में आसक्ति होना भी सम्भावित है। जब निर्गन्थ को आसक्ति होती है तब आर्तध्यान होता है कृष्णादि तीन लेश्यायें होती है

(चारित्र सार, व विद्वज्जन पृ० १७९)

शारांश—जैन मुनि का असली नाम "निर्गन्थ" है। जो उक्त दिगम्बर ग्रन्थों के अनुसार वस्त्रादि युक्त, किन्तु उनमें मूर्छा रहित ही होता है, अतः वह निर्गन्थ माना जाता है।

श्वेताम्बर जैन मुनियों का सर्व प्रथम संघ "निर्गन्थ गच्छ" है और दिगम्बर का सर्व प्रथम संघ "मूल संघ" है । इससे भी स्पष्ट है कि निर्गन्थ यह संकेत शुरु से आज तक वस्त्र धारी श्रमणों के लिये उपयुक्त है।

भूलना नहीं चाहिये कि जिनागम जैन तीर्थ और निर्गन्थ गच्छ की संपत्ति (वारसा) श्वेताम्बर संघ को ही प्राप्त हुई है। दिगम्बर संघ इन लाभों से वंचित रहा है।

दिगम्बर—श्री उमास्वाती महाराज भी नग्नता मान अचेल परिषह मानते हैं इससे ही दिगम्बरत्व साध्य है।

जैन—यह परिषह तो वस्त्र के ही पक्ष में है क्षुधा और पिपासा के सद्भाव में आहार और पानी की आवश्यकता होने पर भी अप्रासुकता आदि के कारण आहार पानी न मिले या अल्प प्रमाण में मीले, तो भी काम चला लेवे दुःख न माने और संतुष्ट रहे इस परिस्थीति में वहाँ क्षुत, पिपासा परिषह माने जाते हैं, जो संवर रूप है। और आहार पानी को छोडकर बैठ जाना, वह तपस्या मानी जाती है, जो निर्जरा का कारण रूप है । वैसे ही वस्त्र की आवश्यकता होने पर भी निर्दोष न मिलने के कारण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अल्प वस्त्र से चलाना पडे या बिना वस्त्र रहना पडे उस हालत में अचेल परिषह माना जाता है जो संवररूप है और वस्त्र को छोड कर बैठ जाना वह "काया क्लेश" रूप तपस्या है। भूलना नहीं चाहिये कि मुनि धर्म में संवर अनिवार्य है और तपस्या यथेच्छ है

इस हिसाब से स्पष्ट है कि मुनियों को आहार पानी अनिवार्य है वैसे ही वस्त्र धारण करना भी अनिवार्य है। यदि ये शुद्ध मिलें तो साधु इनको लेते हैं। मगर वैसे न मिले तो क्षुत पिपासा और अचेल परिषह को सहते हैं।

इस प्रकार क्षुत् परिषह से मुनियों के आहार का समर्थन होता है। और अचेल परिषह से मुनियों के वस्त्र का ही समर्थन होता है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर आगम में जिनकल्पी का वर्णन है वह असली मुनि लिंग है।

जैन--जैन दर्शन स्याद्वादी है, अतः एक मार्ग का आग्रह नहीं रखता है। मैं बौद्ध प्रमाणों से बतला चुका हूं कि भगवान महावीर स्वामी के साधु वस्त्र धारक थे। उनमें से कोई मुनिजी विशेष तपस्या करना चाहते याने अधिक कायक्लेश सहने को उद्युक्त होता तो वे ज्ञानी को पूछकर जिनकल्पी भी बनते थे। जो वस्त्र युक्त रहते थे. या वस्त्र रहित भी बन जाते थे। भूलना नहीं चाहिये कि जिनकल्पी बनने वाले को कम से कम ११ अंग और १२ वे अंग के दशवें पूर्व की तीसरी वस्तु तक का ज्ञान और प्रथम संहनन होना चाहिये। इसके बिना जिनकल्पी बनना, जिनकल्पी बनने का मजाक उडाने के सिवाय और कुछ नहीं है। जिनकल्पी को क्षपक श्रेणी नहीं होती है। १० पूर्व से अधिक ज्ञान वाले को जिनकल्पी रूप कायक्लेश तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है।

(बृहतकल्पभाष्य गा० १३८५ से १४१४, पंचवस्तु गा० १४९८)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सारांश--जिनकल्पी व नग्नता असली मुनिलिंग नहीं है किन्तु विशिष्ट प्रवृत्ति ही है। असली मुनि मार्ग यानी सर्व सामान्य मुनि जीवन स्थविर कल्प ही है।

दिगम्बर--स्थविर कल्प और जिनकल्पी के लिये पूर्व ज्ञान की अनिवार्यता है, इत्यादि ये सब श्वेताम्बर की कल्पना ही है।

जैन--दिगम्बर शास्त्र में भी जिनकल्पी और स्थविरकल्पी की व्यवस्था बताई है इतना ही नहीं किन्तु जिनकल्पी के लिये विशिष्ट ज्ञान और विशिष्ट सहनन की अनिवार्यता भी स्वीकारी है। देखिये प्रमाण

१-मुनियों के जिन कल्पी और स्थवीर कल्पी ये दो भेद हैं।

(आ० जीनसेन कृत आदि पुराण सर्ग—११, श्लोक ७३)

मूलुत्तर गुण धारी, पमादसहिदो पमाद रहिदो य।
ऐकेक्को वि थिरा-थिर भेदण होइ दुवियप्पो ॥ २१ ॥
थिर अथिरा ज्जाणं पमाद दप्पेहिं एगबहुवारं ॥
समाचारदिचारे, पायच्छित्तं इमं भणियं ॥ २६१ ॥

याने जैन साधु के प्रमत्त और अप्रमत्त तथा स्थविर कल्पी और अस्थविर कल्पी ये दो २ विकल्प है आर्या के भी ये ही दो दो भेद है।

(दि० आ० इन्द्रनन्दि कृत छेदपिंडम्)

३-दुविहो जिणेहिं कहियो जिणकप्पो तहय थविरकप्पो य॥
सो जिण कप्पो उत्तो उत्तम संहणण धारिस्स ॥ ११९ ॥
एगारसंगधारी ॥ १२२ ॥

याने-जिन कल्प और स्थाविर कल्प ये दो कल्प है जिन कल्प उत्तम संहन वाले और ग्यारह अंग वेदी के योग्य है।

(आ० देव सेन कृत भाव संग्रह)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इस प्रकार दिगम्बर शास्त्रों में भी दो कल्प बताये हैं, और जिन कल्प यह किसी ज्ञानी की खास विशिष्ट यथेच्छ प्रवृति है ऐसा स्पष्ट कर दिया है।

ये प्रमाण भी बताता है कि-स्थविर कल्प ही प्रधान श्रमणमार्ग है जब जिन कल्प सिर्फ व्यक्तिगत विशिष्ट प्रवृति है। इस हालत में जिन कल्प असली यानी प्रधान मुनि लिंग नहीं हो सकता है।

दिगम्बर—आ० कुन्द कुन्द तो सब द्रव्य के त्याग से ही अपरिग्रहता मानते हैं। वे लिखते हैं कि-

वालग्ग कोडिमित्तं, परिग्गह ग्गहणं ण होई साहूणं।
भूंजेइ पाणि पत्ते, दिएणंएणं इक्क ठाणम्मि॥ १७॥

(आ० कुन्द कुन्द कृत-सूत्र प्राभृत)

किध तम्हि नात्थि मूच्छा! आरम्भो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो, कथ मप्पाणं पसाधयदि॥ २०॥

टीका--उपधि सद्भावे हि ममत्व परिणाम लक्षणायाः मूर्च्छायाः, तद्विषय कर्म्म प्रक्रम परिणाम लक्षणस्यारंभस्य, शुद्रात्म रूप रूप हिंसन परिणाम लक्षणस्याऽसंयमस्य चावश्यं भावित्वात्।

याने-उपधि में मूर्च्छा, आरम्भ और असंयम होता है, पर द्रव्य में रत मनुष्य आत्मा को साध सकता नहीं है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचन सार चरणानुयोग चूलिका)

जैन--महानुभाव! यह कथन सिर्फ ममता रूप परिग्रह यानी मूर्छा के खिलाफ है वास्तव में बालाग्र ही नहीं किन्तु बालों का संमूह-पींछी, उपधि, शरीर वाणी और मन वगैरह पर द्रव्य है। जो धर्म साधन के हेतु होने के कारण उपकरण ही है किंतु मूर्छा होने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पर वे सब अधिकरण बन जाते हैं, इस आशय को स्पष्ट करने के लिये ऊपर की गाथायें पर्याप्त हैं।

यदि ऐसा न होता तो वे आचार्य उपधि की आज्ञा कतई नहीं देते। किन्तु प्रत्यक्ष है कि वे ही बाद की गाथाओं में उपधि स्वीकार की आज्ञा देते है। देखिये-

छेदो जेण न विज्जदि, गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स
समणो तेणिह वट्टदु, कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २१ ॥

टीका—यः किल अशुद्धोपयोगाऽविनाभावी स छेदः। अयं उपधिस्तु श्रावण्यपर्याय सहकारकारि कारण शरीर धृति हेतुभूताऽऽहार निहारादि ग्रहण विसर्जन विषय छेद प्रतिषेधार्थमुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाऽविना भूतत्वात् प्रतिषेध एव स्यात् ॥ २१ ॥

अथाऽप्रतिषेद्धोपाधिस्वरूप मुपादिशति।
अप्पडिकुट्ठं उपधिं अपत्थणिज्जं असंजद जणेहिं।
मूच्छादिजणण रहिदं, गेह्णदु समणो यदि वि अप्पं॥२२॥

टीका-यः किलोपधिः बंधाऽसाधकत्वाद प्रति कुष्ठः संयमादन्यत्रानुचितत्वाद संयतजनाऽप्रार्थनीयो, रागादि परिणाम मंतरेण धार्य माणत्वा"न्मूर्च्छादिजनन रहित श्च" भवति स खलु "अप्रतिषिध्धः"। अतो यथोदितस्वरूप एवोपधिरुपादेयो, न पुनरल्पोपि यथोदित विपर्यस्त स्वरूपः ॥ २२ ॥

बालो वा बुड्ढो वा, समभिहतो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरउ सजोग्गां, मूलच्छेदं जधा ण हवदि ॥ २९ ॥

आहारे व विहारे देशं कालं समं खमां उवधिं।
जाणित्ता ते समणो, वट्टदि जदि अप्प लेवी सो ॥ ३० ॥

टीकांश-१ अल्प लेपो भवत्येव तद्वर मुत्सर्गः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२—अल्प एव लेपो भवति, तद्वरमपवादः ॥

३-देशकालज्ञस्यापि बाल वृद्ध श्रान्त ग्लान त्वानुरोधेना ऽऽहार विहारयो रल्पलेपभयेनाऽप्रवर्त मानस्याऽतिकर्कशाऽऽ चरणीभूय क्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वांत समस्त संयमाऽमृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाऽशक्य प्रतिकारो महान् लेपो भवति, तन्न श्रेया नपवादनिरपेक्षः उत्सर्गः ।

४-असंयत जन समानी भूतस्य ······महान् लेपो भवति, तन्नश्रेयानुत्सर्ग निरपेक्षोऽपवादःसर्वथानु गम्यस्य परस्पर सापेक्षोत्सर्गापवाद विजृंभित वृत्तिः स्याद्वादः ॥ ३० ॥

याने साधु काल क्षेत्र के विचार से प्रवृति करें जिसके लेने छोडने और वापरने में छेद न हो ऐसी उपाधि को स्वीकारे । "ममत्व न हो तब उपाधि अप्रतिषिद्ध माना गया है", उपाधि निषेध का कारण "ममता" ही है । बाल वृद्ध श्रमित और ग्लान मुनि मूलच्छेद न हो इस बात को लक्ष्य में लेकर स्वयोग्य प्रवृति करें । मुनि देशकाल श्रम क्षमा और उपाधि को जानकर आहार तथा विहार में प्रवृत्ति करें ।

इस प्रवृति में अल्पलेपी के लिये चतुंभंगी होती है जिसमें अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग और उत्सर्ग निरपेक्ष अपवाद ये दोनों भांगे वर्ज्य माने गये हैं । अति कर्कश आचरण से मरकर असंयमी देव बनना यह भी अपवाद निरपेक्ष एकान्त हठ रूप होने से अश्रेय मार्ग ही है । उत्सर्ग और अपवाद से सापेक्ष बर्ताव रखना यानि स्याद्वाद पूर्वक प्रवृत्ति करना यही शुद्ध मुनि मार्ग है ।

(आ० कुन्द कुन्द कृत, प्रवचन सार चरणानुयोग चूलिका)

आ० कुन्द कुन्द इन पाठों से मुनिओं को उपाधि रखने की आम इजाजत देते हैं । भूलना नहीं चाहिये कि ममत्व होने से ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इनमें दूषण माना गया है अतः मुनियों के लिये उपधि रखने की नहीं वल्कि उसमें मूर्च्छा रखने की मना है, जो बालग्ग० वगैरह गाथाओं से स्पष्ट है।

दिगम्बर मुनि भी मोर पीच्छ वगैरह उपधि को रखते हैं।

दिगम्बर--दिगम्बर मुनिओं के लिये "मोर पीच्छ" यह बाह्यलिंग है, "उपधि" है, एवं संयम का उपकरण है। इसके बिना वे कदम भी नहीं उठा सकते हैं।

१-मोर पीच्छ रखने में ५ गुण है।

(पं० चंपालालजी कृत चर्चा सागर चर्चा-२१०)

२-सप्तपादेषु निष्पिच्छः कायोत्सर्गात् विशुध्याति॥
गव्यूति गमने शुद्धि मुपवासं समश्नुते॥

(चारित्र सार, तथा चर्चा सागर चर्चा ७)

३-मुनि बिना पीच्छ ७ कदम चले तो कायोत्सर्ग रूप प्रायश्चित करें।

(आ० इन्द्र नन्दी कृत छेद पिंडम् गा० ८०)

४-पीछी हाथ से गीरपड़ी अर पवन का वेग अत्यंत लगा। तब स्वामी (आ० कुन्द कुन्द ने) कही, हमारा गमन नहीं, क्योंकि मुनिराज का बाना विना मुनिराज पीछाणा नहीं जाय।

(एलक पन्नालालजी दि० जैन सरस्वति भूवन बोम्बे का गुटका में आ० कुन्द कुन्द का जीवन चरित्र, सूर्य प्रकाश श्लो० १५२ की फूट नोट पृ० ४१ से ४७)

इसके अलावा दिगम्बर साधुओं को कमण्डल, पुस्तक, कलम, कागज, रूमाल, पट्टी वगैरह उपधि रखना भी अनिवार्य है। आज दिगम्बर मुनि यज्ञोपवीत देते हैं चटाई व पट्टा पर बैठते हैं बड़े २ महलों में ठहरते हैं घास के ढेर पर सोते हैं इनकी भाक्त के लिये साथ में मोटर रक्खी जाती है यह सब मूर्च्छा न होने के कारण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूषण रूप नहीं है। मूर्च्छा हो तो शरीर भी परिग्रह है अतः मूर्च्छा के अभाव में यह सब अपरिग्रह रूप हैं इतना तो हमें मंजूर है।

जैन--यदि दिगम्बर मुनि उपाधि रखने पर भी अपरिग्रही हैं तो श्वेताम्बर मुनि भी उपाधि रखने पर अपरिग्रही हैं।

और श्री तीर्थंकर भगवान भी छै पर्याप्ति की वर्गणा रूप पर द्रव्य को लेते हैं मगर वे अपरिग्रही ही हैं। कारण ! मूर्च्छा नहीं है। इसी प्रकार मुनि भी अमूर्च्छित रूप से उपाधि रक्खें तो अपरिग्रही ही है।

दिगम्बर--अजी ! मुनि जी कुछ भी करें उससे हमारा कोई भी वास्ता नहीं है सिर्फ इतना होना चाहिये कि वे वस्त्र धारी न हों, नंगे हों। वास्तव में दूसरी २ चीज परिग्रह हो, या न हों, मगर वस्त्र तो परिग्रह ही है। आ० कुन्द कुन्द दूसरी उपाधि की आज्ञा देते हैं मगर वस्त्र का नाम लेकर निषेध करते हैं देखिये प्रमाण

१—पंचविह चेल चायं, खिदिसयणं दुविह सजंमं भिक्खू।
भावं भाविय पुव्वं, जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं ॥ ८१ ॥
(आ० कुन्द कुन्द कृत भावप्राभृत गा० ७९। ८१)

२—जे पंच चेल सत्ता ॥ ७६ ॥ (मोक्ष प्राभृत)

३--पंचच्चेल च्चाओ ॥ १२४ ॥ क-प्रति ॥

अंडज वुंडज रोमज, चर्म्म च वल्कज पंच चेलानि ॥
परिहृत्य तृणज चेलं, यो गृह्णीयान्न भवेत् स यतिः।
(आ० देवसेन कृत, भाव संग्रह गा० १२४)

४---यदि मुनि दर्प और अहंकार से वस्त्र ओढले तो पंच कल्याणक, यदि अन्यकारणसे ओढले तोमहाव्रतभंग हो जाय।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(पं० चम्पालालजी कृत चर्चासागर पृ० ३२५ पं० परमेष्टीदास कृत, चर्चा समीक्षा पृ० २२४)

५--लिंगं जह जादरूप मिदि भणिदं ॥ २४ ॥

(आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचनसार)

सारांश यह है कि मुनि पांचों प्रकार के वस्त्र न पहिने ! नंगापन ही मुनि लिंग है ।

जैन--मैं पहिले से ही बता चुका हूं कि आ० कुन्द कुन्द ने शुरू २ में पाँच प्रकार के वस्त्रों का निषेध किया, इससे तो निम्न बातें विना संशय निर्णीत होती जाती हैं।

१-आ० कुन्द कुन्द के समय पर्यंत जैन निर्गन्थ पाँच प्रकार के वस्त्र पहिनते हैं।

२-उस समय तक के शास्त्रों में मुनिओं के लिये पाँच जाति के वस्त्रों की आज्ञा है।

३-वस्त्र मात्र का निषेध न करके पाँच प्रकार का ही निषेध किया इससे भी पाँच ही प्रकार के वस्त्र उस समय पर्यन्त ग्रहण किये जाते थे, यह भी निर्विवाद हो जाता है।

४-दिगम्बर साधु पाँच जाति से भिन्न वस्त्र पहने तो दोष नहीं है, सिर्फ पाँच का ही त्याग होना चाहिये। क्योंकि पाँच जाति में ही परिग्रह दोष है। छटे प्रकार के वस्त्र में वह दोष नहीं है।

५-दिगम्बर मुनि तृणज चटाई को ग्राह्य मानते हैं यानी लेते हैं। यद्यपि आ० देव सेन ने छठी तृणज जाति का निषेध किया किन्तु दिगम्बर मुनि उनकी एक भी नहीं सुनते। माने पाँच के अलावा छठी जाति का इस्तैमाल करते हैं और "खिदि सयण" के बजाय पट्ट पर सोते हैं।

६-सिर्फ पाँच जाति के वस्त्र के खिलाफ में ही यह रूलिंग

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निकाला गया है माने तब से ही एकान्त दिगम्बरत्व की जड़ जमी है।

इन सब बातों के सोचने से क्या यह विवेक नहीं आता है, कि मुनियों का वस्त्र धारण ही असली वस्तु है और एकान्त नग्नता का आग्रह नकली वस्तु है ?

सब उपाधि, रोमज-पीछी, कुंडज-पीछी बन्धन, पुस्तक बन्धन, रुमाल वस्त्र और कागज को रक्खे वो तो सच्चा मुनि, और आगमोक्त होने पर भी सिर्फ आ० कुन्द कुन्द द्वारा निषिध्ध उपाधि को रक्खे वह मुनि ही नहीं। यह कहां का न्याय ? ऐसी पाबन्दी एकान्त वाद में ही हो सकती है।

न्याय के जरिये तो दि० आचार्य भी वस्त्रादि की आज्ञा देते हैं, जो आगे सप्रमाण बताया जायगा। यहाँ तो इतना ही विचारणीय है कि आदिम दिगम्बर शास्त्र निर्माता ने किस प्रकार जैन दर्शन में मत भेद की नींव डाली और जैन नाम को हटा कर "दिगम्बर" नाम को ही प्रधान बनाया।

"सिर्फ नंगे रहो, दूसरी दूसरी उपाधिकी छूट" इस एकान्त नंगे पन की ओट में क्या २ नाच होरहा है यह देखा जाय तो अपने को दुःख ही होता है। कतिपय "नग्न" माने दिगम्बर परिभाषा के अनुसार "अपरिग्रही" मुनि निम्न प्रकार ज़ाहिर हुए हैं।

१—तिलतुसमेत्तं न गिहदि हत्थेसु। १८।
दिगम्बर मुनि को सीर्फ हाथ से पैसा को छूने की मना है।

(सूत्र प्राभृत)

२—क्वचित्कालानु सारेण सूरिर्दव्यमुपाहरेत्।
गच्छ पुस्तक वृध्यर्थं अयाचितमथाल्पकं ॥ ८६ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माने दिगम्बर मुनि शास्त्र और संघ के लिये रुपये जोड सकते हैं
(सूत्र प्राभृत गा० १८ की श्रुत सागरी टीका)
(दि० आ० इन्द्र नन्दी कृत नीति सार विक्रम की १३ वी शताब्दी)

३ दिगम्बर मुनि.. मोरैना पधारे, एक अच्छे कमरे में ठहरे थे, जाड़ा जोरों से पड़ रहा था भक्तों ने कमरे में घास का ढेर लगा दिया मुनिजी रात को उसके ठीक बीच में सो गये भक्तों ने चारों ओर अंगीठी जला रक्खी। कम नसीबी से आग की एक चिनगारी घास में जा लगी और मुनि जी भुंज गये।

४-वि० सं० १९९६- में भी आरा में ऊपरसी ही परिस्थिति में ३ दिगम्बर मुनि अग्नि शरण हुए है।

५—आश्चर्य की बात है कि दिगम्बर मुनि न वस्त्र रक्खें न लंगोटा रक्खें न गांठ रक्खें पर लाखों रुपये जमा कर सकते हैं।

नमुना—करीब २ साल पेस्तर की घटना है कि दिगम्बर मुनि जय सागर जी हैदराबाद दक्षिण में पधारे तब उनके पास लाखों रुपये जमा थे इनकी खातिर करने के लिये दिगम्बर जैन शास्त्रार्थ संघ अम्बाला ने एक अपने शास्त्री जी को संभवतः प्रो० धर्मचन्द जी B. S. C. को भेजा था।

६—इसके अलावा और भी दिगम्बरीय अपरि ग्रहता के नमूने जैन जगत और सत्य संदेश में प्रकट हो चुके हैं।

७—मूलाचार में भी गुरु द्रव्य और साधर्मिक द्रव्य का जिक्र है।

८—यद्यपि यहाँ पाँच वे आरे में कोई मोक्ष नहीं पाता है, परन्तु दिगम्बर विद्वान् पाँचवे आरे में भी दिगम्बर को नग्नता के कारण ही मोक्षगमन मानते हैं जैसा कि—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तदा ते मुनयो धीराः शुक्ल ध्यानेन संस्थिताः
हत्वा कर्माणि निःशेषं प्राप्ताः सिद्धिं जगाद्धितांम् ॥ ४२ ॥

(ब्र० नेमिदत्त कृत आराधना कथा कोश भा० ३ कथा ७३ नंद वंशोच्छेदक चाणक्य की कथा श्लो ४२ पृ० ३१३)

पर उसने (चाणक्य ने) उसे बड़ी सहन शीलता के साथ सह लिया और अन्त में अपनी शुक्ल ध्यान रूपी आत्म शक्ति से कर्मों का नाश कर सिद्ध गति लाभ की × + चाणक्य आदि निर्मल चारित्र के धारक थे सब मुनि अब सिध्धि गति में ही सदा रहेंगे।

(पं० उदयलाल काशलीवाल कृत, आराधना कथाकोश का हिन्दीभाषांतर पृ० ४६ से ५१)

६—शान्ति देवी ने भी आत्म समाधि प्राप्त की, कारण ? दिगम्बरता आदि

(श्रवण बेल्गोल के शिला लेख नं० ···)

१०—नित्यस्नानं गृहस्थस्य, देवार्चन परिग्रहे।
यतेस्तु दुर्जनस्पर्शात्, स्नानमन्यद् विगर्हितं ॥ १ ॥

तत्र यतेः रजस्वलास्पर्शे चण्डालस्पर्शे शुनक गर्दभ नापित योग कपालस्पर्शे वमने विष्टोपरि पाद पतने शरीरोपरि काक विण्मोचने इत्यादि स्नानोत्पत्तौ सत्यां दंडवद् उपविश्यते, श्रावकादिक श्छात्रादिको वा जलं नामयति, सर्वांग प्रक्षालनं क्रियते, स्वयं हस्तमर्दनेन अंगमलं न दूरी क्रियते। स्नाने संजाते सति उपवासो गृह्यते, पंच नमस्कार शतमष्टोतरं कायोत्सर्गेण तप्यते एवं शुद्धिर्भवति।

माने-दिगम्बर मुनि को जल स्नान जा है, सीर्फ वस्त्र वेजा है
(आ० कुन्द कुन्द कृत मोक्ष प्राभृत गा० ९८ की श्रुतसागरी टीका १०१)
उपरोक्त सब बातें दिगम्बरीय अपरिग्रहता को आभारी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महानुभाव ! इस अपरिग्रहता से तो यही चारितार्थ होता है कि-गुड़ खाना और गुल गुले से परहेज करना अर्थात्-उपाधि रखना और वस्त्र नाम का परहेज करना

दिगम्बर—वस्त्र वाला मुनि लज्जा परिषह को नहीं जीत सकता है।

जैन—परिषह २२ हैं, इनमें लज्जा नाम का कोई परिषह नहीं है। दिगम्बर ने अपनी मनवाने के लिये यह नया तुक्का चला रक्खा है।

दिगम्बर—वस्त्र तो मुनि के लिये पुरुषेन्द्रिय के विकार को छीपाने का साधन है। माने वस्त्र वाला मुनि जितेन्द्रिय नहीं है। दिगम्बर मुनि ही जितेन्द्रिय है।

जैन—दिगम्बर मुनि कितने जितेन्द्रिय हैं उनके कई प्रमाण "जैन जगत्" की फाइल में प्रकट हो चुके हैं। पूर्वोक्त दिगम्बर मुनि जय सागर जी ने क्या २ गुल खेला है तथा जबलपुर में दिगम्बर मुनि मुनीन्द्र सागर के संघ के तीनों मुनियों की कूप पतन आदि कैसी २ शोचनीय दशा हुई है यह जैन जगत् से छिपा नहीं है मगर वे भी बेचारे करे क्या ? मनुष्य को नवम गुण स्थानक तक वेदोदय होता है, जो दिगम्बर होने मात्र से दबता नहीं है। दिगम्बर के प्रायश्चित ग्रंथ भी दिगम्बरी दशा में चतुर्थव्रत दूषण का स्वीकार करते हैं देखो

जंता रूढ़ो जोणीं ॥ ४६ ॥ अएणेहिं अगुणिंद ॥ ५१ ॥ परेहिं विएणाद मेक वारम्मि ॥ ५२ ॥ इंदिय खलणं जायदि० ॥ ४८ ॥

(आ० इन्द्रनन्दि कृत छेदपींडम्)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर—यदि वे मुनि कत्था का प्रयोग कर लेते तो उन की यह दशा नहीं होती वे कच्चे होंगे।

जैन—महानुभाव ! दवाई प्रयोग से जितेन्द्रियता आती है कि मनके मारने से ? दवाई से प्राप्त की हुई बाह्य कृतिम जितेन्द्रियता से क्या लाभ ?

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्रों में दिगम्बर मुनि को नवम गुण स्थानक तक पुं० स्त्री और नपुं० इन तीनों वेद का उदय माना है जिनमें पुं० वेद अन्य गोचर है,

अतः उसे प्रयोग से दबा कर जितेन्द्रिय बनना आवश्यक है

जैन—ऐसी जितेन्द्रियता दिगम्बर को ही मुबारक हो, नवम गुण स्थान वर्ती दिगम्बर मुनि में तीनों वेद का उदय मानना और श्वेताम्बर मुनि पर सीर्फ वस्त्र के ही जरिये झूठा आक्षेप करना, यह नितान्त मताभिनिवेश ही है।

दिगम्बर—श्वेताम्बरीय आचेलक्य कल्प में भी वस्त्र का निषेध स्पष्ट है।

जैन—इस कल्प से निषेध नहीं किन्तु विधान ही किया गया है।

जो मानता है कि-अपरिग्रहता से वस्त्रों का सर्वथा निषेध हो जाता है। उसको इस कल्प की आज्ञा से ठीक उत्तर मिल जाता है।

इस अचेलक कल्प के स्वतंत्र विधान से निर्विवाद सिद्ध है कि-अपरिग्रहता में वस्त्र की व्यवस्था होती नहीं थी अतः इस स्वतंत्र कल्प के द्वारा नयी व्यवस्था करनी पडी । सचमुच अपरिग्रहता माने अममत्व के द्वारा वस्त्र के विधि-निषेध की व्यवस्था कैसे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हो सकती है ? वस्त्रों की मर्यादा के लिये स्वतंत्र विधान अनिवार्य था, जो आचेलक्य से बताया गया है।

संस्कृत वगैरह भाषाओं में सर्वथा निषेध या अल्प निषेध करना हो, तब समासमें अ और अन् शब्द का प्रयोग किया जाता है जैसे कि—

अ=निषेध । अ+जीव=जीव से भिन्न, जीव रहित । अ+वृष्टि=वृष्टि का अभाव ।

अ=अल्पत्व । अ+नुदरी कन्या=छोटे पेटवाली कन्या । अ+ज्ञ=अल्पज्ञ । अ+वृष्टि=अल्पवृष्टि । अ+ज्ञान=अल्प ज्ञान विपरीतज्ञान । अ+बला=अल्पबला । इत्यादि

इस प्रकार यहाँ अचेल का अर्थ भी अ+चेल माने "अल्प वस्त्र होना" यही किया गया है।

इस कल्प से वस्त्रों का निषेध नहीं बल्कि मर्यादा हो जाती है। इस मर्यादा से भिन्न या अधिक वस्त्र रखने वाला निर्ग्रन्थ मुनि वकुश है जो बात तत्वार्थ सूत्र के "विविध विचित्र परिग्रह युक्तः वहु विशेष युक्तो पकरणा कांक्षी" इत्यादि से स्पष्ट है। दिगम्बर आचार्य को भी आचेलक्य का यही अर्थ सम्मत है।

दिगम्बर—दिगम्बरों ने आचेलक्य कल्प का विधान ही नहीं किया है। फिर सम्मति कैसी ? जो अपरिग्रह से ही अचेलभाव का स्वीकार करते हैं। वे अचेलक कल्प का भिन्न विधान करके अपनी स्वीकृति को कमजोर क्यों बनावें ?

जैन—अपरिग्रहता में वस्त्र की व्यवस्था नहीं है अतः एव दिगम्बर ग्रन्थकार आचेलक्य रूप वस्त्र व्यवस्था का अलग विधान करते हैं। देखिये—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आचेलुक्कुद्देसिय सेज्जाहर रायपिंडं किदियम्मं ।
वद जेट्ठ पडिक्कमणं मासं पज्जो समण कप्पो ॥

(दि० आ० वट्टकेरकृत मूलाचार परि० १० गा १८ आ० नि० गा० १२४६)

अब वे ही आचार्य मुनि के लिये उपधि वगैरह की भी आज्ञा देते हैं। देखिये—

पिंडोवधि सेज्झा ओ, अविसोधिय जो य भूंजदे समणो।
मूलठाणं पत्तो भुवणे सु हवे समणपोल्लो ॥ १० ।२५ ।

टीकांश—पिंडं उपधिं शय्यां आहारोपकरणाऽऽवासादिकम विशोध्य इत्यादि। समणपोल्लो अर्थात् श्रामण्यतुच्छः।

फासुग दाणं फासुगउवधिं तह दोवि अत्तसोधीए ।
जो देदि जोय गिण्हदि. दोण्णंपि महप्फलं होइ ॥।१०। ४५॥

टीकांश—हिंसादि दोष रहित मुपकरणम्

णाणुवहि संजमुवहिं सउचुवहिं अण्णमप्पुवहिं वा ।
पयदं गह-णिक्खेवो समिदी आदाण णिक्खेवा ॥

मुनि को ज्ञानोपधि संयमोपधि और भिन्न २ उपधि होती है। (परि० १ गा० १४)

मुनि के लिये और भी उपधि का जिक्र। (प० ३ गा० ११४)

गुरु साहम्मिय दव्वं, पुत्थय मण्णं च गेण्हिदुं इच्छे ।
तेसिं विणयेण पुणो णिमंतणा होइ कायव्वा ॥ १३८ ॥

गुरु द्रव्य, साधर्मिक मुनि द्रव्य, गुरु पुस्तक (प० ४ गा० १३८)

सारांश—अचेल कल्प भी वस्त्र की मर्यादा करने वाला होने से वस्त्र विधान का अंग ही है।

दिगम्बर—वस्त्र वाले को सामायिक चारित्र नहीं होता है।

जैन—सामायिक देशावगासिक और पौषध ये साधु जीवन के प्राथमिक शिक्षा पाठ है। इन सामायिक आदि को वस्त्र वाले

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गृहस्थ ही करते हैं, फिर कैसे माना जाय कि सवस्त्र दशा में सामायिक नहीं है ?।

यद्यपि दि० आचार्यों को सवस्त्र सामायिक आदि करने की बात खटकती है और उस सिलसिला में किसी २ ने तो इन श्रावक व्रतों को उड़ाने तक की कोशीश भी की है, किन्तु वे कामयाब न हुए। इस बात का निम्न लिखित मत भेदों से पत्ता पाया जाता है।

A ६ दिग् ७ देशा ८ नर्थ दंड विरति ९ सामायिक १० पौषधोपवासो ११ पभोग परिमाण १२ तिथिसंविभाग व्रत संपन्नश्च ॥ २१ ॥ मारणान्ति कीं सल्लेखनां जोषिता च ॥ २२ ॥ *

(दिगम्बरीय तत्वार्थ सूत्र अ० ७)

B ६ दिग्परिमाण, ७ भोगोपभोगप० ८ अनर्थ दंड विरति ९ सामायिक १० देसावगासिक ११ पौषध १२ अतिथि संविभाग

(रत्न करंड श्रावका चार पं आशाधर कृत सागारधर्मामृत)

C ९ सामाइयं च पढमं, १० बिदियं च तहेव पोसहं भणियं ॥ ११ तइयं अतिहि पुज्जं, १२ चउत्थं संलेहणा अंते ॥ २६ ॥

(आ० कुन्द कुन्द कृत चारित्र प्राभृत गा० २६)

---

* अतिथिसं विभाग की दिगम्बर विधि इस प्रकार है।
व्रतम तिथि संविभागः, पात्र विशेषाय विधि विशेषेण।
द्रव्य विशेष वितरणं, दातृ विशेषस्य फल विशेषाय। ५। ४१।
ज्ञानादिसिध्यर्थ-तनुस्थित्यर्था-न्नाय यः स्वयम्।
यत्नेनाऽतति गेहंवा, न तिथि र्यस्य सोऽतिथिः। ५। ४२।
यतिः स्या दुत्तमं पात्रं, मध्यमं श्रावकोऽधमंम्।
सुदृष्टि स्तद्वि शिष्टत्वं, विशिष्ट गुण योगतः। ५। ४४।
कृत्वा माध्याह्निकं भोक्तु—मुद्युक्तो ऽतिथये ददे।
स्वार्थं कृतं भक्तमिति, ध्यायन्नतिथि मीक्षताम्। ५। ५१।
(पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृत अ० ५)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

D E ऊपर के अनुसार

(आ० शिवकोटिकृत रत्नमाला) (आ० देव सेन कृत भाव संग्रह)

F भोगोपभोग विरमण के स्थान पर देशावगासिक का स्वीकार और शेष ऊपर के अनुसार

(आ० जिनसेन कृत आदि पुराण पर्व १०)

G सामायिक पौषध का अस्वीकार, परिभोग का भिन्न आविष्कार, देशावगासिक का स्वीकार और शेष ऊपर के अनुसार (आ० वसुवन्दीकृत)

आजकल भी दिगम्बर समाज में जो सामायिक किया जाता है, वह ५ या १० मिनट तक ध्यान रूप और जो पौषध किया जाता है वह सिर्फ उपवास रूप किया जाता है, माने वे उसमें असली रूप से नहीं रहे है। दिगम्बरत्व की रक्षा के कारण उन सामायिक देशावगासिक और पौषध व्रतों की कैसी शोचनीय दशा हुई है? अस्तु।

दिगम्बर—वस्त्र वाले को छट्ठा प्रमत्त गुण स्थान की प्राप्ति नहीं होती है।

जैन--यह भी आप की मनमानी कल्पना है यदि मूर्च्छा वाले उस गुण स्थान को नहीं पा सकते हैं ऐसा माना जाय तब तो वाकई में ठीक है मगर आपने तो कुछ का कुछ मान रक्खा है। असल में तो दिगम्बर आचार्य वस्त्र वाले को ही नहीं वरन् गृहस्थ को भी छुठा और सातवा गुण स्थान की प्राप्ति बताते हैं।

वे फरमाते हैं कि जीव पांच वे गुण स्थान के बाद सातवे गुण स्थान में ही चढ़ जाता है। और बाद में लौट कर छुटे गुण स्थान में आता है। गुण स्थान प्राप्ति का नियम है कि कोई जीव पाँचवे से छठ में नहीं जाता है, मान पंचम गुण स्थान वर्ती

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रावक ध्यान दशा में अप्रमत गुण स्थान को पहुंच जाता है और अंतर्मुहूर्त के बाद छठा में आता है

इस प्रकार शुरुमें गृहस्थ दशा में ही प्रमत्त व अप्रमत्त आदि गुण स्थान की प्राप्ति होती है बाद में कोई महानुभाव मुनि भी हो जाता है, मगर नग्न होते ही छट्ठा या सातवाँ गुण स्थान मिल जाय ऐसा कोई एकान्त नियम नहीं है। भूलना नहीं चाहिये, दिगम्बर मत में पांचवे से सीधा छठा गुण स्थान की प्राप्ति मानी नहीं है।

दिगम्बर—क्या आप इस सम्बन्ध में किसी दिगम्बर विद्वान् का प्रमाण दे सकते है।

जैन—महानुभाव ! दिगम्बर शास्त्रों में छट्ठा सातवाँ गुण स्थान पाने में यह आम मान्यता है। अतः इस विषय के अनेक प्रमाण हैं।

आप की प्रतीति के लिये यहाँ एक प्रमाण दिया जाता है। जैसाकि—

"फिर यही सम्यग दृष्टि जब अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय को (जो श्रावक के व्रतों को रोकती है) उपशम कर देता है तब चौथे स पाँचवे देश विरत गुण स्थान में आ जाता है इस दरजे में श्रावक की ग्यारह प्रतिमा पाली जाती है इससे आगे के दरजे साधु के लिये है।

यही श्रावक जब प्रत्याख्यानबरण कषाय का (जो साधु व्रत को रोकते हैं) उपशम कर देता है और संज्वलन व नो कषाय का (जो पूर्ण चारित्र को रोकती है) मंद उदय साथ साथ करता है तब पाँचवे से सातवे गुण स्थान अप्रमत्त विरत में पहुँच जाता है, छुठे में चढ़ना नहीं होता है इस सातवे का काल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अंतर्मुहूर्त का है। यहाँ ध्यान अवस्था होती है। फिर संज्वलनादि तेरह कषायों के तीव्र उदय से प्रमत विरत नाम छठे गुण स्थान में आजाता है।"-

(आ० कुन्द कुन्द कृत पंचास्तिकाय गा० १२१ की ब्र० शीतलप्रसाद कृत भाषा टीका खं० २ पृ० ७६)

ऊपर के प्रमाणों से भी यही मानना होगा कि वस्त्र वाला छठा व सातवाँ गुण स्थान का अधिकारी है, माने गृहस्थ और स्त्री ये सब इन गुण स्थान के अधिकारी हैं

यही कारण है कि भरत चक्रवर्ति को गृहस्थ दशा में ही केवल ज्ञान हुआ था दिगम्बर विद्वानों ने भी इस मान्यता को लोकोक्ति के रूप में स्वीकृति दे दी है जिसकी विशेष विचारणा "मोक्ष योग्य" अधिकार में की जायगी।

दिगम्बर--वस्त्र वाले को जैन मुनि मान लो, मूर्च्छा के अभाव होने से अपरिग्रही निर्ग्रन्थ मान लो, छठा और सातवें गुण स्थान के अधिकारी मानलो मगर उसे मोक्ष हरगिज नहीं मिल सकती है, क्योंकि नंगापन ही मुनि लिंग है। और वही मोक्ष मार्ग है। जैसे कि लिंगं जह जाद रूप मिदि भणिदं ॥ २४ ॥

(आ० कुन्द कुन्द कृत प्रवचन सार गा० २४)

जैन--"ही" और "भी" ये एकान्त वाद और अनेकान्त वाद के भेदक सूत्र हैं। "नग्नता ही मोक्ष मार्ग है" ऐसा कहना ही एकान्त वाद है, और नग्नता भी मोक्ष मार्ग है, ऐसा कहना सो अनेकान्त वाद है। आप "अनेकान्त वादी" बन जाओ, जब आप को अपनी गलती ख्याल में आ जायगी।

आप मानते हो कि "नग्नता ही मोक्ष मार्ग है" तब तो मनुष्य के अतिरिक्त सब प्राणी, चूहा, कुत्ता, बिल्ली, सिंह, तोता, कौआ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पागल मनुष्य और दिगम्बर मुनि ही मोक्ष के लायक हैं वास्तव में वे सब दिगम्बर हैं। और सब सभ्यमनुष्य, दिगम्बर गृहस्थ तथा श्वेताम्बर मोक्ष के लिये अयोग्य है क्योंकि ये सब अदिगम्बर यानी श्वेताम्बर है। क्या यह ठीक मान्यता है! यद्यपि दिगम्बर के आदि आचार्य कुन्द कुन्द दिगम्बरत्व के ऊपर काफी जोर देते हैं मगर वे या कोई भी दिगम्बर आचार्य नग्नता ही मोक्ष मार्ग है ऐसा मानते नहीं हैं। खिलाफ में दिगम्बर और श्वेताम्बर सब कोई ऐसा अवश्य मानते हैं कि "सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्ष मार्गः"। आ० कुद कुन्द स्वामी भी ताईद करते हैं कि—

सम्मत्तनाणजुत्तं, चारित्तं राग दोस परिहिणं।
मोक्खस्स हवदि मग्गो, भव्वाणं लद्धबुद्धीणं ॥ १०६ ॥

(पंचास्तिकाय समयसार गा० १०६)

णाणेण दंसणेण य, तवेण य चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे, मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥ ३० ॥

(दर्शन प्राभृत गा० ३०)

णय होदि मोक्खमग्गो लिगं जं देहणिम्ममा अरिहा।
लिगं मुइत्तु दंसण णाण चरित्ताणि सेवंत्ति ॥ ४३६ ॥
दंसण णाण चरित्ताणि, मोक्ख मग्गं जिणा बिंति ॥४४०॥

(समयसार प्राभृत गा० ४३६—४४०)

सामान्य बुद्धि वाला भी समझ सकता है कि आत्मा मोक्ष में जाती है ज्ञान दर्शन वगैरह आत्मा के गुण है अतः इन सम्यक् दर्शन वगैरह से ही मोक्ष हो सकता है, विरुद्ध में शरीर मोक्ष में नहीं जाता है वह चाहे उपाधि सहित हो या उपाधि से रहित हो, मगर यहाँ ही पड़ा रहता है। इस हालत में नग्नता मोक्ष मार्ग नहीं हो सकती है। सम्यक् दर्शन आदि को छोड़ कर नग्नता को मोक्ष

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मार्ग मानना यह न्याय रूप कैसे हो सकता है ? वस्त्र या उपधि में ऐसी कौन सी ताकत है जो कि सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र होने पर भी मोक्ष को रोके ?

दिगम्बर--जनाब ! वस्त्र केवल ज्ञान को रोकता है।

जैन—महानुभाव ! यह आपकी सूझ अर्वाचीन दिगम्बर पंडितों की ही कृपा का फल है। परन्तु दिमाग से जरा सा तो सोचिये कि यह किस हद तक सत्य है। एक मामूली ज्ञान भी वस्त्र पहिनने से न रुकता और न दब सकता है। तो केवल ज्ञान जो कि अघाति चार कर्मों के द्वारा भी नहीं दब सकता है। कैसे दब जायगा उस लोकालोक प्रकाशक केवलज्ञान को सिर्फ देह से ही सम्बन्धित वस्त्र दबा देवें या भगा देवें यह तो दिगम्बरत्व के आग्रही को ही विश्वास हो सकता है।

दिगम्बर "शायटायनाचार्य" भी साफ फरमाते हैं कि-वस्त्राद् न मुक्तिविरहो भवतीति इस दिगम्बर मान्यतानुसार पाण्डवों को गले में लोहा होने पर भी केवल ज्ञान की प्राप्ति व उपस्थिति मानी जाती है, फिर सवस्त्र दशा में केवल ज्ञान का अभाव क्यों माना जाय ?

केवलज्ञान सिंहासन स्वर्णकमल इत्यादि विभूतियों से या देह गुणों से दब जाता नहीं है, मगर वस्त्र से दब जाता है। यह कितनी बुद्धि शून्य कल्पना है ?

(समय प्रा० गा० ३३, ३४)

सारांश—केवल ज्ञान ऐसी पौद्‌गलिक वस्तु नहीं है कि जो वस्त्र से रुक जाय !

दिगम्बर—उपधि के लिये हमारे शास्त्र का पाठ दीजिये

जैन--उपधि के बारे में दिगम्बरीय प्रमाण निम्न हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१-अप्पडिकुट्ठं उवाधिं, अपत्थणिज्जं असंजद जणेहिं
मूच्छादि जणण रहिदं, गेण्हदु समणो यदि वि अप्पं ॥२२॥
आहारे व विहारे देशं कालं समं खमां उपधिं।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो ॥ ३० ॥

(आ॰ कुन्द कुन्द प्रवचन सार)

दिगम्बर मुनि उपाधि का स्वीकार करे, परन्तु उस में ममत्व नहीं रक्खे। आहार और विहार में उपाधि की अपेक्षा को समझ कर योग्य प्रवृति करे।

२-सेवाहि चउविहलिंगं, अब्भिंतरलिंगसुद्धि मावण्णो।
बाहिर लिंगमकज्जं, होइ फुडं भाव रहियाणं ॥ १०६ ॥

(आ॰ कुंद कुंद कृत भाव प्राभृत गा॰ १ ९)

३-ववहारओ पुण णओ, दोण्णि वि लिंगाणि भणदि मोक्ख पहे।

णिच्छणयओ दु णिच्छदि, मोक्खपहे सव्वलिंगाणि ॥

टीकांश-व्यवहारिक नयो द्वे लिंगे मोक्षपथे मन्यते। द्रव्यलिंगमात्रेण संतोषं मा कुरु किन्तु द्रव्यलिंगाधारेण निश्चय-रत्न त्रयात्मक निर्विकल्प समाधिरूप भावनां कुरुत। द्रव्य-लिंगाधार भूतो योऽसौ देहः तस्य ममत्वं निषिध्धं।

माने व्यवहारनय मोक्षमार्ग में मुनि वेश और ज्ञानादि एवं दोनों का स्वीकार करता है और निश्चयनय मोक्ष मार्ग में सब लींगों का निषेध करता है।

आ॰ कुंद कुंद कृत समय प्राभृत गा॰ ४४४
आ॰ जिन सेन कृत तात्पर्य वृत्ति पृ॰ २०८)

४-पिंडं उवधिं सेज्जं, उग्गम उप्पाद णेसणादीहि।
चारित्त रक्खणट्ठं, सोधिंतो होइ सुचरित्तो ॥ २६३ ॥

(भगवती आराधना गा॰ २९३ पृ॰ ११५)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५—उपाधि, ज्ञानोपाधि, संयमोपाधि, तप उपाधि इत्यादि

(आ० वकटेर कृत मूलाचार परि० १ गा० १४, परि० ३ गा ७-११४ परि० ४ गा० १३८ परि० १० गा० २५,४५)

पिंडोवधि सेज्झाओ, अविसोधिय जोय भुंजदे समणो
मूल ठाणं पत्तो, भुवणे सु हवे समणपोल्लो ॥ २५ ॥
फासुगदाणं फासुगमुवधिं, तह दो वि अत्त सोधीए
देदि जो य णिएहदि, दोएहंपि महप्फलं होइ ॥ ४५ ॥

पिंड, उपाधि, शय्या, संस्तारक फासुक उपाधि वगैरह।

(मूलाचार परिच्छेद १०)

६-सम्यक्त्व ज्ञान शीलानि तपश्चेतीह सिद्धये।
तेषा मुपग्रहार्थाय स्मृतं चीवर धारणम्

(वाचक श्री उमा स्वातिजी)

७-८"अविविक्त परिग्रहाः" "उपकरणाभिष्वक्त चित्तो विविध विचित्र परिग्रह युक्तः बहु विशेष युक्तोपकरणा कांची तत्संस्कार प्रतिकार सेवी"

ये सब भिन्न २ निर्गन्थों के लक्षण हैं, उप करण के कारण ही निर्गन्थों में जो जो भेद हैं वे यहां बताये गये हैं इसीसे सप्रमाण है कि पांचो निर्ग्रन्थ वस्त्रादि उपकरण को रखते हैं।

द्रव्य लिंगं प्रतीत्य भाज्याः

श्रमणों का द्रव्य लिंग माने वस्त्रादि वेष भिन्न २ प्रकार के होते हैं और इस द्रव्यलिंग के जरिये निर्गन्थ भी अनेक प्रकार के हैं (पूज्यपाद कृत सर्वार्थ सिद्धि और आ०......कृत राजवार्तिक पृ० ३५८ ३५९)

"कम्वलादिकं गृहीत्वा न प्रक्षालंते" इत्यादि

(दि० आ० श्रुत सागर कृत तत्वार्थ अ० ९ सू० ४ की टीका, चर्चा सागर समीक्षा प्रस्तावना)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१० तपः पर्याय शरीर सहकारि भूतमन्न पान संयम शौच ज्ञानोपकरण तृण मय प्रावरणादिकं किमपि गृह्णान्ति तथापि ममत्वं न करोति ।

अन्नोपकरण, पानोपकरण, संयमोपकरण, शौचोपकरण ज्ञानोपकरण और तृणज वस्त्र वगैरह दिगम्बर मुनि के उपकरण है । वे इनमें ममता न करें ।

(ब्रह्म देव कृत परमात्म प्रकाश गा० २१६ की टीका पृष्ठ २३२)

भरहे दुसम समये सद्य कमं मोल्लिऊण जो मूढो ।
परिवट्ठइ दिगविरओ, सो समणो संघ बाहिरओ ॥१॥
पासत्थाणं सेवी, पासत्थो पंचचेल परिहीणो ।
विवरीयहपवादी, अवंदणिज्जो जइ होई ॥

(दि० भद्रबाहु संहिता खं० ३ अ० ७ गा०)

११ कोऽपवाद वेशः ? कलौ किल म्लेच्छादयो नग्नं दृष्ट्वा उपद्रवं यतीनां कुर्वन्ति, तेन मण्डपदुर्गे श्री वसन्त कीर्ति स्वामिना चर्यादि वेलायां तट्टी सादरा दिकेन शरीर माच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुंचति, इत्युपदेशःकृतः संयमिना मित्यपवादवेषः ।

तथा नृपादि वर्गोत्पन्न परम वैराग्यवान् लिंग शुद्धि रहितः उत्पन्न मेहनपुट दोष लज्जावान् वा शीताद्यसहिष्णुर्वा तथा करोति सोऽप्यपवादलिंगः प्रोच्यते ।

(आ० कुन्द कुन्द कृत दर्शन प्राभृत गा० २४ की उभय भाषा चक्रवर्ति दि० कलिकाल सर्वज्ञ आ० श्रुतसागर कृत टीका पृ० २१ । पं० परमेष्ठीदास कृत चर्चा सागर समीक्षा प्रस्तावना ।)

१२—"णिक्खेवो" यत् किंचित् वस्तु पुस्तक कमण्डलु मुख्यं क्वचिन्निक्षिप्यते मुच्यते ध्रियते तान्निक्षेप स्थानं दृष्ट्वा तथवै

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रतिलिख्य च ध्रियते मयूरपिच्छस्याऽसन्निधाने "मृदुवस्त्रेण" कदाचित्तथा क्रियते निक्षेपणा नाम्नी पंचमी समीति भवति ॥

(चारित्र प्राभृत गा० ३६ श्रुतसागरी टीका)

१४—मुनि चारित्रो पकरण पीछी के बिना नहीं चल सकता है

(चारित्रसार, छेदपींडगा० ८०, चर्चासागर चर्चा०७, आ० कुन्द कुन्द चरित्र)

१५–तयोरुपकरणा सक्ति संभवात् आर्तध्यानं कदाचित्कं संभवति, आर्त ध्यानेन लेश्यादित्रयं भवतीति।

पांचो निर्गन्थ उपकरण वाले होते हैं उनमें से बकुश और प्रति सेवना कुशील को कभी आसक्ति भी होती है जब उनको आर्त ध्यान होता है तब शुरू की तीन लेश्या यें भी होती हैं।

(चारित्र सार, विद्वज्जन बोधक पृ० १७९)

१६–मोक्षाय धर्मसिध्यर्थं शरीरं धार्यते यथा।
शरीर धारणार्थं च भैक्षग्रहण मिष्यते ॥ १ ॥
तथैवोपग्रहार्थाय पात्र चीवरमीष्यते।
जिनै रूपग्रहः साधो रिष्यते न परिग्रहः ॥ २ ॥

माने मोक्ष और धर्म की साधना में शरीर भिक्षा पात्र वस्त्र वगैरह उपकारक साधन हैं ये परिग्रह नहीं हैं किन्तु उपग्रह हैं।

(वा० अश्वसेन कृत"······)

१७—वस्त्र पात्राश्रयादिन्य-पराण्यपि यथोचितम्
दातव्यानि विधानेन रत्नत्रितयहेतवे ॥ (आ० अमितगति)

१८—शय्या सनोपधानानि, शास्त्रोपकरणानि च
पूर्वं सम्यक् समालोच्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः १२
गृह्णतोऽस्य प्रयत्नेन, क्षिपतो वा धरातले
भवत्य विकला साधो—रादान समिति स्फुटम् १३
शय्या, आसन, उपधान, शास्त्र उपकरण वगैरा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(दि० आ० शुभ चन्द्र कृत ज्ञानार्णव अ० ८ श्लो० १२-१३)

१६–कौपीनेपि समूर्च्छत्वा न्नार्हं त्यार्यो महाव्रतम् ॥
अपि भाक्त ममूर्च्छत्वात् साटकेऽप्यार्यिकार्हति ॥ ३६ ॥

मूर्छा होने के कारण लंगोटी वाला श्रावक भी उपचरित महाव्रत के योग्य नहीं है, मगर "मूर्च्छा नहीं होने के कारण" वस्त्र वाली श्रमणी भी उपचरित महाव्रत के योग्य है। मान वस्त्र वाले को महाव्रत है मूर्छा वाले को नहीं है।

यदौत्सर्गिक मन्यद्वा, लिंगमुक्तं जिनैः स्त्रियाः
पुंवत्त दिष्यते मृत्यु काले स्वल्प कृतोपधेः ॥ ३८ ॥
देह एव भवो जन्तो-र्यल्लिंगं च तदाश्रितम् ॥
जातिवत्तद् ग्रहं तत्र, त्यक्त्वा स्वात्म ग्रहं वशेत् ॥ ३९ ॥
शय्योपध्या-लोचना-न्न-वैयावृत्येषु पंचधा ॥
शुद्धिः स्यात् दृष्टि-धी-वृत्त विनयावश्यकेषु वा ॥ ४२ ॥

स्वोपज्ञटीकांश–स्यादसौशुद्धिः । कतिधा ? पंचधा । केषु ? शय्यादिषु विषयेषु । तत्र, शय्या वसति,संस्तरौ, उपाधिः-संयम साधनम् ।...वृत्त-चारित्र ... निरति चार प्रवृत्तिः ॥ ४२ ॥

बाह्यो ग्रन्थों गमक्षाणा-मान्तरो विषयैषिता ॥
निर्मोहस्तत्र निर्ग्रन्थः पान्थः शिवपुरे यतः ॥ ८६ ॥

मान शरीर इन्द्रिय वगैरह बाह्य ग्रन्थ है विषयेच्छा आंतर ग्रन्थ है, उनमें "ममता" न रक्खो। *

---

* निर्ग्रन्थो को त्याज्य बाह्य ग्रन्थ और अभ्यंतर ग्रन्थ का स्वरूप इस प्रकार है—

सो विय गंथो दुविहो, बज्झो अब्भिंतरो अ बोधव्वो।
अंतो अ चोद्दस विहो, दसहा पुण बाहिरो गंथो ॥ ८२३ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विवेकोऽक्ष कषायां ग भक्तो पधिषु पंचधा ।
स्यात् शय्यो पधिकायान्न वैया वृत्य करेषु वा ॥२१७॥

इन्द्रिय, कषाय, शरीर, आहार व उपाधि में या शय्या, उपाधि, शरीर, आहार, व वैयावृत्य में विवेक रखना ॥ २१७ ॥

(सं० १२९६ में पं० आशाधर कृत सटीक सागार धर्मामृत अ० ८)

२०-अपवित्र पटो नग्नो, नग्नश्चार्धपटः स्मृतः ।
नग्नश्च मलीनोद्वासी, नग्नः कौपीन वानपि ॥ २१ ॥
कषाय वाससा नग्नो, नग्नश्चानुत्तरीय मान् ।
अन्तः कच्छो बहिः कच्छो, मुक्तकच्छस्तथैव च ॥ २२ ॥
साक्षान्नग्नः स विज्ञेयो, दशनग्नाः प्रकीर्तिताः ॥ २३ ॥

माने-दश किस्मके नग्न होते हैं ।

(दि० आ० सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार अ० ३ सं १६६५)

खेत्तं[1] वत्थु[2] धन्न[3] धन[4], संचओ[5] मित्त-णाइ-संजोगो[6] ।
जाण[7] सयणासणाणि[8], दासी दासं च[9] कुवियं च[10] ॥ ८२५ ॥
कोहो माणो माया, लोभो पेज्जं तहेव दोसो अ ।
मिच्छत्त वेद अरइ, रइ हास सोगो भय दुगंछा ॥ ८३१ ॥
सावज्जेण विमुक्का, सब्भिंतर वाहिरेण गँथेण ।
निग्गहपरमा य विदू, तेणेव होंति निग्गँथा ॥ ८३२ ॥
केई सव्वविमुक्का, कोहाईएहिं केई भइयव्वा ॥ ८३३ ॥

(श्री सँघदासगणिक्षमाश्रमणकृत, बृहत्कल्पसूत्र भाष्य)

क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं, द्विपदं च चतुष्पदं ।
हिरण्यं च सुवर्णं च, कुप्यं भाण्डं बहिर्दश ॥ १ ॥
मिथ्यात्ववेदौ हास्यादि-षट् कषाय चतुष्टयं ।
रागद्वेषौ च संगाःस्यु—रन्तरङ्गाः चतुर्दश ॥ २ ॥
कुप्यं—पींछी, रुमाल । भाण्ड—कमंडलु, पात्र ॥
(दर्शन प्राभृत गा० १४ टीका, भाव प्राभृत गा० ५६ टीका)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर--मुनि को उपधि रखना चाहिये, मगर उसमें ऊनी रजोहरण और कमली नहीं रखना चाहिये ? क्योंकि ऊन अपवित्र वस्तु है यदि रजोहरण रखना अनिवार्य है तो मोर पीछ, गीधपीछ, बलाक पीछ या और कोई पीछ रखनी चाहिये? क्योंकि ये पवित्र हैं।

जैन--चमड़ी केश नख पींछे ये सब एक से हैं, इनमें पवित्रता और अपवित्रता का भेद कैसे माना जाय ?

दिगम्बर--पीछें, कुदरतन मिलती हैं इनके पाने में मोर आदि की हिंसा नहीं होती है अतः पीछे पवित्र हैं। ऊन कतर के ली जाती है इसके पाने में भेड़ वगैरह की हिंसा होती है या वह मरे हुए भेड़ की मीलती है अतः ऊन अपवित्र है।

जैन--महानुभाव! पीछें खींचने से मोर को बड़ा कष्ट होता है वह मर भी जाता है, पींछें मुश्किल से आधाकर्मीक आदि दोष युक्त और मरे मोर के भी मिलते हैं, यह है आपकी पवित्र वस्तु। और जिस वस्तु के पाने में न भेड़ की हिंसा है न कष्ट है न आधाकर्मी पाप है और ऋतु आदि की अपेक्षा से जिसका काटना अनिवार्य एवं उपकार रूप माना जाता है, वह वस्तु है अपवित्र!

इस प्रकार मनमानी कल्पना से क्या कोई वस्तु पवित्र या अपवित्र बन सकती है!

यहाँ वस्तु स्थिति यही है कि दिगम्बर विद्वानों ने श्वेताम्बर मुनिभेष की निन्दा करने के लिये ऊनको अपवित्र लिख दिया है वास्तव में ऊन अपवित्र नहीं है लौकिक व्यवहारों में भी ऊनी सूती कपड़े की बनिस्पत अधिक पवित्र मानी जाती है।

दिगम्बर--जब मुनि वस्त्र रख सकते हैं तो उनको पात्र रखने में किसी प्रकार का विरोध नहीं होना चाहिये, कमण्डल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रक्खें या पात्र, वह एक सी बात है। एक नग्न के लिये उपयुक्त है, दूसरा वस्त्र वालों के लिये।

जैन---संभवतः कमण्डल रखना यह सन्यासियों का अनुकरण है। प्रति लेखना की अपेक्षा से तो पात्र रखना जैन मुनि के लिये अधिक उपयुक्त है इसके अलावा दिगम्बर शास्त्रों में पात्र के लिये तिरोहित विधान भी मिलता है। जैसे—

१—तब बाल बुड्ढ सुय आयरांह 'दुब्बल तणुरोह दुहांयरांह।

ओसह पय पच्छाय जोगु जासुं, दहविणु विज्जावच्चंगु तासु॥
किंरंतो णिंदियो मुणिंदु। हुओ णंदिमितु नाम जियणिंदु॥

(घत्ताबंध-हरिवंश पुराण)

माने-तपस्वी बाल वृद्ध श्रुतधर आचार्य दुर्बल और रोगी वगैरह की आहार पानी और औषधि आदि से वैयावृत्य करने का विधान है। जो पात्र रखने से ही साध्य है। सर्वथा शक्ति रहित और बीमार साधु की वैयावृत्य करने की शास्त्रों की आज्ञा है। वह उठ भी नहीं सकता है जब दूसरा मुनि पात्र द्वारा शुद्ध आहार पानी लाकर उसकी वैयावृत्य करे तब वह आहार पानी ले सकता है, इस हालत में वैयावृत्य की सफलता है एवं पात्र रखना ही अनिवार्य है।

२-मुनि आहार पानी से वैयावृत्य करे। (पूजापाठ)

माने-मुनि पात्र के जरिये लाये हुए आहार पानी से आचार्य की भक्ति करे साधर्मिक (मुनि) की भक्ति करे।

३—रात्रौ ग्लानेन भुक्ते स्यादेकस्मिं श्च चतुर्विधे ॥
उपवासः प्रदातव्यः षष्ठमेव यथा क्रमम् ॥ ३३ ॥

टीका-रात्रौ निशि। ग्लानेन व्याधि विशेष परिश्रम विविधोपवासादि परिपीडितेन सता कर्मोदय वशात् प्राणसंकटे। भुक्तेऽ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अभ्यवहृते सति । स्यात् भवेत् । एकस्मिन् भुक्ते एकतराहारे भुक्ते सति । चतुर्विधे चतुष्प्रकारे अशने पाने खाद्य स्वाद्येच । उपवासः क्षमणं, प्रदातव्यः प्रदेयः षष्ठमेव षष्ठं। यथाक्रमं यथासंख्यं एकास्मिन्नाहारे क्षमणं, चतुर्विधाहारे षष्ठ मिति ॥ ३३ ॥

(दिगम्बरीय प्रायश्चित्त चूलिका श्लो० ३३)

यदि मुनि न वस्त्र रक्खे, न आहार पानी लावे, तो यह रात्रि भोजन और तज्जन्य प्रायश्चित का प्रसंग कैसे हो सकता है !

भूलना नहीं चाहिये कि-दिगम्बर शास्त्र में दिगम्बर मुनि के लिये ही यह प्रायश्चित बताया है ।

४-रत्ति गिलाणभत्ते, चउविह एकम्हि छट्ठखमणाओ
उवसग्गे सठाणं, चरियापविट्ठस्स मूलमिदी ॥ २९ ॥

टीका-रात्रौ व्याधियुते चतुर्विधाहारे षष्ठं। एक विधाहारेभुक्ते उपवासः। उपसर्गे रात्रिभोजी पंच कल्याणं । रात्रौ चर्याप्रविष्टः मूलं गच्छति । "न तस्य पंक्ति भोजनम्" । इतिषष्ठं व्रतम् ॥ २९॥

(छेद शास्त्र प्रायश्चित्त संग्रह)

माने-दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार उनके मुनि रात्रि भोजन का प्रायश्चित लेवे यह बात पात्र होने के पक्ष में जाती है। यहाँ उस मुनि के लिये "पंक्ति भोजन के त्याग रूप दंड" बताया है। इससे भी सिद्ध है कि श्रमण पात्र को रक्खें उनमें आहार पानी लावे और एक पंक्ति में बैठ कर आहार करें, दोषित साधु इस पंक्ति में बैठने का हकदार नहीं है। यह पंक्तिभोजन भी पात्र रखने के पक्ष में है।

५--पंचानां मूलगुणानां रात्रिभोजनवर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतम प्रतिसेवमानः पुलाको भवति । (तत्वार्थसूत्र)

माने-रात्रि भोजी श्रमण पुलाक है। जैन निर्ग्रन्थ पात्र द्वारा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आहार पानी लाकर दिन दिन में ही आहार कर लेते हैं। मगर कोई मुनि उसको रखले और रात्रि भोजन करे तो वह पुलाक है।

९-मुनि रात को एक वार भोजन पान करे तो तीन उपवास अर्थात् तीन वार नमोकार मंत्र का जाप करना चाहिये।

(दिगम्बर चर्चा सागर पृ० ३२१ च० समीक्षा पृ० १२३)

भट्ट० इन्द्र नन्दी के नीतिसार श्लो० ४६ में भी रोगी साधु की परिचर्या करने का विधान है जो पात्र के जरिये साध्य है

सारांश-जैन निर्ग्रन्थ पात्र को रक्खे। जिनके जरिये वे आहार पानी ला सकते हैं और दूसरे मुनिओं की भक्ति भी कर सकते हैं। इत्यादि।

जिनागम में उल्लेख है कि-मुनि लोहार्यजी पात्र होने के कारण ही तीर्थंकर भगवान महवीर स्वामी की आहार पानी आदि से वैया वृत्य करते थे। (आ० नि० गा०·········टीका)

दिगम्बर--मुनियों को दंड (डंडा) रखना उचित नहीं है, कभी वह अधिकरण भी बन जाता है।

जैन--ठीक बात है पाप श्रमण के पास उपकरण भी अधिकरण बन जाता है, ऐसी हालत में तो दंड ही क्यों पीछी कमण्डल, पुस्तक, रुमाल और शरीर, ये सब अधिकरण बन जाते है। मुनि कुस्ति लड़ें, कमंडल पीछी या पुस्तक से दूसरे को मारे, या पुस्तक के रुमाल से किसी को बांधे तो उसके लिये शरीरादि उपकरण अधिकरण ही बन जाते हैं, इसमें उपकरण का क्या दोष? इसमें तो मुनि ही दोषित हैं। जैनजगत और जैनमित्र की फाइलों में अनेक ऐसे समाचार छपे है कि जिनमें दिगम्बर मुनियों ने उपकरण को अधिकरण बनाया हो उसके प्रमाण है।

तीर्थंकर भगवान श्री महावीर स्वामी फरमाते हैं कि-"
जे आसवा ते परिसवा जे परिसवा ते आसवा।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो आश्रव के हेतु हैं वे ही संवर के हेतु हैं जो संवर के हेतु हैं वे ही आश्रव के हेतु हैं, कैसा अच्छा खुलासा है ?

समय प्राभृत गा० २८३ में भी इसी का ही अनुकरण है।

इस अपेक्षा से दंड भी उपकारक उपकरण है और मुनि उसे आवश्यकता के अनुसार रखते हैं।

दिगम्बर--उपधि किसे मानी जाय ?

जैन--जिसके जरिये पांच महाव्रतों का निर्वाह, ज्ञानादिकी पुष्टि और समीति आदि का पालन अच्छी तरह होता है वह उपधि है, वही उपकारक परद्रव्य है। जिसके द्वारा उपरोक्त फल न हो, वह उपधि नहीं किन्तु उपाधि ही है।

दिगम्बर--उपधि से क्या लाभ है ?

जैन--जैन निर्गन्थों को उपधि द्वारा अनेक लाभ प्राप्त होते हैं जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।

१-नग्नता से धर्म की निन्दा होती है, धर्म प्रचार रुक जाता है, विहार में बाधा पड़ती है, राजा महाराजा विविध फरमान निकालते है, बच्चे डरते हैं, सभ्य समाज अपने घरमें नहीं आने देता है, अजैन का आहार पानी बंद हो जाता है, एक ही घर से गोचरी करनी पडती है, और जैन शासन को अनेकों विधि नुकसान होता है। सिर्फ दो चार हाथ का वस्त्र न होने से इतना नुकसान उठाना पडता है। एक दिगम्बर विद्वान ने ठीक ही कहा है।

अल्पस्य हेतोर्बहु नाश मिच्छन्। विचारमूढः प्रतिभाऽय से त्वम्॥

मुनि जैन धर्म को इस नाश में से चोल पटाके जरिये बचा लेता है। वस्त्रधारी मुनि सब स्थानों में जा सकता है। राजा के अंतःपुर में भी सत्कार पूर्वक प्रवेश पा सकता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२—"मुहपत्ति" भाषा समिति के पालने में अनिवार्य उपाधि है।

३--पीछी और "रजोहरण (ओघा)" यह जैन मुनि का लिंग है; अहिंसा का साधन है। आ० कुंद कुंद ने भी आकाश में जाते समय इस मुनिलींग (बाना) को ही प्रधान माना है।

४—"केसरिका" से यथार्थ प्रति लेखना होती है चारित्र प्राभृत गा० ३६ की टीका में इसी की ही स्वीकृति दी है।

५-जीवाकुल भूमि में जीवों की दया के निमित दंडासण रखना चाहिये जिससे ऊनकी फलियों का परिघ बनाया जाय तो भी दोनों पैर के लिये फासुक जगह मिल जाती है, रात्रिको देह चिंता के लिये जाने आने में दंडासण से ही इर्यासमिति पाली जाती है।

६-पात्र के अभाव में मुनि को एक स्थान से ही आहार लेना पडता है। जिसमें गोचरी की शुद्धी नहीं हो सकती है। गाय चरती है तब थोडा २ खाते २ आगे बढती जाती है कहीं एक स्थान से ही घास को समूल नष्ट नहीं कर देती है ऐसा करने से उसकी चरभूमि हरी भरी रहती है। इसका नाम है "गो-चरी"। भौंरा विभिन्न फूलों से अल्प अल्प रस को पीकर संतुष्ट रहता है। और ऐसा भी नहीं करता है जिससे फूलों को पीडा हो इस विधि का नाम है "भ्रामरी" यानी "मधुकरी"। गधा जहाँ चरता है वहाँ से घास बिलकुल खा जाता है यानि बिलकुल सफाचट कर देता है। इस विधि का नाम है "गधाचरी" मुनि को पात्र के अभाव में उपरोक्त कथनानुसार गोचरी और मधुकरी तो हो ही नहीं सकती है। एक स्थान पर अहार लेने से अल्प कौटुम्बिक को तो कभी दुबारा रसोई करनी पडती है, आधाकर्मिक औद्देशिकादि दोष भी लगते हैं, गुरुभक्ति साधर्मिक भक्ति या ग्लान वैयावृत्य को तिलांजली ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देनी पडती है, गुरु को बताने का और गुरु की आज्ञानुसार या गुरुदत्त आहार पाने का लाभ नहीं मिलता है और गुरु को बिना दिखाये आहार लेते २ क्वचित् स्वच्छंन्दता का भी अवकाश मिलता है। पात्र के अभाव में बीमार या बूढा मुनि तो भूखा ही मरे क्योंकि उसके लिये गृहस्थ ला नहीं सकता है, साधु लाकर देता नहीं है, इस हालत में जैन धर्म की निन्दा होती है।

मान लिया जाय कि इस हालत में मुनि मरे तो देव बनेगा परन्तु यह तो केवल कल्पना मात्र ही है। यदि वह आर्तध्यान में हो तो क्या होगा ? मान लो देव बने तो भी क्या लाभ ? सटीक पंचास्तिकाय गा० ३० में इस प्रवृत्ति को अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग मानकर निषिद्ध बताई है। दिगम्बर शासन में इस प्रकार की अग्राह्य प्रवृत्ति यानि अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग की प्रधानता होने के कारण ही भट्टारक बेन हैं और शास्त्री बढे हैं।

पात्र रखने से मुनि को उपरोक्त दोषों से बचाव होता है। आहार लाकर और गुरु को बताकर खाने से शिथिलता या स्वच्छंदता नहीं आती है। दिगम्बर मुनि कमण्डल रखते हैं मगर उसमें प्रति लेखना करना दुःसाध्य है छिद्र होता है उसकी प्रतिलेखना में भी मुश्किल होती है।

७--आसन और शय्या होय तो वहाँ त्रसजीव एकदम नहीं आ सकता है। और यदि आजाय तो उसको त्रास न हो वैसे दूर हटाया जा सकता है।

८—चातुर्मास में जीवोत्पत्ति बहुत होती है, उनके रक्षण हेतु पाटा आदि का चौमासा में इस्तेमाल करना आवश्यक है।

९—जैन मुनि को पानी की गहराई देखकर नदी पार करने की आज्ञा तो है ही, मगर पानी कितना है यह कैसे जाना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जाय ? इस उपस्थिति में देह प्रमाण लम्बा डंडा ही उपकारक है। मुनि को बिना गहराई देखे नदी में उतरना मना है। इसके अलावा डांडा की स्थापना होती है, विहार में मुनि का काल धर्म हो जाय तो दूसरे मुनि उसको डंडा की जोली में उठा सकते हैं, बीमार मुनि भी डंडा के जरिये उठाया जाता है, स्थवीर मुनि डंडा के सहारे विहार कर सकता है। * डंडा रखना भी आवश्यक है।

सारांश—मुनि चारित्र पालन के लिये वस्त्र, पात्र वगैरह उपकरण को रखते हैं, वैसे ही डंडा को रखते हैं।

इसके अलावा और भी जो २ उपधि हैं वे सब किसी न किसी अंश में लाभकारी ही है। उपधि के द्वारा विशेष शुद्ध चारित्र पालन होता है।

दिगम्बर—विचार पूर्वक अगर देखा जाय तो यह सब बातें सत्य सी प्रतीत होती हैं। फिर भी दिगम्बर आचार्य नग्नता पर ही क्यों जोर देते हैं ?

जैन—नग्नता व पीछी आदि किसी भी द्रव्य लिंग पर एकान्त जोर देना वह परमार्थः नुकसान कारक ही है। और उनसे ही मोक्ष प्राप्ति मानना वह एकान्तिक कल्पना है सरासरी गलती है। इस सत्य को दिगम्बर आचार्य इस रूप में स्पष्ट करते हैं।

भावो हि पढमालिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं ॥
भावो कारण भूदो, गुण दोसाणं जिणा बिंति ॥ २ ॥

गुण दोष का कारण भाव लिंग ही है, उससे द्रव्यलिंग का कोई सम्बन्ध नहीं है।

---

* स्थानक मार्गी मुनि रंग वाली चमकदार और मोहक छड़ी रखते हैं। वह अनुचित है क्योंकि ऐसी ही लकड़ी रखनी चाहिये जो उपरोक्त कार्य्य में सहायक हो। जैन मुनि के डंडे पर ५ समिति वगैरह का निशान रहता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भावेण होइ लिंगी, णहु लिंगी होइ दव्वमित्तेण ।
तम्हा कुणिज्ज भावं, किं किरइ दव्वलिंगेण ॥४८॥

माने-द्रव्यलिंग, नग्नता से कुछ नहीं होता है ।

भावेण होइ णग्गो, बाहिर लिङ्गेण किं च णग्गेण ।
कम्म पयडीय नियरं, णासेइ भावेण ण दव्वेण ॥ ५४ ॥

निर्मम बनो ? नंगा होने से क्या ? नंगा हो जाने से कर्म का विनाश नहीं होता है ।

णग्गत्तणं अकज्जं, भावेण रहियं जिणेहिं पन्नत्तं ।
इय नाऊणय णिच्चं, भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥ ५५ ॥

देहादिसंग रहिओ, माण कसाएहिं सयल परिच्चित्तो ।
अप्पा अप्पम्मि रओ, स भावलिंगी हवे साहू ॥ ५६ ॥

देह वस्त्रादि में निर्मम और निष्कषाय मुनि भाव लिंगी है ।

ममत्तिं परिवज्जामि, णिम्ममत्ति मुवाट्ठिो ॥ ५७ ॥
भावो कारणभूदो, सायाराऽणयार भूदाणं ॥ ६६ ॥
णग्गो पावई दुक्खं, णग्गो संसार सायरे भमई ।
णग्गो ण लहइ बोहीं, जिण भावेण वज्जिओ सुइरं ॥६८॥

नग्नता मोक्ष का कारण नहीं है ।

भाव सहिदो मुणिणो, पावइ आराहणा चउक्कं च ।
भाव रहिदो य मुनिवर, भमइ चीरं दीह संसारे ॥६६॥

नंगा संसार में भटता है ।

सेवहि चउविहलिंगं, अब्भिंतरलिंग सुद्धिमावण्णो ।
बाहिरलिंगमकज्जं होई फुडं भावरहियाणं ॥ १०६ ॥
भाव समणो वि पावइ, सुक्खाइं दुहाई दव्व समणो य ।
इइ णाउं गुण दोसे, भावेण संजुदो होइ ॥ १२७ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मूर्च्छा रहित—भाव साधु सुखी होता है और नंगा—द्रव्य-साधु दुखी होता है। अतः भाव साधु ही बनना चाहिये।

(आ० कुन्द कुन्द कृत भाव प्राभृत)

धम्मेण होइ लिंगं, ण लिंगमित्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहिं भाव धम्मं, किं ते लिंगेण कायव्वो ॥ २ ॥

नंगा हो जाने से साधुता नहीं आती है। अतः द्रव्यलिंग किसी काम का नहीं है। कार्य साधना में भाव साधुता माने निर्ममत्वादि भाव लिंग की ही प्रधानता है।

(आ० कुन्द कुन्द कृत लिंग प्राभृत)

निश्चयनय मोक्ष मार्ग में द्रव्यलिंग को निठल्ला मानता है

(समय प्राभृत ४४४)

त्यक्त्वैव बहिरात्मानं ॥ २७ ॥

मोक्ष मार्ग में बहिरात्मा की चर्चा ही त्याज्य है।

परत्राहं मतिः स्वस्मात् च्युतो बध्नात्यसंशयम् ॥ ४३ ॥

मेरा शरीर, मेरा वस्त्र यह विचारना ही आत्मा को बन्धन कारक है, उनके होने पर भी उन्हें अपना नहीं मानना चाहिये।

शरीरे वाचि चात्मानं ॥ ५४ ॥

शरीर को आत्मा मानना, यह अज्ञानता है शरीर जीव से भिन्न ही है, अतः शरीर सवस्त्र हो या अवस्त्र हो, मगर वह आत्मा को मोक्ष को नहीं रोक सकता है।

जीर्णे स्वदेहे ऽप्यात्मानं, न जीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

इस श्लोक के आशय को लेकर ऐसा श्लोक भी बन सकता है कि—

सवस्त्रे देहे ऽप्यात्मानं, न स-वस्त्रं वदेत् बुधः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

शरीर वस्त्र वाला होता है। आत्मा से वस्त्र का क्या सम्बन्ध है? वह तो नग्न ही है।

नयत्या त्मान मात्मैव, जन्म निर्वाण मेव च ॥ ७५ ॥

आत्मा ही आत्मा को संसार में फिराता है और मोक्ष में ले जाता है माने—"नग्नत्व से मोक्ष है" यह बात कहने मात्र है।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं, देह एवात्मनो भवः ॥
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात्ते ये लिंग कृताग्रहाः ॥ ८७ ॥
जातिर्देहाश्रिता दृष्टा ॥ ८८ ॥

ब्राह्मण पुरुष या नंगा ही मोक्ष में जा सकता है। इत्यादि लिंग के आग्रह से संसार बढ़ता है॥

जाति लिंग विकल्पेन, येषां च समयाग्रहः ॥
ते न आप्नुवन्त्येव, परमं पदमात्मानः ॥ ८६ ॥

मैं ब्राह्मण हूँ मैं नग्न साधु हूँ ऐसा आग्रह ही मोक्ष का बाधक है

(आ पूज्यपाद कृत समाधि शतक)

संघो को वि न तारइ, कट्ठो मूलो तहेव निपिच्छो।
अप्पा तारइ तम्हा, अप्पा ओ झायव्वो ॥

(आ० अमृत चन्द्र कृत श्रावकाचार)

पिच्छे ण हु सम्मत्तं, करगहिए चमर मोरडंबरओ
समभावे जिणदिट्ठं, रागाइ दोस चत्तेण ॥ २८ ॥

(ढाढसी)

केकीपिच्छः श्वेतवासो, द्रावीड़ो यापनीयकः।
निष्पिच्छश्चेति पंचैते, जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥

(दि० आ० इन्द्र नन्दी कृत नीतिसार श्लो० १०)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देह एव भवो जन्तोर्यल्लिंगं च तदाश्रितम्
जातिवत्तद् गृहं तत्र, त्यक्त्वा स्वात्म ग्रहं वशेत् ॥ ३९ ॥

शरीर ही संसार है, लिंग उसके अधीन है, जाति के समान पराश्रित है, अतः नग्नतादि लिंग का आग्रह नहीं रखना चाहिये।

(पं० आशाधर कृत सागार धर्माम्रत)

जो घर त्यागी कहावे जोगी, घरवासी कहँ कहैं जूँ भोगी
अंतर भाव न परखे जोई, गोरख बोले मूरख सोई

(बनारसी विलास पृ० २९९)

सारांश-ऊपर के सब प्रमाणों से निश्चित ही है कि अनेकान्त जैन दर्शन को नग्नता या वस्त्र से कोई वास्ता नहीं है। जैन मुनि नंगा हो या वस्त्र धारक हो, किन्तु वह भाव साधु माने मूर्च्छा रहित अवश्य होना चाहिये, वही मोक्ष का अधिकारी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुनि आचार--अधिकार

दिगम्बर—श्वेताम्बर आगम में जिक्र है कि गणधर गौतम स्वामी ने स्कंदक परिव्राजक का सत्कार किया था यह क्या ?

जैन—महापुरुष द्रव्य क्षेत्र काल और भाव को सोचकर अपनी प्रवृति करते हैं। आ० कुन्द कुन्द ही प्रवचनसार में-"समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥ २१ ॥ देसं कालं जाणित्ता ॥ ३० ॥ इत्यादि आज्ञा देते हैं।

दिगम्बर शास्त्रों में दृष्टान्त भी मिलते हैं कि—

भ० श्री ऋषभदेवजी ने भरत चक्रवर्ती को स्वप्न का फल कहा, मरिचि का भविष्य कहा, भ० श्री नेमिनाथ जी ने बलभद्र जी को द्वारिका भंग का निमित्त बताया, आ० कुन्द कुन्द के शिष्यों ने रात होने पर भी देवो से वार्तालाप किया, इत्यादि।

इसी प्रकार श्री गौतम स्वामी ने भी लाभा लाभ को सोच कर ऐसा किया है। वस्तुतः परम ज्ञानियों की प्रवृत्ति फल प्रधान होती है।

दिगम्बर--श्वेताम्बर शास्त्र में उल्लेख है कि भगवान मुनि सुव्रत स्वामी ने घोड़े को गणधर बनाया था।

जैन—यह झूठी बात है, श्वेताम्बर में ऐसा नहीं लिखा है। हां भ० ने घोडा को सर्व समक्ष प्रति बोध दिया था, मगर उनके गणधर तो "मल्लीकुमार" वगैरह ही थे।

दिगम्बर—दिगम्बर मुनि एक ही घर से पर्याप्त आहार लेते हैं, ऐसा सब मुनियों को करना चाहिये।

जैन--यदि "गोचरी" ही करना है तो जैन मुनि के लिये एक ही घरका एकान्त विधान नहीं होना चाहिये। एक घर के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आहार विधि में आधाकर्मी आदि अनेक दोष लगते हैं, जिनका विस्तृत खुलासा पात्र की चर्चा में किया गया है, वहां से समझ लेना चाहिये

दिगम्बर—जैनेतर के घरका आहार पानी नहीं लेना चाहिये ! कारण ? वे पानी को छानते नहीं हैं, और विना स्नान कराये ही गाय भैंस का दुध निकाल लेते हैं। ये पानी और दूध जैन मुनि के लीये अकल्प्य हैं।

जैन—भगवान् श्री ऋषभदेवजी ने जैनेतरो के घरका आहार पानी लीया है, चौथे आरे के बीच २ में जैन धर्म का लोप हो गया था, जब भ० श्रीशीतलनाथजी वगैरह ने भी जैनेतरो से आहार पानी लीया है। इस हिसाब से तो जैन मुनि को जैनेतर का आहार पानी कल्प्य है। मगर दिगम्बर मुनिजी उनसे आहार पानी लेते नहीं है, कारण ? जैनेतर लोग नग्न को अपने घर में लाने को हीचकते हैं एवं आहार पानी देने में भी घृणा करते हैं, और इस हालत में दि० मुनि भी उनके घर जाते नहीं है। कुछ भी हो, जैन मुनि विवेकी अजैनो से आहार पानी ले सकते हैं।

दिगम्बर—जैन मुनि को शूद्र का आहार पानी नहीं लेना चाहिये।

जैन—दिगम्बर पं० आशाधरजी श्रावका चार में लीखते हैं कि—जाति हीन भी काल आदि के निमित्त से धर्मी बन सकता है। वैसे शूद्र भी उपस्कार से शुद्ध हो सकता है, इत्यादि।

इस प्रकार दिगम्बर समाज में शुद्र की शुद्धि मानी जाति है फिर दिगम्बर मुनि को उसके आहार पानी लेने में हरजा भी क्या है ? मगर आज तो वे जैनतरो का भी आहार पानी नहीं लेते हैं फिर उस शुद्र का कैसे ले सके !

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर मुनिजी शुद्र को अपना शिष्य बना लेवे जैन मुनि बना लेवे, फिर उसके आहार पानी का निषेध कैसा ?

दिगम्बर—हमारे मुनि हमारे लिये भी शूद्र का पानी त्याज्य बताते हैं।

जैन—आप शूद्र के हाथ का सिर्फ पानी नहीं पीते हो परन्तु उनके हाथ का और उनके पानी से धुले हुए एवं संसर्गित शाक, फल, फूल घी दूध इत्यादि को खाते हो शूद्र की मिठाई तक खाते हो उन्हीं चीजों का आहार मुनिको देते हो, तिर्यञ्च भैंस वगैरह को स्नान से पवित्र बना कर उसका दूध भी मुनि को देते हो और आपके आचार शूद्र भी मुनि को आहार देते हैं। फिर भी आप पानी त्याग की बातें बनाते हो यह कहाँ तक ठीक है ? इतना ही क्यों ? शूद्र तुम्हारे मुनि जी बन सकते हैं। इस हालत में शूद्र के पानी का एकान्त निषेध करना, यह अनुचित आज्ञा है

यहां इतना ही पर्याप्त है कि जैन मुनि आचार शूद्र के घर का आहार पानी ग्रहण नहीं करें, यही न्याय मार्ग है यही स्याद्वाद वचन है।

दिगम्बर—जैन मुनि खड़े खड़े आहार पानी करे

जैन—खडे और लब्धिरहित करभोजी के हाथ से खुराक के अंश गिरते हैं, इससे जीव विराधना और निन्दा होती है। गृहस्थ उन्हे उठाते हैं जिसमें पारिष्ठापनिका समीति का विनाश होता है। खडे २ या चलते चलते खाना पीना तो व्यवहार से भी उचित नहीं है। इसमें आसन सिद्धि नहीं हैं। एकासन द्विआसन आदि व्रत प्रत्याख्यान भी नहीं हो सकते हैं। अतः मुनि पात्र के जरिये शुद्ध स्थान में स्थिर बैठ कर आहार पानी करे, यही प्रसंसनीय मार्ग है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर—जैन मुनि जी को महाव्रतों से भिन्न प्रत्याख्यान नहीं होता है। हमारे छ आवश्यक में भी प्रत्याख्यान नहीं माना है। कि जैसा श्वेताम्बर में माना जाता है। देखो—

सामायिक, स्तुति, वंदनक, प्रतिक्रमण, वैनायिक और कृति कर्म्म इत्यादि।

(शुभचन्द्र की अंग पन्नति, पंचास्तिकाय भाषा टीका, ब्रह्म हेमचन्द्र कृत सुभसंधो गा० ६१, ६२, हरिवंश पुराण सर्ग १०)

सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वंदनक, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और स्वाध्याय।

(सोम सेन कृत त्रिवर्णाचार अ० १२ श्लो० ३६)

जैन—महानुभाव ? अर्वाचिक मत के सहकार से दिगम्बर समाज ने उसे उड़ाया है। आवश्यक भाष्य का प्रत्याख्यान अधिकार, पंचाशक, और पंच वस्तु वगैरह में, इस विषय की विशद विचारणा है। अवश्यक छै हैं, १-सामायिक, २-चतुर्विंशतिस्तव, ३ वंदनक, ४ प्रतिक्रमण, ५ कायोत्सर्ग और ६ प्रत्याख्यान।

दिगम्बर विद्वानों में छट्टे आवश्यक के लिये मतभेद है जैसा कि आपने बताया है।

प्रत्याख्यान को उड़ाने से यह मतभेद खड़ा हुआ है मगर आ० वट्ट केर तो "मूलाचार" में छै आवश्यक बताते हैं जिन के प्रत्याख्यान आवश्यक में एकासन, आचाम्ल, चौथ भक्त, छठ, इत्यादि प्रत्याख्यान लिये जाते हैं।

दिगम्बर—मुनि एक दफे आहार करे।

जैन—आपको जैन तपस्या की परिभाषा के खोलने से ही इस मान्यता का उत्तर मिल जायगा।

दिगम्बर—जैन श्रमण के तप की परिभाषा निम्न है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

खमणं छट्ठ-ट्ठम-दसमखमणं खमणं च छट्ठ अट्ठमयं,
खमणं खमणं खमणं, छट्ठंच गदोस्सिमो छेदो ॥७८

(आ० इन्द्रनन्दी कृत—छेदपिंडम् गा० ७८)

आद्यश्चतुर्दश दिनैर्विनिवृत्तयोगः ।
षष्ठेन निष्ठित कृति जिंन वर्धमानः ॥
शेषा विधूतघन कर्म्म निबद्ध पाशाः ।
मासेन ते यति वरास्त्व भवन् वियोगाः ॥ २६ ॥

(समाधि भक्ति श्लो० २६ ॥)

माने छट्ठ, अष्ठम, दशमभक्त इत्यादि तप परिभाषा है, इनका अर्थ होता है २ उपवास ३ उपवास ४ उपवास व्रत इत्यादि। यहां उपवास के दिनों की दो २ खुराक और अंतरपारणा (धारणा) तथा पारणा के एक एक दिन की एकेकवार की १ खुराक का त्याग होता है, इस हिसाब से "दो उपवास वगैरह में छे खुराक के त्याग रूप छट्ठ" इत्यादि संज्ञा दी जाती है। वास्तव में प्रति दिन दो २ दफे खुराक लेना माना जाता है, उनकी मयसंख्या प्रतिज्ञा छट्ठ आदि शब्दो से होती है

जैन—आप मुनि की तपस्या में प्रति दिन दो २ खुराक का हिसाब लगाते हैं, तब तो ठीक है कि मुनि उत्सर्ग से दो दफे आहार करें और उनके त्याग में चतुर्थ भक्त छट्ठभक्त आदि प्रतिज्ञा भी करें। इस विधान से एक दफे ही आहार बताना वह एकान्त वचन हो जाता है। इसके अलावा तपस्वी आदि के लिये तो विशेष आजादी है, वे अधिक लाभ के निमित्त विशेष दफे आहार लें तो भी अनुचित नहीं है।

दिगम्बर—मुनि आहार औषध या भेषज में मांस वगैरह को ग्रहण न करे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन--वास्तविक मार्ग यही है, और मुनि मांस लेते भी नहीं हैं। किन्तु भूलना नहीं चाहिये कि—जैन दर्शन में उत्सर्ग और अपवाद से सापेक्ष वस्तुनिरूपण है। दि० शास्त्र भी बताते हैं कि देशकालज्ञ स्यापि बाल वृद्ध श्रान्त ग्लान त्वानुरोधेनाऽऽहार विहारयो रल्प लेप भयेनाऽप्रवर्तमानस्याऽतिकर्कशा चरणीभूय क्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वांत समस्त संयमाऽमृत भारस्य तपसोऽनवकाशतयाऽशक्य प्रतिकारो महान् लेपो भवति तन्न श्रेयान् अपवाद निरपेक्षः उत्सर्गः ॥ सर्वथानुगम्यस्य परस्पर सापेक्षोत्सर्गापवाद विजृंभितवृत्तिः स्याद्वादः ॥ ३० ॥

(प्रवचन सार गाथा ३० टीका)

माने उत्सर्ग और अपवाद को ख्याल में रख कर प्रवृत्ति करना, यही शुद्ध जैन दर्शन है, यही शुद्ध मुनि मार्ग है।

दिगम्बर—समकत्वी को अष्ट मूल गुण में ही मांस का त्याग हो जाता है।

जैन--अष्ट मूल गुण की दिगम्बरीय कल्पना ही नवीन है अतः इस विषय में दि० आचार्यों का बड़ा मत भेद है। देखिये।

१—तत्रादौ श्रद्दधेज्जैनीं, माज्ञां हिंसाम पासितुम्।
मद्य मांस मधुन्युज्झेत्, पंचक्षीरिफलानि च ॥ २ ॥
अष्टैतान् गृहिणां मूलगुणान् स्थूल वधादि वा।
फलस्थाने स्मरेद् द्युतं, मधुस्थाने इहैव वा ॥ ३ ॥

(पं० आशाधरकृत सागार धर्मामृतं अ० २)

२—३ स्वामि समन्तभद्रमते—५ फल स्थाने ५ स्थूल वधादि, महापुराण मते—५ स्थूलवधादि मद्यमांस और मधु के बजाय द्युत।

(पं० आशाधर कृत सा० टी० सं० १२९६)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४ मद्यमांसमधुत्यागैः सहाणुव्रतपंचकम् ।
अष्टौ मूलगुणानाहु र्गृहिणां श्रमणोत्तमाः ॥

(रत्नकरंडक श्रावका चार, श्लोक ६६)

५ हिंसासत्यस्तेयाद् ब्रह्म परिग्रहाच्चबादरभेदात्
द्युतान्मांसान्मद्यात् विरतिर्गृहिणोष्ट सन्त्यमी मूल गुणाः ॥

(महापुराण)

६ मद्यमांस मधुत्यागैः सहोदुम्बर पंचकैः ।
अष्टावेते गृहस्थानां, उक्ता मूलगुणा श्रुते ॥

(आ० सोमदेव कृत चम्पू)

७ कल्याण आलोचना में ८ मूल गुण के स्थान पर ७ कुव्यसन ही लिये हैं (श्लो० १२)

पं० जुगलकिशोर मुख्त्यारजी ने जैनाचार्यों के शासन भेद में इस विषय पर विशद चर्चा की है । आ० कुन्द कुन्द व आ० उमास्वाति जी तो अष्ट मूल गुण का नाम भी नहीं देते हैं, महा-पुराण व रत्नकरंड के रचयिता इन गुणों को विरति भाव में शामिल करते हैं। और आ० सोमदेव वगैरह सम्यक्त्व में दाखिल करते हैं। कितना विसंवाद ?

इनमें से किसी गुण का धारक देशविरति बन जाता है तो ८ गुण के धारक को अविरति मानना आश्चर्य के सिवाय और क्या है ? हरिवंश पुराण में जैन दि० राजा सुदास के मांसाहार का जिक्र है यह भी अष्ट मूल गुण की मान्यता के खिलाफ प्रमाण है। आदि बातों से पता लगता है कि दिगम्बर अष्ट मूल गुण की मान्यता असली नहीं है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर शास्त्र यादवों को भी मांसाहारी बताते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वेताम्बर–ठीक है, जो अविरति या अजैन होंगे वे मांसाहारी होंगे इसमें आश्चर्य क्या है? आज भी अविरति जैन या अजैन अग्रवाला अभक्षभक्षी हैं, माने कंद मूल भक्षी है, विदल भक्षी है वैसे ही उन यादवों के लिये समझना चाहिये।

दिगम्बरी राजा सुदास का मनुष्य मांस भक्षण भी ऐसा ही विचित्र दृष्टान्त है। इसके अलावा त्रिवर्णा चार पृ० २७२ श्लो० ८२ में मांसाहार का जिक्र है जिसमें पांच पल भक्षण तक का कोई दंड नहीं है, यह सब दिगम्बर मांसाहार का विधान है।

दिगम्बर संघ के आद्य आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी के लीये भी कुछ ऐसी ही विचित्र घटना है।

दिगम्बरी जैन हितैषी भा० ५ अ० १ पृ० १७ में "धर्म का अनुचित पक्षपात" लेख छपा है। उसमें वि० सं० १६३६ में दि० काष्ठा संघी आ० "भूषण" लिखित दिगम्बरीय "मूल संघ का कुछ इतिहास" दिया है, जिसका सारांश यह है "एक बार काष्ठासंघी अनंतकीर्ति नाम के आचार्य गिरिनार यात्रार्थ गये, वहाँ उन्होंने पद्म नन्दी (कुन्द कुन्द स्वामी) आदि निर्दयी पापी कापालिकों को देखा, और उन्हें संबोध श्रावक के व्रत दिये। आचार्य ने उसका (कुंद कुंद स्वामी का) नाम "मयुरश्रृंगी" रक्खा, बाद को उसने मंत्र वाद से "नंदीसंघ" चलाया और अपना 'पद्मनन्दी' नाम प्रसिद्ध किया। एक समय उज्जैन में उसने गुरु से विवाद किया और पत्थर की शारदा को बलात् बुलवा दिया। तब उसका बलात्कार गण और सरस्वती गच्छ प्रसिद्ध हुआ। आदि.......... बाद में उसने मंत्र सिद्धि के निमित्त एक मयूर को मार डाला, तब मयूर मर कर व्यंतरदेव हुआ। उसने बहुत उपद्रव मचाया तथा त्रासादिया, अन्त में उसके कहने से 'मयूर-पिच्छ' धारण कर पिंड छुडाया, उसदिन से मूल संघ का नाम 'मयूर संघ' हुआ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(जैन दर्शन व० ४ अं० ७ पृ० ३२०)

दिगम्बर—जैनमुनि रातको पानी न रक्खे।

जैन—जैन मुनि पीने के निमित पानी न रक्खे, किन्तु शौच के निमित्त चूना आदि से विकृत करके प्राशुक पानी रक्खे। दिगम्बर शास्त्र तो अशुचि होने पर स्नान तक का भी विधान करते हैं (देखो, षटप्राभृत पृष्ट—३७३) अतः शौच के निमित्त पानी रखना अनिवार्य है।

दिगम्बर--मुनि को वेदोदय हो तो श्रावक उनको जनाना समर्पित करके संतुष्ट करे, स्थिर करे। ऐसा श्वेताम्बर शास्त्र में विधान है।

जैन—महानुभाव ? यह तो किसी दिगम्बर विद्वान ने श्वेताम्बर मुनियों को बदनाम करने के लिये ऐसा लिख दिया है, मैं मानता हूं कि दिगम्बर के श्रावकव्रत में काफी गड़बड़ है।

देखिये:—

१—परविवाह करणेत्वारिका परिग्राहिता अपरिगृहितागमनानंगक्रीडा तीव्रकामाभिनिवेशः

(श्री तत्वार्थ सूत्र अ० ७ सूत्र २८)

२—पराविवाह०-ताभ्यां सरागवागादि वपुस्पर्शो ऽथवा रतम् हास्य आलिंगन भोग दोषो ऽतिचारसंज्ञोपि ब्रह्मचर्य हानये।

(कवि राजमल्ल कृत लाटीसंहिता)

३-परविवाहकरणं इत्वरिका अपरिगृहितागमन इत्वरिका परिगृहितागमन अनंगक्रीडा तीव्रकामाभिनिवेशश्च॥ अपरि ग्रहीता तस्यां गमनम् आसेवनम्।

(चामुंडराय, चारित्र सार)

४-पराविवाह करणानंगक्रीडास्मरागसां॥
परिगृहित्वे त्वारिका गमनं सेतरं मलाः॥ ७१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(पं० मेधावी कृत धर्मसंग्रह श्रावकाचार अधि० ६)

५ अन्यविवाहकरणा नंगक्रीडा-"विटत्व" -विपुलतृषाः
इत्वरिका गमनं च स्मरस्य पंच व्यतिचाराः ॥

(रत्न करंड श्रावकाचार श्लो० ६०)

६—इत्वरिकागमनं परविवाहकरणं विटत्वमातिचाराः
स्मरतीव्राऽभिनिवेशो,ऽनंगक्रीड़ा च पंच तुर्ययमे ॥ ५७ ॥

"गमनम् आसेवनम्" ॥ इत्वरिकागमनादयः पंचातिचारा स्तुर्ययमे सार्वकालिक ब्रह्मचर्याणुव्रते भवन्तीति सम्बन्धः ॥

(पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृत अ० ४)

७ परस्त्रीसंगमा नंगक्रीडा न्योपम सत्क्रिया ।
तीव्रता रतिकैतव्ये, हन्युरतानि सद्व्रतम् ॥
वधूवित्त स्त्रियौ मुक्त्वा, सर्वत्रान्यत्र तज्जने ।
माता स्वसा तनूजेति, मतिर्ब्रह्म गृहाश्रमे ॥

(पं० सोमदेवसूरिकृत, यशस्तिलक चम्पू)

८ इन अतिचारों के लिये आ० अमीतगति स्वामी कार्तिकेय और भट्टाकलंक वगैरह के भिन्न २ मत है तथा तत्वार्थजी के टीका कार आ० पूज्यपाद आ० अकलंक आ० विद्यानन्दी और श्वेताम्बर आचार्य यहां गमन के विषय में मौन हैं ।

(दिगम्बर पं० बलभद्र न्यायतीर्थ का इत्वरिका परिगृहिताऽ परिगृहितागमन लेख, जैन दर्शन व० ५ अं० ५ पृ० १९६, १११)

९—परयोनिगतो बिंदुः कोटि पूजां विनश्यति ।
यावद्वीर्य स्खलनं न भवति तावद् ब्रह्मचारीतिश्रुतिः
(पं० चम्पालाल पांडे कृत चर्चा सागर पृ० २७० समीक्षा पृ० २०५)
दिगम्बर शास्त्र कन्यादान को धर्म रूप मानते है और संतुष्ट

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तथा स्थिर कराने का हेतु रूप भी मानते हैं जैसे—

१—श्रावक साधर्मिक गृहस्थ आचार्य या मध्यम पात्र को कन्यादान करे। कन्या की स्वीकृति तीनों वर्ग की साधना के हेतु रूप है। इस दान का फल दर्शन की स्थिरता है। और चारित्र मोहनीय का उपशम है। पिता साधर्मिक बन्धु को कन्या देता है और दामाद को परिपक्व विषय फल भोग को प्राप्त कराकर उसके द्वारा चारित्र मोहोदय को शान्तकराकर विषय त्याग के योग्य बनाता है माने कन्यादान धर्म का अंग है।

(पं० आशाधर कृत श्रावकाचार)

२—A कन्यादानं न देयं

B वारिषेण ने अपनी स्त्री का दान करके साधर्मिक को स्थिर किया। (सकलकीर्ति कृत श्रावकाचार)

३—ऋतुवंती पत्नी को चौथी रातको अवश्य ही भोगना चाहिये ॥ २७१ ॥

(पं० मेधाविकृत धर्म संग्रह श्रावकाचार श्लो० २७१)

४—शुद्ध श्रावक पुत्राय, धर्मिष्ठाय दारिद्रिणे।

कन्यादानं प्रदातव्यं, धर्म संस्थिति हेतवे ॥ १२७ ॥
विना भार्या तदाचारो, न भवेद् गृहमेधिनां।
दान पूजादिकं कार्य-मग्रे संतति संभवः ॥ १२८ ॥
श्रावकाचार निष्ठोपि, दरिद्री कर्म योगतः।
सुवर्णदान माख्यातं, तस्मै आचार हेतवे ॥ १२९ ॥
गृहदानं ॥ १३० ॥ रथादि दानं ॥ १३१ से १३६ ॥
(दि० भट्टा० सोमसेनकृत, त्रिवर्णाचार अ० ६ सं० १६६५)
रतिकाल योनिपूजादि ॥ ३८ से ४५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(दि० आ० सोमसेन कृत त्रिवर्णाचार अ० ६)

५—जैन राजा सुमित्र ने स्वयं अपनी रानी को कहा कि वह जाकर, उसके एक मित्र की काम वासना की तृप्ति करे, साथ ही न जाने पर उसे दंड देने की धमकी भी दी गई।

(पद्म पुराण स० १२ प्रत्युत्तर पृ० ६८, १०३)

६-वारिषेण ने अपनी पहिले वाली बत्तीस ३२ पत्नियों को बुलाया और अपने सामने खड़े हुए एक शिष्यको उन्हें अपने घर डाल लेने के लिये कहा।

(दि० आराधना कथा कोष, प्रत्यु० पृ० १८)

आप वास्तव में देख चूके हैं कि ये सब अनीच्छनीय विधान श्वेताम्बर शास्त्रो के नहीं किन्तु दिगम्बर शास्त्रों के हैं।

इसके अतिरिक्त प्रायश्चित के जरिये शोचा जाय तो प्रायश्चित्त विधान दोनों शास्त्रों में एकसा ही उपदिष्ट है।

शास्त्रकारों ने परिस्थिति की विषमता और दोषों की तरतमता को भिन्न २ रूपसे बता कर प्रायश्चित दान को एकदम विशद कर दिया है, इस हालत में श्वेताम्बर या दिगम्बर किसी भी जैन मुनि को मांसभोजी या काम भोगी बताना। यह सिर्फ निन्दा रूप ही है।

दिगम्बर—उत्सर्ग और अपवाद दोनों सापेक्ष मार्ग है उन को मद्देनजर रखकर प्रवृति करना चाहिये मगर व्रत भंग नहीं करना चाहिये।

जैन—मुनिको मन, वचन और काया से करना, कराना और अनुमोदन देना इनके त्याग रूप प्रतिज्ञा है, प्राणांत कष्ट में भी उनका पालन करना चाहिये यह उत्सर्ग मार्ग है, और इसमें

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से कारण फर्क पड़े वह अपवाद मार्ग है। ये दोनों विधि मार्ग हैं। अपवाद भी देश काल परिश्रम और सहन शीलता के कारण उपयुक्त है, माने, आर्तध्यान और रौद्र ध्यान से बचने के लिये विधि मार्ग है और उस अपवाद सेवन की शुद्धि तो प्रायश्चित से हो ही जाती है।

अपवाद में व्रत प्रतिज्ञा का अविकल स्वरूप नहीं रहता है। जैसे कि—

उत्सर्ग-मुनि किसी जीव की हिंसा न करे ?

अपवाद-मुनि नदी को पार करे ?

उत्सर्ग-मुनि रात्रि भोजन न करे ?

अपवाद-पंचानां मूल गुणानां रात्रि भोजन वर्जनस्य च पराभियोगात् बलादन्यतमं प्रति सेवमानः पुलाकनिर्ग्रन्थो भवति

(दिगम्बर तत्वार्थ सूत्र)

उत्सर्ग—दिगम्बर मुनि पांच तरह के वस्त्र को न रक्खे।

अपवाद—दिगम्बर मुनि वस्त्र को पहिनें, कम्बल ओढे।

(१) चर्यादिवेलायां । तट्टी सादरादिकेन शरीर माच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनः तन्मुञ्चतीति उपदेश कृतः संयमिनां इत्यप वादवेषः। + + सोपि अपवादलिंगः प्रोच्यते। उत्सर्ग वेषस्तु नग्न एव ज्ञातव्यः। सामान्योक्तो विधि रुत्सर्गः, विशेषोक्तो विधि रपवादः, इति परिभाषणात्।

(दर्शन प्राभृत गा० २४ की श्रुतसागरी टीका पृ० २१)

(२) "द्रव्यलिंगं प्रतीत्येति" तत्किं केचिदसमर्था महर्षयः शीतकालादौ कंबलशब्दवाच्यं कौशेयादिकं गृह्णन्ते, न तत् प्रक्षालन्ते न सीव्यन्ते न प्रयत्नादिकं कुर्वन्ति, अपर काले परिहर-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न्ति । केचित् शरीरे उत्पन्न दोषाः लज्जितत्वात् तथा कुर्वन्ति इति व्याख्यानं "आराधना भगवती" प्रोक्ता अभिप्रायेण अपवादरूपं ज्ञातव्यं । उत्सर्गापवादयो रपवादो विधि र्बलवान् इति ।

(तत्वार्थसूत्र सर्वार्थसिद्ध की श्रुतसागरी टीका)

(३) श्री पं० जिनदास शास्त्री सोलापुरवाले ने दिगम्बर मुनियों में दो भेद माने हैं। एक उत्सर्ग लिंग धारी और दूसरा अपवाद लिंग धारी। उत्सर्ग लिंग धारी दिगम्बर रहता है। और अपवाद लिंग धारी दिगम्बर दीक्षा लेकर भी कपडा ले सकता है। (जनसमुदाय में सवस्त्र रहना और एकान्त स्थान में दिगम्बर रहना) और दिगम्बर मुनि भी कारण की अपेक्षा से अर्थात् जिन के त्रिस्थान दोष है जो लज्जावान् है, थंडी परिषह सहन करने में असमर्थ है, एसे दिगम्बर मुनि को जन समुदाय में सवस्त्र रहना चाहिये। और उस वस्त्र लेने से उनको दोष भी नहीं आता है। प्रायश्चित भी नहीं लेना पड़ता । और उसे अपवाद लिंग कहना चाहिये, एसा उनका मत है।

(वीरसं० २४६६ का० शु० ५ का जैनमित्र व० ४१ अं० १)

वास्तव में उत्सर्ग का प्रतिपक्षी अपवाद ही है, इसलिये उत्सर्ग में व्रत का जो स्वरूप है वह अपवाद में कैसे रह सकता है ? जहाँ उत्सर्ग व्यवस्था नहीं कर पाता है, वहाँ अपवाद व्यवस्था करता है, और उत्सर्ग द्वारा जो ध्येय है उसी ही ध्येय को प्राप्त कराता है।

दिगम्बर आचार्य भी एकान्त उत्सर्ग यानी मरने की बातों को महान् लेप में सामिल करके अपवाद की वास्तविकता को अपनाते हैं।

(प्रवचन सार गा० ३० टीका)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर—हमारे पास जिनोक्त असली वाणी तो है नहीं, सब छद्मस्थ आचार्य कृत ग्रन्थ ही हैं। इसके लीये हमारे पं० चम्पालालजी और पं० लालारामजी शास्त्री लिखते हैं कि-

वर्तमान काल में जो ग्रन्थ हैं सो सब मूलरूप इस पंचम काल के होने वाले आचार्यों के बनाये हैं। इत्यादि।

(चर्चा सागर चर्चा-२५० पृ० ५०३)

अर्थात् उपलब्ध सब दिगम्बरशास्त्र तीर्थंकरो ने नहीं किन्तु आचार्यो ने बनाये हैं, मगर इन ग्रंथो में सीर्फ नग्न आदि के बारे में जोर दिया है, सब बातों में भी वैसा ही करना जरूरी था, माने ऊपरोक्त अपवाद वगैरह सब बातो का सुधार करना लाजमी था। न मालूम उन्होंने ऐसा क्यों नहीं किया? फल स्वरूप हमारे आजकल के नये विद्वान तो उन ग्रन्थों को भी उडाकर नये ग्रन्थ बनाने को तैयार हुए है।

ता० १८-२-१९३८ के संघ अधिवेशन में पाँच वां प्रस्ताव भी हो चुका है कि-

"भा० दिगम्बर जैन संघ का यह अधिवेशन प्रस्ताव करता है कि-समाज में फैली हुई दण्ड व्यवस्था की वर्तमान अव्यवस्था को दूर करने के लिये निम्नलिखित (७) विद्वानों की एक समीति कायम की जाय जो कि शास्त्रीय प्रमाणों के आधार पर इस अव्यवस्था को दूर करने के लिये समाज के लिये उपयोगी दंड व्यवस्था का रूप निश्चित करे" इत्यादि।

माने पुराने दिगम्बरीय ग्रन्थ अप्रमाणिक हैं।

जैन—जहाँ कृत्रिमता है वहाँ रद्दोबदल चली आती है, "विवेक-पतितानां तु भवति विनिपातः शतमुखः" इस न्याय से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आपके शास्त्र बदलते आये हैं और बदलते रहेंगे।

वे पंडित भी गृहस्थ ही हैं, जिनको न ब्रह्मचर्य है, न भक्ष्याभक्ष्य की मर्यादा है न चारित्र है। वे मनमानी लिखदें और वह दिगम्बर समाज का शास्त्र बन जाय। मुबारक हो, इन दिगम्बरीय आप्तागम को। महानुभाव? जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन है। अपवाद को उड़ाने वाला या एकान्त को मानने वाला, जैन कहलाने के योग्य भी नहीं रह सकता है।

दिगम्बर--मुनि दूसरे को दंडे, बांधे या मारे ऐसा अपवाद तो उचित नहीं है। जैसा कि कालिकाचार्य जीने साध्वी की रक्षा और संघ के हित निमित्त किया है।

जैन—दिगम्बर द्रव्य संग्रह वृत्ति वगैरह में विष्णु कुमार ने वचन छल से बलि को बांधा था ऐसा लिखा है। तथा विद्याधर श्रवण और वज्रकुमार का भी वैसा ही प्रसंग उल्लिखित है। आप इनको ठीक क्यों मानते हैं?

दिगम्बर—धर्मरक्षण के लिये ऐसा करना पडा! वे अपनी इन्द्रियों के सुख के लिये ऐसा नहीं करते।

जैन--तब तो आपने अपवाद को स्वीकार कर लिया।

दिगम्बर–यदि ऐसा है तो किसी को बांधे, दंड देवे, मगर उसको जान से मारना ठीक नहीं है। मारने से व्रत भंग होता है।

जैन--क्या तीन योग और तीन कोटि से प्रतिज्ञा धारक मुनि को दूसरे को बांधने में अहिंसा व्रत का उल्लंघन नहीं है? वचन छल करने में सत्य व्रत का भंग नहीं है?

दिगम्बर—प्रमत्त योगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा, और द्वेष बुद्धा अन्यस्य दुःखोत्पादनं हिंसा होने पर भी धर्म रक्षा के कारण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यह हिंसा हिंसा नहीं मानी जाती।

यदि जिनसूत्र मुल्लंघंते तदाऽऽस्तिकै र्युक्तिवचनेन निषेधनीयाः तथापि यदि कदाग्रहं न मुञ्चन्ति तदा समर्थै रास्तिकैः उपानद्भि गूथ लिप्ताभिः मुखे ताडनियाः, तत्र पापं नास्ति।

उक्तं चोत्तर पुराणस्य वर्द्धमान पुराणे—
सोपि पापः स्वयं क्रोधा दरुणी भूत वीक्षणः।
उद्यमी पिंड माहर्तुं, प्रस्फुरद्दशन च्छदः॥ १॥
सोढुं नदक्षमः कश्चिद्, असुरः शुद्धदृक् तथा।
हनिष्यति तमन्यायं, शक्रः सन् सहते नहि॥ २॥
सोपि रत्नप्रभां गत्वा, सागरोपम जीवितः।
चिरं चतुर्मुखो दुःखं, लोभादनु भविष्यति॥ ३॥
धर्मानिर्मूल विध्वंसं, सहन्ते न प्रभावकाः।
"नास्ति सावद्यलेशेन, विना धर्म प्रभावना"॥ ४॥
धर्मध्वंसे सतां ध्वंसः, तस्माद् धर्मद्रुहो ऽधमान्॥
निवारयन्ति ये सन्तो, रक्षितं तैः सतां जगत्॥ ५॥
(दर्शन प्राभृत गा० २ की श्रुत सागरी टीका पृ० ४)

जैन—तब तो आप अपवाद को धर्म मानने के पक्ष में हैं

दिगम्बर—उपसर्ग और अपवाद को इन्साफ न देने से हमारे दिगम्बर समाज की कैसी दुर्दशा हुई है। उसका यथार्थ स्वरूप दिगम्बर विद्वान् प्रो० आ० ने० उपाध्ये M. A. फाइनल इस प्रकार बताते हैं।

"आचार शास्त्र में वर्णित उत्सर्ग और और अपवाद मार्गों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि साधु समुदाय में इस श्रम साध्य प्रबन्ध ने मतभेद के लिये बड़ा अवसर दिया, जब किसी प्रधान आचार्य का स्वर्गवास हो जाता था तब सर्वदा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

संघ में फूट पड़ने का भय बना रहता था ? दिगम्बर सम्प्रदाय में संघ भेद होने का यही मुख्य कारण है। इस के सम्बन्ध की घटनाओं को जानने के लिये पुरातत्व संग्रह (Epigraphical Record) को सावधानी से अध्ययन करने की आवश्यकता है।

(जैनदर्शन, व० ४ अं० ७ पृ० २६१)

उपाध्ये के इस लेख से स्पष्ट है कि दि० समाज उत्सर्ग और अपवाद में खेंचातानी करने से मूल, नन्दी, माथुर, यापनीय काष्ठा, इत्यादि अनेक टुकड़ों में विभक्त हो गयी है।

जैन--यद्यपि दिगम्बर विद्वान श्वेताम्बर उत्सर्ग और अपवाद पर आक्षेप करते हैं किन्तु दिगम्बर मुनि भी अपवाद और प्रायश्चित से परे नहीं हैं।

श्वेताम्बर शास्त्रों में नमुचि वगैरह का जो उल्लेख है वह धर्मरक्षा की दृष्टि से है और अपवाद रूप होने से माकूल है।

भूलना नहीं चाहिये कि जैन दर्शन में उत्सर्ग और अपवाद से ही सारी व्यवस्था होती है।

दिगम्बर—मुनि को उपासकों के प्रति आशीर्वाद में "धर्मवृद्धि" कहना चाहिये, धर्मलाभ नहीं कहना चाहिये।

जैन—वत्थु सहावो धम्मो, अतः आत्मा को स्वभाव का लाभ हो और विभाव का अभाव हो यही इच्छनीय वस्तु है। इसकारण "धर्मलाभ" कहना ही उचित आशीर्वाद है। इसका अर्थ होता है कि-आत्मा के आठों गुणों की प्राप्ति हो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मोक्ष योग्य अधिकार

दिगम्बर—मान लो कि वस्त्रधारी मुनि मोक्ष में चला जायगा जबतो गृहस्थ भी केवली होकर मोक्ष में चला जायगा। आचार्य कुंद कुंद स्वामी ने तो समय प्राभृत गा० ४३८, ४० में गृहस्थलींग में मोक्ष की मना की है । तो क्या गृहस्थ मोक्ष में जाता है ?

जैन--हाँ ? यद्यपि ऐसा क्वचित ही बनता है, परन्तु ऐसा होने में तनिक भी शंका का स्थान नहीं है। जैन दर्शन अनेकान्त दर्शन है। जैन दर्शन भाव चारित्र वाली आत्मा की मोक्ष मानता है, शरीर की या वस्त्रों की नहीं। दिगम्बर शास्त्र भी इस बात के गवाह हैं।

आ० कुंद कुंदजी समय प्राभृत गा० ४३९, ४०, ४१ में भाव आत्मा को ही मोक्ष बताते हैं गा० ४४३ में गृहीलींग ममत्व की मना करते हैं।

दिगम्बर-श्रावक छटे गुण स्थान को भी नहीं पाता है तो फिर मोक्ष को कैसे पा सकता है !

जैन--मूर्च्छावाला छटे गुण स्थान को न पावे, यह तो ठीक बात है, किन्तु श्रावक ही नहीं पावे यह कैसे माना जा सकता है ? दिगम्बर आचार्य तो गृहस्थ को भी छटे सातवें गुणस्थान का अधिकारि मानते है। ये फरमाते हैं कि पंचम गुण स्थानवर्ति श्रावक ध्यान दशा में अप्रमत गुणस्थान को पाता है और अंतर्मुहुर्त के बाद में छटे में आता है। लिखा है कि—

फिर यही सम्यग् दृष्टि जब अप्रत्याख्यानावरणीय कषाय को (जो श्रावक के व्रतों को रोकती है) उपशम कर देता है तब चौथे से पाँचवें देश विरत गुण स्थान में आजाता है। इस दरजे में श्रावक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की ग्यारह प्रतिमाएं पाली जाती है इसके आगे के दरजे साधु के लिये है। यही श्रावक जब प्रत्याख्यानावरण कषाय का (जो साधु व्रत को रोकते है) उपशम कर देता है। और संज्वलन व नौ कषाय का (जो पूर्ण चारित्र को रोकती है) मंद उदय साथ २ करता है तब पाँचवें से सातवें गुण स्थान अप्रमत्त विरत में पहुँच जाता है छठे में चढ़ना नहीं होता है इस सातवें का काल अन्तर्मुहूर्त का है यहाँ ध्यान अवस्था होती है फिर संज्वलनादि तेरह कषायों के तीव्र उदय से प्रमतविरतनाम छठे गुण स्थान में आ जाता है।

(श्रा कुंद कुन्द कृत पंचास्ति काय गा० १३१ की भाषा टीका, खंड २ पृ० ७३)

इस पाठ से सिद्ध है कि गृहस्थ छठे सातवें गुण स्थान का अधिकारी है, एवं तेरहवें गुण स्थान का भी अधिकारी है। भरत चक्रवर्ती ने गृहस्थ वेष में ही केवल ज्ञान पाया है।

दिगम्बर—दिगम्बर आचार्य भरत चक्रवर्ती के केवल ज्ञान के बारे में कुछ और ही समाधान करते हैं।

१-योपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गता भरतचक्री, सोपि जिनदीक्षां गृहीत्वा, विषय कषाय निवृत्ति रूप लक्षणमात्रं व्रतपरिणामं कृत्वा पश्चात् "शुद्धोपयोग" रूप रत्नत्रयात्मके "निश्चयव्रता"ऽभिधाने वीतराग सामायिक संज्ञ निर्विकल्प समाधौ स्थित्वा, केवलज्ञानं लब्धवानिति। परं तस्य स्तोककालत्वात् लोका "व्रतपरिणामं" न जानन्ति। (द्रव्य संग्रह बृहद् वृत्ति)

२—येपि घटिकाद्वयेन मोक्षं गता भरतचक्रवर्त्यादयस्तेपि निर्गन्थरूपेणैव। परं किन्तु तेषां परिग्रहत्यागं लोका न जानन्ति स्तोककालत्वादितिभावार्थः। एवं भावलिंग रहितानां द्रव्यलिंग मात्रं मोक्षकारणं न भवति॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(समय प्राभृत गा० ४४४ तात्पर्य वृत्ति पृ० २०६)

माने-भरत चक्रवर्ति गहस्थी था, मगर पौन घंटे में व्रत परिणाम को पाकर केवल ज्ञानी होकर मोक्ष में गया। यह बात तीसर युग की है अल्प काल होने के कारण जनता उसके व्रत परिणाम को नहीं जानती है।

जैन--यह समाधान वास्तविक समाधान नहीं है, क्योंकि उन्होंने विषय कषाय निवृत्ति रूप परिणाम धारण किया, निश्चय व्रत स्वीकारा, केवल ज्ञान पाया, और मोक्ष पाया ये चारों बात भरत चक्रवर्ति के भावलिंग-भावचारित्र की सूचक हैं, इनसे द्रव्य चारित्र की समस्या आप ही आप हल हो जाती है। जनता ने तो जैसा था वैसा ही माना। फिर भी ग्रन्थकार को क्या खटकती है, कि लोगो पर अज्ञता का आरोप करते है ?

यह तीसरे युग का प्रसंग है। बाद में चौथे युग में २३ तीर्थंकर होगये, संख्यातीत केवली होगये, मगर किसी ने भी इस आपकी मानी हुई गलती को साफ नहीं किया, यह भी अजीब मान्यता है। जैन जनता तीसरे आरे (युग) से आज तक जिस बात को ठीक मानती है वही बात सच्ची हो सकती है कि सिर्फ द्रव्यसंग्रह आदि के वृत्तिकार कहते हैं वही बात सच्ची हो सकती है, इसका निर्णय पुराण प्रिय या इतिहासविद् करले।

जनता तीसरे युग से आज तक भरत चक्री को "गृहस्थलींग सिद्ध" मानती है, ऐसा ग्रन्थकर्ता का विश्वास है और मोक्ष प्राप्ति में द्रव्यलिंग नहीं किन्तु भावलिंग यानी व्रतपरिणाम की प्रधानता है यह ग्रन्थकार को अभीष्ट है।

जब तो गृहस्थ भी इस भावलींग यानी भावचारित्र के जरिये केवलज्ञानी और सिद्ध हो सके, यह तो स्वयं ही सिद्ध है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आ० कुन्द कुन्द स्वामी तो हिंसा, परिग्रह आदि वस्तुओं के मुकाबले में साफ साफ अध्यवसाय की ही प्रधानता बताते हैं। जैसा कि—

अज्झवसिदेण बंधो, सत्ते मारेहि मा व मारेहि।
एसो बंधसमासो, जीवाणं णिच्छय णयस्स ॥ २८० ॥
एव मालिये अदत्ते, अबम्भचेरे परिग्गहे चेव।
कीरहि अज्झवसाणं, जं तेण दु वज्जंद पावं ॥ २८१ ॥
वत्थुं पडुच्च जं पुण, अज्झवसाणं तु होदि जीवाँणं।
णहि वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण बंधो त्ति ॥ २८३ ॥
एदाणि णत्थि जेसिं, अज्झवसाणाणि एगमादीणि।
ते असुहेण सुहेण य, कम्मेण मुणी ण लिप्पंति ॥ २९३ ॥
बुद्धि ववसाओ वि य, अज्झवसाणं मदीय विण्णाणं।
इक्कट्ठमेव सव्वं, चित्तो भावो य परिणामो ॥ २९५ ॥
एवं ववहारणयो, पडिसिद्धो जाण णिच्छय णयेण।
णिच्छय णय सल्लीणा, मुणिणो पावंति णिव्वाणं ॥ २९६ ॥

आ० कुंद कुंदजी समयसार गा० ४४३ में पाखंडलींग और गृहीलिंग वगैरह में ममता रखने की मना करते ही हैं, साथ साथ सब लींगों को छोड कर सीर्फ ज्ञान दर्शन व चारित्र को ही मोक्ष हेतु मानते हैं। और २ दिगम्बर आचार्य भी मोक्ष प्राप्ति के लीये नग्नता पीछीं आदि बाह्य भेष को नहीं, किन्तु आत्मा के गुणों को ही प्रधान मानते हैं। देखिये—

लिंगं मुइत्तु दंसण-णाण चरित्ताणि सेवंति ॥ ४३९ ॥
दंसण णाण चरित्ते, अप्पाणं जुंज मोक्खपहे ॥ ४४१ ॥
णिच्छदि मोक्खपहे सव्व लिंगाणि ॥ ४४४ ॥

(समयसार प्राभृत)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अयसाण भायणेण य, किं ते णग्गेण पावमलिणेण।
पेसुण्ण हास मच्छर-माया बहुलेण सवणेण ॥ ६६ ॥
वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां,
गृहेपि पंचेन्द्रिय निग्रह स्तपः।
अकुत्सिते वर्त्मनि यः प्रवर्तते,
विमुक्तरागस्य गृहं तपोवनं ॥ १ ॥

आ०कुंदकुंदकृतभावप्राभृत गा० ६६ श्रुतसागरीटीका (पृ० २१३)

जह सलिलेण ण लिप्पइ, कमलिणिपत्तं सहावपयडीए।
तह भावेण ण लिप्पइ, कसाय विसएहिं सप्पुरिसो ॥ १५२ ॥
धात्रीबाला ऽसतीनाथ-पद्मिनीदल वारिवत्।
दग्धरज्जु वदाभासं, भुञ्जन् राज्यं न पापभाक् ॥
अघ्नन्नपि भवेत् पापी; विघ्नन्नपि न पापभाक्।
परिणाम विशेषेण, यथा धीवर कर्षको ॥ ४ ॥

(आ० कुंद कुंद कृत भाव प्राभृत गा० १५२ और १६२ की श्रुत सागरी टीका पृ० २५६; ३०२,)

भावो हि पढमलिंगं, ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं ॥२॥
भावेण होई लींगी ॥ ४८ ॥ भावो कारण भूदो ॥ ६६ ॥
जाणेहिं भावधम्मं ॥ २ ॥
नयत्यात्मानमात्मेव, जन्म निर्वाण मेव च ॥ ७५ ॥
अप्पा तारइ तम्हा अप्पाओ झायव्वो ॥
समभावे जिण दिट्ठं ॥ वगैरह २।

पं० बनारसी दास जी बताते हैं कि—

जो घर त्यागे कहावे जोगी, घर वासी कह कहें जूं भोगी।
अन्तर भाव न परखे जोई, गोरख बोले मूरख सोई ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(बनारसी विलास गोरख वचन गा० २ पृ० २०९)

माने-अनेकांत जैन दर्शन में शुध्ध परिणाम वाला गृहस्थ लींगी भी मोक्ष का अधिकारी है।

दिगम्बर—मूर्च्छारूप परिग्रह का अभाव होने से वस्त्र धारी मुनि मोक्ष में जाता है, गृहस्थ भी मोक्ष में जाता है, तो कभी २ कोई आभूषण धारी भी मोक्ष में चला जायगा।

जैन—जहाँ बाह्य वस्तु की प्रधानता नहीं है वहाँ यह भी होना मुमकिन है जैनदर्शन मूर्छा न होने के कारण उसको भी मोक्ष मानता है।

समय प्राभृत गा० ४४४ की तात्पर्यवृत्ति में और दिगम्बरीय पाण्डव चरित्र में नग्न लोहा के आभूषण होने पर भी मोक्ष प्राप्ति बताई है। यद्यपि वह परिग्रह रूप था किन्तु आभूषणों के अस्तित्व में केवल ज्ञान की रुकावट नहीं मानी है। और उसका कारण वही "ममत्वाभावात्" ही बताया है। अप्रमत्त आत्मा को वस्त्र पीछी या आभूषण है या नहीं है, ऐसी तनिक भी ममत्व विचारणा नहीं होती है। यही कारण है कि वह उसी हालत में मोक्ष तक पहुंच जाता है।

दिगम्बर—तब तो अजैन सन्यासी भी भाव से जैन बनकर क्षपकश्रेणी में चढकर केवली होगा, मोक्षगामी हो जायगा!

जैन—सच्चे अनेकान्ती जैन दर्शन को यह भी इष्ट है। मोक्ष के लिये किसी का ठेका तो है नहीं! नामजैन नरक में भी जाता है भाव जैन मोक्ष में भी चला जाता है। वल्कलचीरी जैनलिंगी नहीं था अन्यलिंगी था, फिर भी वह मोक्षगामी हुआ। अतः जैन दर्शन साफ २ कहता है कि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कषाय मुक्तिः किल मुक्ति रेव ॥
समभाव भावियप्पा, लहई मुक्खं न संदेहो ॥
सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः ॥

सम्यक् दर्शन सम्यक् ज्ञान व सम्यक् चारित्र वाली आत्मा मोक्षके योग्य है। चाहे वह किसी भी वेश में, जाति में या वेद में हो।

माने योग्यता को पाकर अन्य लिंगी भी सिद्ध हो सकता है।

दिगम्बर—शूद्र तो पांचवे गुणस्थान का अधिकारी है। वह मोक्ष में नहीं जाता है। श्वेताम्बर समाज शूद्रों की भी मुक्ति मानता है वह तो उसकी गलती है।

जैन—जैसे कोई भी द्रव्य लिंग मोक्ष का बाधक नहीं है वैसे ही कोई भी जाति मोक्ष बाधक नहीं है। एकेन्द्रिय वगैरह वास्तविक जाति है और ब्राह्मण वगैरह काल्पनिक जाति है, इस हालत में शूद्र मुक्ति का एकान्त निषेध करना, न्याय मार्ग नहीं है। अतएव स्याद्वाद दर्शन शूद्र मुक्ति के पक्ष में हैं।

दिगम्बर—दिगम्बर समाज शूद्र मुक्ति का निषेध करता है उसका कारण शूद्र का नीच गोत्र है। चारो गति में नारकी तीर्यंच म्लेच्छ-शूद्र और अंतर द्वीपज मनुष्य नीच गोत्री हैं तथा आर्यमनुष्य भोगभूमि के मनुष्य व देव उच्च गोत्री हैं। इससे पाया जाता है कि चन्दन स्फटिक चित्रवल्ली, मारबल वगैरह जो की श्रेष्ठ जातियां है जिनकी प्रतिमा बनाई जाती हैं, जल केसर चन्दन फूल वनस्पति का इत्र वगैरह जो कि तीर्थंकर के ऊपर चढाये जाते हैं, अक्ष, जिसकी स्थापना होती है, गाय सफेद हाथी मृगराज घोडा कामधेनुगाय हंस देशविरतिआदिधर्म के अधिकारी तिर्यञ्च व शूद्र ये सब भी नीच गोत्री हैं, और धर्म द्वेषी साधुद्वेषी नमुचि सम्यक्त्व रहित युगालियें अविरतिदेव और संगमक मेघमाली जैसे पापीदेव ये स भी उच्च गोत्री हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गोत्र की व्यवस्था इस प्रकार है।

१—संताण कमेणा गयजीवाऽऽयरणस्स गोदमिदि संरणा।
उच्चं नीचं चरणं, उच्चं नीचं हवे गोदं ॥ १३ ॥

(आ० नेमिचन्द्र कृत गोम्मट सार जीव कांड गा० १३)

२—यस्योदयात् लोक पूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चै गोंत्रम्। यदुदयात् गर्हितेषु कुलेषु जन्म तन्नीचैर्गोत्रम्॥

(आ० पूज्यपाद कृत सर्वार्थ सिद्धि अ० ८ सूत्र १२ टीका)

३—दीक्षायोग्य साध्वाचाराणां साध्वाचारै कृत सम्बन्धाना मार्य प्रत्ययाभिधान व्यवहार निबन्धनानां पुरुषाणां संतानः उच्चै गोत्रम् ॥ तद्विपरीतं नीचै गोत्रम्

(आ० भूतबलि कृत षट खंडागम ४ वेदनाखंड ५ वां पयडि अधिकार का सूत्र १२९ की आ० वीरसेन कृत धवला टीका)

४-नीच गोत्र का उदय पांचवे गुण स्थानक तक है

देसे तदीय कसाया, तिरिया उज्जोय णीच तिरियगदी
छट्ठे आहार दुगं, थिण तियं उदय वोच्छिण्णा ॥ २६७ ॥
देसे तदीय कसाया, नीचं एमेव मनुस सामण्णे
पज्जत्ते वि य इत्थीवेदा अपज्जत्त परिहीणा ॥३००॥

(गोम्मट सार—कर्मकांड)

इन पाठों से शूद्रों का मोक्ष ही नहीं वरन् शूद्रों की दीक्षा का भी निषेध है।

जैन—यह दिगम्बरसम्मत गोत्रव्यवस्था स्पष्ट नहीं है देखिये

१-गोम्मटसार में उच्चं चरणं उच्चं गोदं हवे, नीचं चरणं नीचं गोदं हवे। उच्च आचरण से उच्च गोत्र व नीच आचरण से नीच गोत्र माना है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२—सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक व श्लोक वार्तिक में-"लोक पूजितेषु", "गर्हितेषु", लोकें मान्य और लोक निंद्यरूप लौकिक व्यवहार को ही गोत्र माना है।*

३-धवला टीका में गोत्र का साधु और असाधु आचार से सम्बन्ध जोड़ा है। यहां साध्वाचार शब्द से "प्रशस्त आचार" लेना है यहाँ "दीक्षा योग्य" शब्द कुछ विचित्र ही है क्योंकि दीक्षा का अभिप्राय मुनि दीक्षा का ही लिया जाय तो देव युगलिक और अभवि मनुष्य को उच्च गोत्री नहीं कहा जायगा, देव किसी की संतान नहीं है, युगलिकों को दीक्षा योग्य साधु आचार वाले से सम्बन्ध और संतानत्व भी नहीं है अतः वे उच्चगोत्री नहीं रहेंगे। मगर दिगम्बर आचार्य उन्हें उच्च गोत्री ही मानते हैं। यदी श्रावक के व्रत भी दीक्षा में सामिल हैं तो पंचेन्द्रिय तीर्यंच भी उच्च गोत्री ठहरेंगे और उनकी उच्चता देवों से भी बढ़ जायगी।

इसके अलावा उस १२६ सूत्र की ही धवला टीका में "नापि पंच महाव्रत ग्रहण योग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते" तथा "नाणुव्रतिभ्यः समुत्पत्तौ तद् व्यापारः॥" पाठ से भी उपरोक्त लिखित अभिप्राय की पुष्टी होती है।

४-इस प्रकार यह गोत्र व्यवस्था सर्वथा अस्पष्ट है

इस अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि सम्यक्त्व या मिथ्यात्व पाप या पुण्य और धर्म या अधर्म के ऊपर गोत्रकर्म का कुछ असर नहीं पड़ता है।

इस विवेचन का सारांश यह है कि-दिगम्बर विद्वान् गोत्र कर्म को आचार पर निर्भर मानते हैं उच्च, नीच आचारों के

---

*गुणैर्गुणवद्भिर्वा अर्यन्ते (सेव्यन्ते) इति आर्याः॥
(सर्वार्थसिद्धि राजवार्तिक)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

परिवर्तन के साथ उच्च नीच गोत्र के उदय का भी परिवर्तन मानते हैं जाति और कुल को कल्पना रूप मानते हैं और उच्च आचार वाले शूद्र को जिन दीक्षा की प्राप्ति भी मानते हैं फिर मोक्ष का निषेध कैसे माना जाय ? जहां सम्यक् चारित्र है जिन दीक्षा है वहां मोक्ष है ही।

दिगम्बर—गोत्र का परिवर्तन और जाति आदि कल्पना के लिये दिगम्बर प्रमाण बताइये।

जैन—दिगम्बर विद्वान् गोत्रकर्म की प्रकृति में आपसी परिवर्तन और जाति कुल को असद् रूप मानते हैं
उनके पाठ निम्न प्रकार हैं।

णवि देहो वंदिज्जइ, णवि कुलो ण वि य जाइ संजुत्ता
को वंदिम गुण हीणो, णहु समणो णेव सावओ-होई ॥ २७ ।

शरीर, कुल जाति श्रमण लिंग या श्रावक वेष वन्दनीय नहीं हैं; गुण वन्दनीय हैं।

(आ० कुन्द कुन्द कृत दर्शन प्राभृत)

उत्तम धम्मेण जुत्तो, होदि तिरक्खोवि उत्तमो देवो ॥
चंडालो वि सुरीन्दो, उत्तमधम्मेण संभवदि ॥

चंडाल और तीर्यंच धर्म के जरिये उत्तम माने जाते हैं।

(स्वामीकार्तिकेया नुप्रेक्षा गा० ४३०)

पूर्वविभ्रम संस्कारात्, भ्रान्तिं भूयोपि गच्छति ॥

विभाव की विचारणा करने वाला जीव ज्ञानी होने पर भी मैं ब्राह्मण हूँ वह शूद्र है ऐसे भ्रम में पुराने विभ्रम संस्कार से पुनः फस जाता है ॥ ४५ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जीर्ण वस्त्र यथात्मानं न जीर्णं मन्यते तथा।
जीर्णे स्वदेहे प्यात्मानं, नजीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

यहाँ पर उतरार्ध ऐसा भी बन सकता है कि—

शूद्र देहे तथात्मानं न शूद्रं मन्यते बुधः

जीर्ण वस्त्र होने पर उसकी आत्मा जीर्ण नहीं मानी जा सकती है (शूद्र देह होने से उसकी आत्मा शूद्र नहीं हो सकती है)

नयत्यात्मान मात्मैव, जन्म निर्वाण मेव च ॥ ७५ ॥

आत्मा ही आत्मा को संसार में फंसाता है और मोक्ष में ले जाता है।

जाति र्देहा श्रिता दृष्टा, देह एवात्मनो भवः ॥
न मुच्यन्ते भवात्तस्मात् ते ये जाति कृताग्रहाः ॥ ८८ ॥

ब्राह्मण ही मोक्ष को पाता है इत्यादि जाति के आग्रह रखने वाला संसार में बुरी तरह भटकता फिरता है।

जाति लिंग विकल्पेन, येषां च समयाग्रहः।
तेपि न आप्नु वन्त्येव, परमं पदमात्मान : ॥ ८९ ॥

मैं ब्राह्मण हूँ, मैं नग्न हूँ, दिगम्बर हूँ, ऐसा आग्रह मोक्ष का बाधक है परम पद प्राप्ति में रोड़े लगाते है।

(आ० पूज्यपाद कृत समाधि शतक)

न जातिर्गर्हिता काचित्, गुणाः कल्याण कारणं।
व्रतस्थमपि चांडालं, तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

कोई भी जाति निन्दनीय नहीं है, गुण ही कल्याण करने वाले होते हैं। चांडाल-भंगी भी व्रत धारी होता ब्राह्मण के समान है।

चिन्हानि विटजातस्य, संति नांगेषु कानिचित्।
अनार्य माचरन् किंचित्, जायते नीच गोचरः ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नीच के देह में कोई निशान नहीं होता है हीन आचार वाला ही नीच है।

चातुर्वर्ण्यं यथा यच्च, चाण्डालादि विशेषणम् ।
सर्व माचार भेदेन, प्रसिध्धं भुवने गतं ॥

चारो वर्ण आचार भेद के कारण बने हैं।

(आ० रविषेण कृत पद्म चरित्र)

नब्रह्मजाति स्त्विह काचिदस्ति। न क्षत्रियो नापि चवैश्य शूद्रे ॥

(वरांग चरित्र २५-४१)

पहिले तीन आरे में भोग भूमि के मनुष्य थे जो उच्च गोत्री थे बाद में कर्म भूमि में उन्हीं की ही सन्तान उच्च नीच एवं दो गोत्र वाली बन गई है छठे आरे में सब नीच गोत्री हो जावेंगे। तत्पश्चात् उन्हीं की संतान फिर दोनों गोत्र वाली बन जायगी और भोग भूमि का प्रारम्भ होते ही सब उच्च गोत्री बन जावेंगे। सारांश संतान परम्परा में उच्च नीच गोत्र का परिवर्तन होता रहता है।

(गोम्मट सार, कर्म कांड, गा० ७८५ वगैरह)

नेक्ष्वाकु कुला द्युत्पत्तौ (उच्चैर्गोत्रस्य) व्यापारः ।
काल्पनिकानां तेषां परमार्थ तोऽसत्वात् ॥

इश्वाकु कुल वगैरह काल्पनिक हैं परमार्थ से असत् हैं।

(षट खंडागम खं० ४ अधि० ५ सू० १२९ की आ० वीरसेन कृत धवला टीका)

मनुष्य जातिरेकैव जातिनामो दयोद्भवा।
वृत्तिभेदा हि, तद्भेदाच्चातुर्विध्य मिहाश्नुते ॥ ४५ ॥

जाति नाम कर्म के उदय से मनुष्य की एक ही जाति है और ब्राह्मण वगैरह जातियां तो पेशा के अनुसार बनी हुई हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(आ० जिन सेन कृत आदि पुराण स० १८ श्लो० ४५)

वर्णकृत्यादि भेदानां, देहे स्मिन्नऽदर्शनात् ।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैः, गर्भाधान प्रवर्तनात् ॥
नास्ति जातिकृतो भेदः मनुष्याणां गवाश्ववत् ।
आकृति ग्रहणात्तस्मा दन्यथा परिकल्प्यते ॥

गाय घोड़ा वगैरह में भिन्नता है, परन्तु ब्राह्मणादि जातिओं में अन्य जातियों से ऐसी कोई भिन्नता नहीं है। वास्तव में जाति भेद कल्पना मात्र ही है।

(आ० गुणभद्रकृत उत्तरपुराण पर्व ७४)

कुलजातीश्वरादि मदविध्वस्त बुद्धिभिः ।
सद्यः संचीयते कर्म्म, नीचैर्गति निबन्धनम् ॥ ४८ ॥

(आ० शुभचन्द्र कृत ज्ञानार्णव अ० २१ श्लो० ४८)

देह एव भवो जन्तौ, यल्लिङ्गं च तदाश्रितम् ।
जातिवत्तद् ग्रहं तत्र, त्यत्वा स्वात्म गृहं वशेत् ॥ ३९ ॥

शरीर ही जीव का संसार है, और लिंग जातियां वगैरह तो शरीर से ही सम्बन्धित रहते हैं। अतएव लिंग व जाति के अभिनिवेश को छोड़कर आत्मा का पक्षपाती बनना चाहिये ॥

(पं० आशाधर कृत सागार धर्मामृतम् अ० ८)

सम्यग् दर्शन संपन्न मपि मातंगदेहजम् ।
देवा देवं विदुर्भस्म गूढांगारांत रौजसम ॥ २८ ॥
श्वापि देवो पि, देवः श्वा, जायते धर्मकिल्विषात् ।
कापि नाम भवेदन्या, संपद्धर्मशरीरिणाम् ॥ २९ ॥

सम्यक्त्व वाला एवं धर्म युक्त मातंग और कुत्ता भी प्रशंसनीय है वगैरह ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(रत्न करण्ड श्रावकाचार श्लो॰ २८–२९)

विप्र क्षत्रिय विट् शूद्राः प्रोक्ताः क्रिया विशेषतः ।
जैनधर्मे पराः शक्ताः ते सर्वे बांधवोपमाः ॥

आचार की विशेषता से ब्राह्मण वगैरह संज्ञाएं हैं, किन्तु धर्म में तो वे सब बन्धु के समान हैं।

(आ॰ ········कृत त्रिवर्णा चार धर्म रसिक)

आचारमात्र भेदेन, जातीनां भेद कल्पनम् ।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति, नीयता कापि तात्वीकी ॥
गुणैः संपद्यते जाति र्गुणध्वंसै र्विपद्यते ।

आचरण के भेद से जाति भेद है । परमार्थ से तो ब्राह्मण आदि कोई नियत जाती नहीं है। गुण के अनुसार जाती बनती है। गुणों के बदल जाने पर जाति भी बदल जाती है।

(धर्म परीक्षा)

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुस्थितो पि वा ।
ध्यायेत्पंच नमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥
अपवित्रो पवित्रोवा, सर्वावस्थां गतो पि वा ।
यः स्मरेत् परमात्मानं, स बाह्याभ्यंतरे शुचिः ॥ २ ॥

मनुष्य कैसा भी हो किन्तु नमस्कार मंत्र के जाप से वो निश्पाप पवित्र बनता है। अपवित्र भी तर्थिंकरके जाप करने से बाहिर से और भीतर से पवित्र बनता है।

(देव शास्त्र गुरु पूजा, जैन सिद्धान्त संग्रह पृ॰ १८४-१८५)

गोत्र कर्म, यह जीव विपाकि प्रकृति है । नामकर्म, शरीर की भेद व्यवस्था करता है गोत्र कर्म आचरण रूप क्रिया की व्यवस्था करता है, गोत्र कर्म भाव कर्म है। "वास्तव में द्रव्या-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

नुयोग की अपेक्षा जन्मतः कोई गोत्र या वर्ण नहीं है"। "वंशकृत अशुद्धता व कोढ आदि बीमारियां परम्परा तक चलती हैं यह नियम नहीं है।

"सब ही अघातिये कर्म गुण श्रेणि के आरोहण में बेजान समझे जाते हैं। गोत्रकर्म का परिवर्तन तो एक साधारण सी बात है। अघातिया कर्म जीव के दर्शन ज्ञान सम्यक्त्व आदि गुण तो क्या अनुजीव गुण स्पर्शरसगंधवर्णादि का जो ज्ञान है उसका भी घात नहीं करसकता और नीच कुल में जन्म लेने पर भी कषाय योग के अभाव से व भाव शुद्धि से नीचसंस्कार फल को प्राप्त नहीं होते। क्योंकि कुल संस्कार से बने हुए गोत्र कर्मों का पाक जीवन में होने से जीव के संयम रूप परिणाम हो जाने पर आचरण में स्वभावतः परिवर्तन हो जाता है। यही जीव विपाकी गोत्र-कर्म की प्रकृति का प्रकरणांतर गत यथार्थ अर्थ है"।
"नीच गोत्र की कर्म प्रकृति······ नीच गोत्र रूप हो जाती है" गा० ४१०, ४२२।

"यह तीनों संक्रमण अपनी २ बंधव्युच्छित्तिसे प्रारंभ होकर क्रमशः अप्रमत्त (७) से लगाकर उपशांत कषाय (११) पर्यन्त पूर्ण हो जाते हैं"

जैसे नीच गोत्र उच्च गोत्र हो सकता है उसी प्रकार उच्च गोत्र भी अपकर्षण करके नीच गोत्र हो जाता है और गोत्र कर्म का उद्वेलन होकर सर्व संक्रमण तक होता है।

बंध की अपेक्षा से भी गोत्र का परिवर्तन स्पष्ट है उपशम श्रेणी से उतरते समय सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में १-अनुत्कृष्ट उच्च गोत्र का अनुभाग बंध होता है वह सादिबंध है, २-सूक्ष्म संपराय से नीचे रहने वाले जीवों के वह अनादि बंध है, ३ अभव्य जीवों के ध्रुव बन्ध है, तथा ४—उपशम श्रेणी वाले

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

के अनुत्कृष्ट बंध को छोड़कर जो उत्कृष्ट बंध होता है वह अध्रुव है। इस प्रकार अनुत्कृष्ट उच्च गोत्र के अनुभाग बंध में ४ भेद बतलाये।

"उस जगह (सम्यक्त्व वमन के बाद) इस अजघन्य नीच गोत्र के अनुभाग बंध को सादिबंध कहना। फिर उसी मिथ्या-दृष्टि जीव को उस अंत के समय में पहले जो बंध है वह अनादि है। अभव्य जीव को वह बंध ध्रुव है। और वहाँ अजघन्य को छोड़ जघन्य हुआ वहां वह अध्रुव है।

"गोत्र कर्म के परिवर्तन का वह कितना स्पष्ट वर्णन है"

(विश्वंभरदासजी गार्गीयका "गोत्र कर्म क्या है?"
लेख, जैनमित्र व० १९; अंक ३९, ४०, ४१)

A भोग भूमि और कर्म भूमि के जरिये गोत्र का उदयपरिवर्तन पाया जाता है।

"इस यथार्थ घटना से ही सिद्ध है कि गोत्र का उदय, संतानों में बदल जाता है।" (पृ० २६०)

B "संतानक्रम से गोत्र का उदय बदल जाता है" (३३८)

C "हमारी समझ में उनके (अंतर द्वीपज मनुष्य के) भोग भूमि के समान उच्च गोत्र का उदय होना चाहिये। (पृ० ४१४)

(ब्र० शीतलप्रसादजी के लेख, जैनमित्र वर्ष ४० अंक १६, २१, २७)

१७ A तीर्थंकर भगवान का औदारिक शरीर उसी ही भव में बदल कर परमौदारिक बन जाता है वैसे गोत्रकर्म का भी परिवर्तन समझना चाहिये।

B आज कल के ८ करोड़ मुसलमान ये असल में उच्च गोत्र की संतान है, इनमें जो आचार से शुद्ध बनेगा वह उच्च गोत्री बनेगा। वगैरह।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(रवीन्द्रनाथ जैन न्यायतीर्थ का " गोत्र कर्म " लेख, जैनमित्र व० ४०
अङ्क० २७ पृ० ४४०)

१८ इस प्रकार इस लेखसे यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यखंड के मनुष्य उच्च और नीच दोनों प्रकार के होते हैं। शूद्र हीन वृत्ति के कारण व म्लेच्छ क्रूर वृत्ति के कारण नीच गोत्री, बाकी वैश्य, क्षत्रिय ब्राह्मण और साधु स्वाभिमानपूर्ण वृत्ति के कारण उच्च गोत्री माने जाते हैं, और पहली वृत्ति को छोडकर यदि कोई मनुष्य या जाति दूसरी वृत्ति को स्वीकार कर लेता है तो उसके गोत्र का परिवर्तन भी हो जाता है, जैसे भोग भूमि की स्वाभिमानपूर्ण वृत्ति को छोड़कर यदि आर्यखंड के मनुष्यों ने हीन वृत्ति और क्रूरवृत्ति को अपनाया तो वे क्रमशः शूद्र व म्लेच्छ बनकर नीच गोत्री कहलाने लगे। इसी प्रकार यदि ये लोग अपनी हीन वृत्ति अथवा क्रूर वृत्ति को छोड़कर स्वाभिमानपूर्ण वृत्ति को स्वीकार कर ले तो फिर ये उच्च गोत्री हो सकते हैं। यह परिवर्तन कुछ कुछ आज हो भी रहा है तथा आगम में भी बतलाया है कि छठे काल में सभी मनुष्यों के नीच गोत्री हो जाने पर भी उत्सर्पिणी के तृतीय काल की आदि में उन्हीं की संतान उच्च गोत्री तीर्थंकर आदि महापुरुष उत्पन्न होंगे।

(पंडित वंशीधरजी व्याकरणाचार्य का "मनुष्यों में उच्चता नीचता क्यों ?"
लेख, अनेकांत व० ३ कि० १ पृ० ५५)

दिगम्बर—शूद्र जिनेन्द्र की पूजा करे ?

जैन—इसके लिये तो दिगम्बर आचार्यों ने भी आज्ञा दे दी है। जैसा कि—

१ अपवित्रो पवित्रो वा० (देव गुरु शास्त्र पूजा पाठ)

२—विद्याधर तीर्थंकर की पूजा करके बैठे हैं (३) इन में मातंग जाति के ये हैं (१४) हरे वस्त्रवाले मातंग (१५) मुर्दों

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की हड्डियों के भूषणवाले भस्म से भद मैले श्मशानी (१६) काले अजीन और चमड़े के वस्त्रवाले, काल श्वपाकी (१८) श्वपाकी भंगी (१६)

(आ० जिनसेनकृत हरिवंश पुराण, सर्ग २६ श्लो० १ से २४)

३—कियत्काले गते कन्या, आसाद्य जिनमन्दिरम् ।
सपर्यां महता चक्रु-र्मनोवाक्कायशुद्धितः ॥ ५६ ॥

(गौतमचरित्र अधि० ३ श्लो ५९ तीन शूद्र कन्या का पूजा पाठ)

४—धनदत्त ग्वाले ने जिनमन्दिर में जिनप्रतिमा के चरणों पर कमल पुष्प चढ़ाया । (आराधनाकथाकोष, कथा ११३)

५—सोमदत्त माली प्रतिदिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था । (आराधनाकथाकोष)

दिगम्बर— क्या दिगम्बर शास्त्र में शूद्रों की मुनि दीक्षा और मुक्ति का विधान है ?

जैन—हांजी है ! कुछ २ पाठ देखिये-

१-नापि पंचमहाव्रतग्रहणयोग्यता उच्चैर्गोत्रेण क्रियते,

(षट् खंड, खं० ४ भा० ५ सू० १२६ की धवला टीका)

यदि यह कहा जाय कि उच्च गोत्र के उदय से पांच महाव्रतों के ग्रहण की योग्यता उत्पन्न होती है और इसी लिये जिनमें पांच महाव्रत के ग्रहण की योग्यता पाई जाय उन्हें ही उच्च गोत्री समझा जाय, तो यह भी ठीक नहीं है ।

(दि० पं० जुगलकिशोर मुख्तारजी का लेख, अनेकान्त वर्ष २,किरण १ पृ० १३१)

२-अकम्मभूमियस्स पडिवज्जमाणस्स जहण्णयं संजम-
ट्ठाणमणंतगुणं (चूर्णि सूत्र)

(षट्खंडागम संजमलब्धि अधिकार, चूर्णि)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अनार्यों—शूद्रों का जघन्य संयम प्राप्ति स्थान अनंत गुना है

२-पुव्विल्लादो असंखेज्ज० लोग मेत्त छट्ठाणाणि उवरि गन्तूणेदस्स समुप्पत्तीए ! को अकम्मभूमि ओ णाम ? भरहेरवयविदेहेसु विणीत सण्णि मज्झिमखंड मोत्तूण, सेस पंचखंडविणिवासीमणुओ एत्थ अकम्मभूमिओ त्ति विविक्खओ तेसु धम्मकम्मपवुत्तिए असंभवेण तब्भावो-ववत्तीदो जई एवं कुदो तत्थ संजमग्गहण संभवो ! त्ति णा संकणिज्जं। दिसाविजय चक्कवट्टी खंधावारेण सह मज्झिमखंडमागयाणं मिलेच्छरायाणं तत्थ चक्कवट्टिआ-दीहि सह जादवेवाहियसंबन्धाणं संजमपडिवत्तिए विरोधा-भावादो ! अहवा तत्तत् कन्यकानां चक्रवर्त्यादिपरिणी-तानां गर्भेषूत्पन्ना मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा इतीह विवक्षिताः, ततो न किञ्चित् विप्रतिषिद्धम् तथा-जातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।

प्रश्न—पांच अनार्य खंड के म्लेच्छों को दीक्षा के भाव को उत्पन्न कराने वाला योग मिलना मुश्किल है फिर वे दीक्षा कैसे लेंगे ?

उत्तर—चक्रवर्ती के साथ में मध्यम खंड में आये हुए म्लेच्छ राजा दीक्षा लें यह सम्भवित है। अथवा चक्रवर्ती और म्लेच्छ कन्या की सन्तान माता के जरिये अनार्य है, अगर वे भी दीक्षा को स्वीकार करें, तो यह भी सम्भवित है। वे दीक्षा लेते हैं, अतः पांचों खंडों में संयमस्थान बताये हैं।

सारांश—पांचों खंड के अनार्य भी दीक्षा ले सकते हैं, फिर आर्य खंड के अनार्यों का तो पूछना ही क्या ?

(आ० वीरसेनकृत जयधवला टीका दिगम्बर शास्त्र भंडार की प्रति ८२७, ८२८)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

४–म्लेच्छभूमिज मनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकनीयम् ?
दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा तत्कन्यानां चक्रवर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसंभवात्।

मानें–म्लेच्छ भूमि के अनार्य भी दोनों तरह के निमित्त पाकर दीक्षा लेते हैं।

(लब्धिसार गा० १९५ टीका)

५–दीक्षायोग्यास्त्रयोवर्णाश्चतुर्थश्च विधोचितः
मनोवाकायधर्माय मता सर्वेऽपि जन्तवः।
उच्चावचजनप्रायः, समयोऽयं जिनेशिनाम्।
नैकस्मिन् पुरुष तिष्ठे-देकस्तम्भ इवालयः॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और संस्कारित शूद्र ये दीक्षा के योग्य हैं यानी अधिकारी हैं। जैनधर्म यह किसी खास जाति का धर्म नहीं है, किन्तु उच्च नीच सब मनुष्यों से संकलित धर्म है।

(यशस्तिलक चम्पू)

६ समाधि गुप्त मुनि (चारित्र सार)

७ आचारोऽनवद्यत्वं, शुचिरुपस्कारः शरीर शुद्धिश्च।
करोति शूद्रानपि देव-द्विजातितपस्विपरिकर्म सुयोग्यान्॥

(नीतिवाक्यामृत)

८ शूद्रोप्युपस्काराचार-वपुः शुध्यास्तु तादृशः।
जात्यादिहीनोपिकालादि-लब्धौह्यात्मास्ति धर्मभाक्॥

(दि० पं० आशाधरकृत सागारधर्मामृतम्)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

९—एवं गुणविशिष्टो पुरुषो जिनदीक्षाग्रहण–योग्यो भवति, यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि ।

(आ० कुन्दकुन्दकृत प्रवचनसार की आ० जगसेनकृत टीका)

१० धीवर की लड़की "काणा" क्षुल्लिका होकर व्रत करके स्वर्ग को गई ।

११=भैंसों तक के माँस को खानेवाले मृगध्वज ने मुनिदत्त मुनि से दीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों का नाश करके जगत्पूज्यता प्राप्त की ।

(दि० आराधनाकथाकोष, कथा-५५)

१२-सम्यग्दर्शनसंशुद्धाः, शुद्धैकवसनावृताः ।
सहस्रशो दधुः शुद्धाः, नार्यस्तत्रार्यिकाव्रतम् ।
(आ० जिनसेनकृत हरिवंशपुराण स० २ श्लोक १३३)

"अशुद्ध वंश की उपजी सम्यक्‌दर्शनकार शुद्ध कहिये निर्मल अर शुद्ध कहिए श्वेत वस्त्र की धरन हारी हजारों रानी अर्यका भई अर कइ एक मनुष्य चारों ही वर्ण के पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत चार शिक्षा व्रत धार श्रावक भए अर चारों ही वर्ण की कइ एक स्त्री श्राविका भई और सिंहादिक तीर्यंच बहुत श्रावक के व्रत धारते भये । यथाशक्ति नेम लिये तिष्ठ और देव सम्यक् दर्शन ने धारक अव्रत सम्यग्दृष्टि हुए जिन पूजा विषै अनुरागी भए ।

[*दि० पं० दौलतराम जैपुरवालेकृत हरिवंशपुराण स० २ श्लो० १३१ से १३५ की वचनिका जिनवाणी कार्यालय कलकत्ता से मुद्रित पृष्ठ २३ जै० ३९–२१*]

१३-गोत्र कर्म जीव के असली स्वभाव को घात नहीं करता, इसी कारण अघातिया कहलाता है । केवलज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद अर्थात् तेरहवें गुणस्थान में भी इसका "उदय" बना रहता है,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इतना ही नहीं चौदहवें गुणस्थान में भी अन्त समय के पूर्व तक इसका "उदय" बराबर चला जाता है।

जैसा कि-गोमट० कर्म० गा० २७३,

अस्तित्व [सत्ता] तो नीच गोत्र का भी केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद तेरहवें गुणस्थान में भी बना रहता है, तथा चौदहवें गुणस्थान में भी अन्त समय के पूर्व तक पाया जाता है। यथा गो० क० गा० ३३६।

(बा० सूरजभानजी वकील का लेख 'अनेकान्त' व० २ कि० १ पृ० ३१)

१४-गोत्रकर्म का बंधादि कोष्टक

11, १२, 13 गुणस्थान में	१४ वें गुणस्थान में
बंध ०	बंध ०-०
उदय ३	उदय ३ —३
सत्ता २	सत्ता २-३ [पृ० २१४]

स्थान	गोत्र उदय	गोत्र सत्ता	पृ० २१६
गुण० 13	१	२	२२०
गुण० 14	१	२-1	

(मोक्षमार्ग प्रकाशक भा० २)

१५-अनंग सेना वेश्याने वेश्यावृत्ति छोड़कर जैनधर्म स्वीकार करके स्वर्ग पाया। मछली खानेवाले धीवर मृगसेनने यशोधर मुनि से व्रत ग्रहण किये। वेश्यालम्पटी अंजन चोर उसी भव सद्गति को प्राप्त हुआ। मांसभक्षी मृगध्वज और मनुष्यभक्षी शिवदास भी मुनि होकर महान पद को प्राप्त हुआ। चाण्डाल की अन्धी लड़की श्राविका बनी। वसुदेव और म्लेच्छ कन्या जरा के पुत्र जरत कुमारने मुनिदीक्षा ली थी। विद्युत्चोर मुनि हुआ। वगैरह २ अनेक दृष्टान्त मिलते हैं।

(पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ कृत जैनधर्म की उदारता)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

१६—नागकुमार ने वैश्यापुत्रियों से लग्न किया और अंत में मुनि दीक्षा धारण की। दिगम्बर मुनि सत्य की और दिगम्बर आर्जिका ज्येष्ठा का व्यभिचारजात पुत्र रुद्र दिगम्बर मुनि हो गया। कार्तिकपुत्र का राजा अग्निदत्त और उसीकी ही पुत्री कृति के संभोग से "कार्तिकेय" और "वीरमती" हुए, कार्तिकेय मुनि दीक्षा धारण कर दिगम्बर मुनि हुए।

(मंदलाल जैन कलकत्तावाले का लेख 'जैनमित्र' व० ४०, अं० २६ पृ० ४७८)

१७-कार्तिकेय "भावलींगी" बनकर शुभ गति में गये।

(दि० पं० न्यामतसिंहकृत भ्रमनिवारण पृ० ६)

दिगम्बरः—शूद्र अगर दिगम्बर मुनि हुआ तो मोक्ष के योग्य है ही, किन्तु इतने दिगम्बरीय प्रमाण होने पर भी दिगम्बर समाज शूद्रदीक्षा और शूद्रमुक्ति का निषेध क्यों करती है?

जैन—इस शंका का समाधान दिगम्बर विद्वान इस प्रकार करते हैं—

१—अतः दिगम्बराम्नाय के चरणानुयोग में शूद्रों को मुक्ति निषेध की जो व्यवस्था बांधी है, और शूद्र क्षुल्लकों के अलहदा बैठ कर एक लोहे के पात्र में आहार लेने की रीति पर आग्रह है, वह पीछे के आचार्यों का अपने देश और समय के अनुसार (हिन्दुओं की प्रसन्नता के अनुकूल पृ० २५) चलाया हुआ व्यवहार है न कि जैनधर्म का विश्वव्यापी सिद्धान्त।

(दि० विद्वान् अर्जुनलाल सेठी कृत शूद्रमुक्ति पृ० २७)

२-चाण्डाल के दर्शन से ब्राह्मण और वैश्य स्त्रियां अपने नेत्र धोतीं थीं और उन्हें मरवातीं थीं। (चित्तसंभूत जातक बौद्ध ग्रन्थ) वेद का शब्द सुन लेने वाले के कानों में कीले ठोक दिये जाते थे (मातंग जातक, सद्धर्म जातक)···

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ब्राह्मण धर्म की पूरी छाप लगी हुई मालूम होती है, इसलिये उन्होंने (दिगम्बरी आचार्यों ने) शूद्रों से घृणा, आचमन आदि को जैनियों में भी रखना चाहा है।

(पं० परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थकृत चर्चासागर समीक्षा पृ० ५०-५१)

वस्तुतः दिगम्बर समाज में शूद्रमुक्ति के निषेध के लिये जो नैमित्तिक व्यवहार था उसको, बादके विद्वान् और खास करके भाषा टीकाकार और ब्राह्मणीय प्रभाव से प्रभावित ब्रह्मचारी वगैरहों ने एक जिनाज्ञा रूप बना लिया।

परमार्थ से जैनदर्शन में शूद्रमुक्ति की मना नहीं है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर बाहुबली को अनार्य मानते हैं।

जैन—यह झूठ बात है। कोई भी जैन शास्त्र बाहुबली को अनार्य नहीं मानता है। काल के प्रभाव से कर्मभूमि और अकर्मभूमिका परिवर्तन होता है। वैसे ही आर्यभूमि और यवनभूमि का परिवर्तन हो सकता है। वास्तव में बाहुबली यवन नहीं था, और वह भूमि भी यवनभूमि नहीं थी। बाहुबली की राजधानी के खंडहर संभवतः रावलपिंडी से करीब २० मील उत्तर में टकिसला के नाम से विद्यमान है।

दिगम्बर—चौथे आरे में आर्य भूमि में म्लेच्छों का निवास नहीं माना जाता है।

जैन—यह आपकी मान्यता कल्पना मात्र है। दिगम्बर विद्वान तो यहां चौथे आरे में म्लेच्छों का होना मानते हैं।

प्रमाण देखिये।

१—चारित्रसार में खदिर भील और समाधिगुप्त मुनि का अधिकार है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२—स्वदेशेऽनक्षरम्लेच्छान्, प्रजाबाधा विधायिनः ।
कुलशुद्धि प्रदानाद्यैः स्वसात्कुर्यादुपक्रमैः ॥ ७६ ॥
(आ० जिनसेनीय आदिपुराण, पर्व ४२, श्लो० ७९)

३—उच्चैर्गोत्रोदयादेरार्याः नीचैर्गोत्रादयादेश्च म्लेच्छाः
(श्लोकवार्तिक, अ० ३, सूत्र ३७)

४—तथान्तर्द्वीपजा म्लेच्छाः परे स्युः कर्मभूमिजाः ॥
कर्मभूमि भवा म्लेच्छाः प्रसिद्धा यवनादयः ।
स्युः परे च तदाचार-पालनाद् बहुधा जनाः ॥
(श्लोक वार्तिक, पृ० ३५७)

५—आर्य खंडोद्भवा आर्या, म्लेच्छा केचिच्छकादयः ।
म्लेच्छ खण्डोद्भवा म्लेच्छा, अन्तरद्वीपजा अपि ॥

आर्य खंडोद्भव म्लेच्छ यह आर्य भूमि की बाशिन्दा चौथे आरा की म्लेच्छ जाति है ।

(आ० अमृतचन्द्र कृत तत्वार्थसार अ० १, श्लो० २१२)

ऐसे ही ऐसे अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं ।

सारांश—'यहाँ चौथे आरे में म्लेच्छ नहीं होते हैं' यह दिगम्बरीय मान्यता शूद्रमुक्ति के विरोध के सिलसिले में चलाई हुई कल्पना मात्र है ।

दिगम्बर—श्वेताम्बर समाज "स्त्री मुक्ति" मानता है यह ठीक है ?

जैन—दिगम्बर आचार्य भी स्त्रीमुक्ति के पक्ष में हैं और वह सर्वथा वास्तविक ही है ।

दिगम्बर—स्त्री जाति में भिन्न २ प्रकार की त्रुटियां हैं अतः वो मुक्ति नहीं पा सकती हैं, जैसे कि—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

चित्ता सोहि ण तेसिं, ढिल्लं भावं तहा सहावेण ।
विज्जदि मासा तेसिं, इत्थीसु ण संकया झाण ॥ २६ ॥

(आ० कुन्दकुन्दकृत सूत्र प्राभृत, गा० ११)

णग्गो देवो णग्गो गुरु णग्गो पई तम्हा इत्थीणं ।
ण होदि चित्तसोही, विणा सोहिं कधं चरणं ॥१ ॥

(लोकोक्ति)

जैन—महानुभाव ! त्रुटियां तो जैसी पुरुष में हैं वैसी ही स्त्री में हैं, फिर सिर्फ स्त्री ही मोक्ष में न जाय, यह क्यों ? तीर्थंकर की मातायें, ब्राह्मी वगैरह आर्जिकायें और सीता वगैरह सतीयां ये सब पवित्रता की आदर्श मूर्तियां है, सीताजी ने अग्नि प्रवेश किया इत्यादि बलिदान कथायें स्त्रियों की सात्विकता का गान करती हैं। माने—स्त्री में ऐसी कोई त्रुटी नहीं है कि जो मोक्ष की बाधक हो।

जिस समाज में पूजनीय तीर्थंकर भगवान की शास्त्रोक्त चंदन पूजा वगैरह को देखने मात्र से ही ध्यानभंग—अस्थिरता महसूस होती है, उस समाज में नग्नता के कारण भी अस्थिरता होने का आक्षेप किया जाय तो संभवित है। किन्तु सतीस्त्रियों की कुरबानी सोची जाय तो उक्त आक्षेप निर्मूल हो जाता है।

दिगम्बर—स्त्रिओं में "अनृतं, साहसं माया" इत्यादि स्वाभाविक दूषण रहे हैं, इसका क्या किया जाय ?

जैन—स्त्रीसमाज में अधिक अज्ञानता के कारण ऐसा हो भी सकता है। किन्तु वे दूषण तो पुरुषों में भी काफी पाये जाते हैं। अधमाधम जीवन के लिये मेघमाली, दृढप्रहारी, अखाई नमुचि मंत्री, मुनिद्वेषी पालक, अलाउद्दीन वगैरह अनेक दृष्टांत मौजूद हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

विपक्ष में राजीमती, चन्दनबाला, सीता, सुभद्रा इत्यादि के आदर्श जीवन भी प्रसिद्ध हैं।

भक्तामर श्लो० २२ में स्त्री की ही गौरवगाथा है, देवगण भी जन्मोत्सव के समय स्त्री की पूजा करते हैं, पांचों कल्याणक में स्त्री को धन्यवाद देते हैं, श्री तीर्थंकर भगवान चतुर्विध संघ की ४ आस्थानों में से २ आस्थान स्त्रीसमाज को देते हैं, उनको "णमो तीथस्स" पाठ से नमस्कार करते और कराते हैं। स्त्रीसमाज की समानता और पवित्रता के लिये इससे अधिक प्रमाण की जरूरत नहीं है।

दिगम्बर–स्त्री, स्त्रीपने में है इस भिन्नता का क्या किया जाय?

जैन–स्त्री और पुरुष में गति जाति काय योग पर्याप्ति बंधन लेश्या संघातन संहनन संस्थान त्रसादि संज्ञित्व दर्शन ज्ञान चरित्र आदि के जरिए कुछ भेद नहीं है; यदि भेद है तो सर्फि शरीर रचना में ही "नामकर्म" के कारण भेद है। नामकर्म की पुद्गल विपाकी पिंडप्रकृतियां शारीरिक भेद कराती हैं॥

दिगम्बर–किन्तु पुरुषचिन्ह स्त्रीचिन्ह वगैरह तो द्रव्य वेद है, ऐसा माना गया है।

पुरिसिच्छि-संढ-वेदो-दयेण पुरिसित्थिसंढओ भावे।
णामोदएण दव्वे, पाएण समा कहिं विसमा॥ २७० ॥

(गोम्मटसार, जीवकाण्ड, गा० २७०)

जैन—पुरुषचिन्ह वगैरह नाम कर्म की प्रकृति जरूर है किन्तु "द्रव्य वेद" है।

जैन—यह बेबुनियाद बात है। पुरुषादि की देहरचना नाम कर्म के अन्तर्गत है। औदारिक के अंगोपांगादि तीन भेद हैं

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इनमें मूकता, अंधता इत्यादि पाये जाते हैं, उसी तरह लिंगभेद भी पाये जाते हैं, जो द्रव्यवेद नहीं किन्तु "नोकर्म्म" द्रव्य है। भैंस का दही निद्रा का "नोकर्म्म" है, इसी प्रकार तीनों लिंग क्रमशः तीनों वेद के "नो कर्म्म" द्रव्य हैं, यह सर्व साधारण दिगम्बर मान्यता है।

थी-पुं-संढशरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।

स्त्री पुरुष और नपुंसक का शरीर उनको "नोकर्म्म" द्रव्य रूप कर्म है।

(गोम्मटसार, कर्म्मकाण्ड अधि० १, गा० ७६)

तत्त्वार्थ सूत्र-मोक्ष शास्त्र में द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय के भेद बताये हैं जब कि द्रव्य वेद और भाव वेद का नाम निशान भी नहीं है। फिर भी वेद के ऐसे भेद मानना, यह नितान्त मनमानी कल्पना ही है। उन शरीरों को द्रव्य वेद मानने में और भी बाधा आती है। वेद यह मोहनीय कर्म का अंग है, गोम्मटसार जीवकांड गा० ६ का "वेदे मेहुणसंज्ञा" पाठ मैथुन संज्ञा में ही वेद का अस्तित्व बताता है; इस सत्य को कुचलना पड़ेगा। इसके अलावा जहाँ तक द्रव्य वेद है वहाँ तक द्रव्य मोहनीय कर्म का अस्तित्व मानना पड़ेगा, और केवलज्ञान का निषेध करना पड़ेगा। अन्ततः पुरुष चिन्हादि युक्त शरीर केवलज्ञान का अधिकारी ही नहीं रहेगा। दिगम्बर समाज को यह बात मंजूर नहीं है।

यह तो निर्विवाद मान्यता है कि—चार घातिया कर्म चाहे द्रव्य से विद्यमान हो या भाव से विद्यमान हो, केवलज्ञान को रोकते हैं किन्तु चारों अघातिया कर्म केवलज्ञान को नहीं रोकते हैं। साथ २ में यह भी निर्विवाद है कि पुरुष स्त्री व नपुंसक के शरीर न तो वेद हैं, न कषाय हैं, न मोहनीय हैं, किन्तु स्पष्ट रूप

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से नाम कर्म है, अघातिया कर्म हैं, अतएव ये तीनों प्रकार के औदारिक शरीर केवलज्ञान के बाधक नहीं हैं।

दिगम्बर—"वेद कषाय नोकर्म" तो सामनेवाली व्यक्ति का शरीर भी हो सकता है।

जैन—अपने शरीर को छोडकर सामनेवाली व्यक्ति के शरीर को "नोकर्म्म" मानना यह भी मनमानी कल्पना ही है। इस कल्पना के आधार पर तो यह भी मानना अनिवार्य होगा, कि कभी स्त्री-रमणेच्छा और पुरुष-रमणेच्छा इन दोंनो विरोधी इच्छाओं का नोकर्म्म "द्रव्य पुरुष" ही हो। मगर ऐसा माना जाता नहीं है, अतः वह कोरी कल्पना ही है। वास्तव में सामने वाली व्यक्ति के बजाय अपने इन शरीरों को "नोकर्म्म" मानना, और "द्रव्य वेद कषाय" न मानना यही बात दिगम्बर आचार्यों को अभीष्ट है। इसके अलावा द्रव्य वेद और भाव वेद के बंध कारण कौन २ हैं? यह समस्या भी खडी हो जायगी, अतएव दिगम्बर आ० नेमिचन्द्रजी ने स्पष्ट कर दिया है कि "ताणं णोकम्म दव्व-कम्मं तु"। (गो० गा० ७६)

दिगम्बर—'पाएण समा कहिं विसमा' गो० जी० गा० २७० इस पाठ से शरीर और वेदों में विषमता भी मानी जाति है। मान-पुरुष को पुरुष-वेदोदय होता है, स्त्री-वेदोदय होता है और नपुंसक वेदोदय होता है। इसी प्रकार स्त्री को एवं नपुंसक को भी तीनों प्रकार का वेदोदय होता है। सबको तीनों तरह की भावनायें महसूस होती हैं।

जैन—यह बात भी कल्पना रूप ही है, दिगम्बर शास्त्र भी इसे नामंजूर करते हैं।

इतना हो सकता है कि कामांध व्यक्ति सजातीय विजातीय का ख्याल न रक्खे और अप्राकृतिक प्रवृत्ति करे, किन्तु उसके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वेद कषाय में परिवर्तन नहीं होता है, और ऐसा करने को कोई शास्त्रीय प्रमाण भी नहीं मिलता है। अप्राकृतिक सेवन तो व्यवहार में भी अधमाधम माना जाता है। ऐसा पुरुष तो समवेदी स्त्री से भी गया गुजरा माना जाता है। मगर वह "स्त्री वेदी" ही बन जाय फिर तो पूछना ही क्या ?

वास्तव में शरीर और वेदों में विषमता नहीं हो सकती है। आ० नेमिचन्दसूरि साफ लिखते हैं कि—सामान्यतया १२२ उदय प्रकृति में से मनुष्य गति में आठों कर्मों की क्रमशः ५, ६, २, २८, १, ५०, २ और ५ एवं १०२ प्रकृति का उदय होता है, पर्याप्त अपर्याप्त और तीन वेद इत्यादि सब इनमें शामिल हैं।

"पज्जत्ते वि य इत्थी वेदाऽपज्जति परिहीणो" ॥३००॥

अर्थ—पर्याप्त पुरुष (मनुष्य) को स्त्रीवेद और अपर्याप्ति सिवाय की १०० प्रकृति का उदय हो सकता है। माने-पुरुष को सारी जिन्दगी में कभी भी स्त्री वेद का उदय नहीं होता है।

(गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ३००)

मणुसिणीए त्थीसहिदा, तित्थयराहारपुरिस
संढूणा ॥ ३०१ ॥

अर्थ—पर्याप्ता मनूषीणी को स्त्री वेद का उदय है, किन्तु अपर्याप्ति, तिर्थंकर नाम कर्म, आहारक द्विक, पुरुषवेद, और नपुंसक वेद सिवाय की ९६ प्रकृति का उदय हो सकता है। माने स्त्री को सारी जिन्दगी में कभी भी पुंवेद या नपुंवेद का उदय होता नहीं हैं, छठे गुणस्थान में जाने पर आहारक द्विक का उदय नहीं होता है। तेरहवें गुणस्थान की प्राप्ति होने पर तिर्थंकर पद का उदय नहीं होता है।

(गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ३०१)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुरुष वेद में स्त्री वेद आदि १५ को छोडकर १०७ प्रकृति का उदय होता हैं। (गा० ३२०) स्त्री वेद में पुरुष वेद आदि १७ को छोडकर १०५ प्रकृति का उदय होता है। नपुंसक वेद में १४४ प्रकृति का उदय होता है। (३२१) उदय त्रिभंगी में भी तीनों वेदवाले को विषम वेदोदय नहीं माना है।

ये सब प्रमाण शरीर से विभिन्न वेदोदय को साफ २ मना करते हैं।

दिगम्बर—दिगम्बर समाज १ से ९ गुणस्थान तकके पुरुष माने दिगम्बर मुनि को तीनों वेद का उदय मानता है।

१-पं० बनारसीदासजी लिखते हैं कि—

जो भग देखी भामिनी मानें, लिंग देखीं जो पुरुष प्रवानें।

जो विनु चिन्ह नपुंसक जोवा, कहि गोरख तीनों घर खोवा।

२-दिगम्बर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने भी अपने "स्वतंत्रता" लेख में साफ बताया है कि-दिगम्बर मुनि जो नग्न दशा में हैं, वे ९ वें गुणस्थानक तक तीनों वेदों को महसूस करते हैं, दिगम्बर मुनि को छठे गुणस्थान में पुंवेद स्त्रीवेद या नपुंवेद का तीव्र उदय होता है। इत्यादि। (जैनमित्र, व० ३१, अंक ४५, ४६, ४७)

जैन-दिगम्बर मुनि को स्त्री वेद और नपुंसक वेद का अप्राकृतिक या निन्दनीय उदय मानना यह तो दिगम्बर विद्वानों की ज्यादती है। ऐसा वेदोदय होना यह तो नैतिक अधःपात है। यही कारण है कि-स्थानकपंथी जैन चान्दमलजी रतलामवाले ने "कल्पित कथा समीक्षा का प्रत्युत्तर" पृ० १९५ १९६ में दिगम्बर मुनि के बारे में कुछ सख्त लिख दिया है। शर्म की बात है कि दिगम्बर समाज अपने आगम उपलब्ध होने पर भी शास्त्रों के नाम,पर दिगम्बर मुनि के लिये ऐसी झूठी बात चलाती है और

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर मुनिओं को जगत के सामने निंद्य कलंकित जाहिर करती है, इस भूल को उसे सुधार लेना चाहिये। "कहिं विसमा" को झूठा जाहिर कर देना चाहिये और दिगम्बर मुनिमंडली को इस निन्दनीय आक्षेप से बचा लेना चाहिये।

यदि दिगम्बर शास्त्र छट्टे गुणस्थान में द्रव्य स्त्रीवेद और द्रव्य नपुंसक वेद का उदय विच्छेद और नवमें गुणस्थान में तीनों भाव वेदका उदय विच्छेद बताते जब तो उन दिगम्बर मुनिओं के लिए तीनों वेद का उदय या कहिं समा कहिं विसमा मानना उचित ही था। मगर आ० नेमिचन्द्रजी डंके की चोट एलान करते हैं कि-मरद को नवमें गुणस्थान तक पुरुष वेदका उदय होता है, स्त्री वेदका उदय तो उसे कभी भी नहीं होता है (गा० ३००) एवं स्त्री को नव में गुणस्थान तक स्त्री वेद का उदय होता है, उसे कभी भी पुरुष वेद या नपुंसक वेद का उदय होता ही नहीं है (गा० ३०१)

अतः—पुरुष को तीनों वेद का उदय व वेदपरावर्तन मानना यह दिगम्बर शास्त्रों से खिलाफ सिध्धांत है। वास्तविक बात यही है कि—पुरुष स्त्री व नपुंसक उपशम या क्षपक श्रेणी से नवमें गुणस्थान को पाते हैं वहां तक उन्हें स्वस्ववेदोदय रहता है।

महान् व्याकरण निर्माता दि० आ० शाकटायन वेदकषाय के लिये व्यवस्था करते हैं, जिसमें भी वेद परिवर्तन को तर्कणा से भी अग्राह्य बताते हैं देखिये।

स्तन जघनादि व्यंगे, स्त्री शब्दोऽर्थे न तं विहायैषः
दृष्टः क्वचिदन्यत्र, त्वग्निर्माणकवद् गौणः ॥ ३७ ॥
'आषष्ठया स्त्री' त्यादौ, स्तनादिभिस्त्रीस्त्रिया इति च वेदः
स्त्रीवेदस्त्र्यनुबन्धः, पल्यानां शतपृथक्त्वोक्तिः ॥ ३८ ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न च पुंदेहे स्त्रीवेदोदयभावे प्रमाणमङ्गं च ।
भावः सिद्धौ पुंवत्, पुंसोऽपि न सिध्यतो वेदः ॥ ३६॥
पुंसि स्त्रियां स्त्रियां पुंसि, अतश्च तथा भवेद् विवाहादिः ।
यतिषु न संवासादिः, स्यादगतौ निष्प्रमाणेष्टिः ॥ ४२ ॥
अनडुह्या ऽनड्वाहीं, दृष्टानड्वाहमनडुहारूढम् ।
स्त्रीपुंसेतरवेदो, वेद्यो नानियमतो वृत्तेः ॥ ४३ ॥
नाम तदिन्द्रिय लब्धेरिन्द्रियनिर्वृत्तिमिव प्रमाद्यङ्गम् ।
वेदोदयाद् विरचयेद्, इत्यतदङ्गो न तद्भेदः ॥ ४४ ॥
या पुंसि च प्रवृत्तिः, पुंसि स्त्रीवत् स्त्रिया स्त्रियां च स्यात् ।
सा स्वकवेदात् तिर्यक्वद लाभे मत्तकामिन्याः॥ ४५ ॥

अर्थात्—वेद कषाय का परिवर्तन नहीं होता है। पुरुष को स्त्री वेदोदय नहीं होता है। अतएव कीसी भी वेद के द्रव्यभाव भेद नहीं हैं स्त्री की शरीर रचना यह नामकर्म का ही भेद है। उसके अस्तित्व में केवलज्ञान हो सकता है एवं स्त्री मोक्ष की अधिकारिणी है।

दिगम्बर—स्त्री को पहिले के "तीन संहनन" का अभाव है अतः मोक्ष नहीं मिलता है। देखिए-

सन्ती छ स्संहडणो, वज्जदि मेघं तदोपरं चापि ।
सेवट्टादि रहितो, पण पण च दुरेग संहडणो ॥ ३१ ॥
अंतिम तिग संहडण स्सुदयो पुण कम्मभूमि महिलाणं ।
आदिम तिग संहडणं, णत्थिति जिणेहिं णिदिट्ठं ॥ ३२॥

(गोम्मटसार कर्मकांड गा० ३१, ३२)

माने-स्त्रियों को युगलिक काल में पहिले के तीन संहनन होते हैं पीछे के तीन संहनन नहीं होते हैं बाद में कर्मभूमि होते

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ही स्त्रियों को पहिले तीन संहनन नहीं रहते हैं किन्तु अंत के तीन ही रहते हैं।

जैन—विज्ञान के नियमानुसार वस्तु की क्रमशः हानि वृद्धि होना यह तो ठीक बात है किन्तु आपने तो एक ही हुक्म से एक दम, एक नहीं, दो नहीं, किन्तु तीन २ संहननों का परिवर्तन कर दिया। वाह जी वाह ? क्या पहिले संहनन वाली सब एक साथ मर गई यानी उन सब को एक साथ में देह पलटा हो गया ? न मालूम ऐसी २ कई कल्पित बातें दिगम्बर शास्त्रों में दाखिल कर दी गई होंगी। वास्तव में दि० शास्त्र तो स्त्री वेद में छै संहनन का उदय मानते हैं। उक्त गा० ३१ में छै संहननों का विधान है। बन्धसत्वाधिकार में छै संहनन बताये हैं और गा० ३८८ गा० ७१४ इत्यादि कई स्थानों में स्त्री के लिये क्षपक श्रेणी व अवेदिपन वगैरह उल्लेख हैं। फिर भी स्त्रियों के लिये वज्र ऋषभनाराच वगैरह सहननों का निषेध करना यह तो किसी भाषा टीकाकार दिगम्बर विद्वान की ही नई सूझ है।

स्त्री मरकर छट्टे नरक में जाती है कि जहां पहिले तीन संहनननवाले जा सकते नहीं है, इसीसे भी स्त्री को शुरु के ३ संहनन होना सिद्ध है।

दिगम्बर विद्वान् श्रीमान् अर्जुनलाल शेठी तो स्त्री मुक्ति पृ० २३ व २७ में उक्त गाथा को क्षपक ही बताते हैं और दिगम्बर शास्त्रों के अनुसार स्त्रियों को छै संहनन का होना मानते हैं।

दिगम्बर—समकीती मरकर स्त्री वेद में नहीं जाता है, फिर स्त्री वेद में केवल ज्ञान कैसे होवे ?

जैन—समकीती मरकर मनुष्य गति में भी नहीं जाता है फिर तो मनुष्य को भी केवल ज्ञान नहीं होना चाहिये, आपके

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हिसाब से तो सिर्फ देवों को ही केवल ज्ञान होना चाहिये।

दिगम्बर—स्त्री तीर्थंकर, गणधर, चौदपूर्ववेदी, जिन कल्पी, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, संभिन्नश्रुतादिलब्धियुक्त आहारक शरीर वाली, और मरकर अहमिन्द्र देव नहीं हो सकती है। फिर मोक्ष गामी कैसे हो?

जैन—ये सब मोक्ष के अनन्तर या परम्पर कारण नहीं हैं पुरुष इनको बिना पाये ही मोक्ष गामी होता है उसी तरह स्त्री भी इनको वगैर पाये ही मोक्ष गामिनी होती है जो साध्य के कारण ही नहीं हैं उनके अभाव में साध्य प्राप्ति का निषेध मानना यह ज्ञान कैसा?

मानलो कि जवाहरलालजी नहेरु हल को नहीं चला सकता है तो क्या राज्य को भी न चला सकेगा? एक मनुष्य डाक्टर या वकील नहीं है तो क्या राजा नहीं बन सकेगा? नरक से आया हुआ जीव चक्रवर्ती बलदेव या वासुदेव न हो सके तो क्या केवली भी न हो सके!

कभी २ ऐसा भी होता है कि परस्पर में भिन्न या असहयोगी शक्तियां एक साथ में ही नहीं रहती हैं दिगम्बर शास्त्रों में भी ऐसी परस्पर विरोध वस्तुओं का निर्देश है। जैसा कि–

मणपज्जव, परिहारो, पढमुवसम्मत्त दोण्णिआहारा।
एदेसु एक पगदे, णत्थित्ति असेसयं जाणे॥

(गोम्म० जीव० गाथा ७२८)

जब इनमें से कोई भी एक होती है तब दूसरी तीनों वस्तुएं नहीं होती हैं। एवं उक्त तीर्थं कर पद वगैरह भी स्त्री वेद के असहयोगी हैं। अतः वे स्त्री वेद में नहीं रहते हैं। मगर इनके न रहने से मोक्ष प्राप्ति में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं आती है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर शास्त्रों में भी स्त्री के असहयोगी कुछ बताये गये हैं। जैसा कि—

वेदा हारोत्तिय, सगुणोघं णवरं संढ थी खवगे।
किण्ह दुग—सुहतिलेसिय वामेवि णं तित्थयरसत्तं ॥

अर्थ-वेद से आहार तक की मार्गणाओं में स्वगुण स्थान की सत्ता है विशेषता इतनी ही है कि क्षपक श्रेणी में चढने वाले नपुंसक स्त्री और पांच लेश्या वाले मिथ्यात्वी की सत्ता में तीर्थंकर प्रकृति नहीं होती है। माने स्त्री क्षपक श्रेणी में चढती है किन्तु तीर्थंकर नहीं बनती है।

(गोम्म० कर्म० गा० ३५४)

मणुसिणी पमत्तविरदे, आहार दुगं तु णत्थि णियमेण।

(गोम्मट सार जीव कांड गा० ७१४)

अर्थ—मानुषीणी छट्टे गुण स्थान को पाती है किन्तु उसको आहारकाद्विक (पं० गोपालदासजी वरैया के भाषा पाठ के अनुसार आहारक शरीर अंगोपांग) नहीं होता है।

वेदाहारोत्तिय सगुण ठाणाण मोघ आलाओ।
णवरिय संढि-त्थीणं, णत्थि हु आहारगाण दुगं ॥

अर्थ—वेद से आहार तक की १० मार्गणाओं में स्व स्व गुण स्थान के अनुसार आलावा होते हैं। फरक इतना ही है कि नपुं- और स्त्री को आहारकाद्विक (आहारककाययोग आहारक मिश्र- काय योग, भा० टी०) नहीं है।

माने स्त्री छट्टे गुण स्थान में जाती हैं, किन्तु उसे आहारक द्विक नहीं होता है।

यहां आहारक और तीर्थंकर प्रकृति के निषेध करने पर भी दीक्षा क्षपकश्रेणी या केवलज्ञान का निषेध नहीं किया है। कारण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यही है कि उनके अभाव में केवल ज्ञान का अभाव नहीं माना जाता है।

इससे स्पष्ट है कि स्त्री केवलिनी और मोक्ष गामिनी हो सकती है।

दिगम्बर—स्त्री आचार्य नहीं होती है और न पुरुष को शिक्षा देती है।

जैन—स्त्री "गणिनी" बनती है, स्त्री समाज की अपेक्षा से वह आचार्य पदवी है, वो "महत्तरा" भी बनती है। क्या स्त्री अपने पुत्र को उपदेश नहीं देती है? और वह ही उसको सन्मार्ग में लाने वाली है। स्वयं दीक्षा लेकर अनेक जीवों को धर्म में लाती है स्थापित कराती है।

दिगम्बर—दि० पं० न्यामतसिंह का मत है कि एक पुरुष जिस तरह हजारों स्त्रियाँ रख कर प्रति वर्ष हजारों संतान उत्पन्न कर सकती है। क्या स्त्री भी उस तरह कर सकती है? स्त्री वर्ष भर में १ बच्चा कर सकती है। इसलिये पुरुष सबल है स्त्री अबला है मोक्ष नहीं पा सकती है।

(सत्य परीक्षा पृ० ४४ भ्रम निवारण पृ० १२)

जैन—यदि सन्तान की संख्या ही मोक्षगामीके बल-वीर्य का थर्मामीटर है तो सौ पुत्र के पिता ऋषभदेवजी सबल, दो संतान के ही उत्पादक युगालिक मध्यमबल और ब्रह्मचारी नेमिनाथजी वगेरह अबल माने जायँगे, इस हिसाब से तो भ० नेमिनाथ आदि को मोक्ष ही नहीं होना चाहिये था। उस थर्मामीटर से तो कुत्ता सबल और मनुष्य अबल माना जायगा। इतना ही क्यों? समूर्छिम का आदि कारण सबल, और गर्भज का आदि कारण अबल ही माना जायगा। मोक्ष आपके इन सबलों की ही अमानत बनी रहेगी क्या?

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

महानुभाव ? ऐसी थोथी कल्पनाओं से क्या होता है ? मोक्ष में जाने वाला तो आत्मा ही है। यह निर्विवाद मत है कि सबल आत्मा मोक्ष में जायगी और निर्बल आत्मा संसार में परिभ्रमण करेगी। चाहे वह पुरुष हो या स्त्री।

दिगम्बर—सबल आत्मा उत्कृष्ट उर्ध्वगति करे तो मोक्ष में जाती है, उत्कृष्ट अधोगति करे तो सातवें नरक में जाती है। मध्यम बल आत्मा उत्कृष्ट गति करे तो ऊपर, बीच के देवलोक में और नीचा बीच के नारकी स्थानों में जाती है। और अल्प बल आत्मा उत्कृष्ट रूप से शुरू २ के देवलोक में या शुरू २ के नरक में जाती है। इसलिये तय पाया जाता है कि जो आत्मा मोक्ष में जाने की ताकत रखती है वही सातवीं नरकी में जाने की ताकत रखती है और जो आत्मा मोक्ष की ताकत नहीं रखती है वह सातवीं नारकी की भी ताकत नहीं रखती है। यानी जो आत्मा सातवीं नारकी पाने को समर्थ है वही मोक्ष पाने को समर्थ है। सारांश यह है कि आत्मा की शक्ति उच्च या नीचे गति करने में ठीक समानता से काम देती है।

संघयणमें भी उत्कृष्टगति निम्न रूपसे बताई है :—

संहनन	उ० ऊर्ध्वगति	उ० अधोगति
१ वज्रऋषभ०	मोक्ष	७ नरक
२ ऋषभनाराच	१२ देवलोक	६ ,,
३ नाराच	१० ,,	५ ,,
४ अर्धनाराच	८ ,,	४ ,,
५ कीलिका	६ ,,	३ ,,
६ सेवार्त	४ ,,	२ ,,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(जैनधर्मप्रकाश पु० ५६ अं० ४ सं० १६६६ आषाढ़ पृ० १७८)

अब इस नियम के अनुसार देखा जाय तो मानना अनिवार्य होगा कि स्त्री मोक्ष में नहीं जासकती है कारण ? स्त्री सातवीं नारकी में भी नहीं जासकती है।

देखिए आगम प्रमाण—

पढमं पुढवीमसण्णी, पढमं बितियं च सरिसवा जंति ।
पक्खी जाव दु तादियं, जाव दु चउत्थीं उरसप्पा ॥ ११२ ॥
आपंचमीति सीहा, इत्थिओ जंति छट्टि पुढवि त्ति ।
गच्छंति माघवीति, मच्छा मणुया य ये पावा ॥ ११३ ॥
उवाट्टिया य संता, णेरइया तमतमादु पुढवीदो ।
णं लहंति माणुसत्तं, तिरिक्खजोणी मुवणयंति ॥ ११४ ॥
छट्टीदो पुढवीदो, उवाट्टिदा अणंतर भवम्मि ।
भज्जा माणुसलंभे, संजमलंभेण उ विहीणा ॥ ११६ ॥
होज्ज दु संजमलाभो, पंचमखिदि-णिग्गतस्स जीवस्स ।
णत्थी पुण अंतकिरिया, णियमा संकिलेसेण ॥ ११७ ॥
होज दु णिव्वुदिगमणं, चउत्थीखिदि णिगतस्स जीवस्स ।
णियमा तित्थयरत्तं, णत्थित्ति जिणेहिं पण्णत्तं ॥ ११८ ॥
तेण परं पुढवीसु, भयाणिज्जा उवरिरमा हु णेरइया ।
णियमा अणंतरभवे, तित्थयरस्स उप्पत्ती ॥ ११६ ॥
णिरयेहिं णिग्गदाणं, अणंतरभवम्मि णत्थि णियमादो ।
बलदेव वासुदेवत्तणं च तह चक्कवाट्टित्तं ॥ १२० ॥

(आ० वट्टेरककृत 'मूलाचार', परिच्छेद १२)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

असन्नी खलु पढमं, दोच्चं च सरीसवा, तइय पक्खी ॥
सींहा जंति चउत्थीं, उरगा पुण पंचमीं पुढवीं ॥ १ ॥
छट्ठी य इत्थीयाओ, मच्छा मणुया य सत्तमीं पुढवीं।
एसो परमोवाओ, बोधव्वो नरय पुढवीसु ॥ २ ॥

अर्थ—पहिले नरक में असंज्ञी (असैनी), दूसरे में सरीसर्प, तृतीय में पक्षी, चतुर्थ में सिंह, पाँचवें में उरपरिसर्प, छटवें में स्त्री और सप्तम में मनुष्य व मत्स्य, जा सकते हैं। इस प्रकार सातों नरकों की उत्कृष्ट उत्पत्ति कही गई है।

यहाँ साफ २ है कि स्त्री सातवें नरक में नहीं जा सकती है तो गति की समानता के नियम से मानना ही पड़ेगा कि स्त्री मोक्ष में भी नहीं जासकती है।

जैन—महानुभाव? उक्त संहनन वाले सभी जीव उक्त गति को अवश्य पा सकें एसा एकान्त नियम नहीं है किन्तु वे जीव उनसे आगे न जासके यह एकान्त नियम है। यह उत्कृष्ट उपपात की बात है जो सबको मंजूर है। इस सिध्धांत से तो वज्र ऋषभनाराच संहनन वाली स्त्री सातवे नरक में जावे या न जावे किन्तु मोक्ष में जा सकती है, इसमें कीसी भी प्रकार से शंका का स्थान नहीं है।

मगर आपने गति समानता का जो नक्सा खींचा है वह तो कीसी की सनक मात्र है। ऐसा नियम ही नहीं है और हो भी नहीं सकता है। क्यों! कि—कोई नरक में जा सकते हैं, मोक्ष में जा सकते ही नहीं. कोई मोक्ष में जा सकते हैं नरक में जाते ही नहीं है, और कोई २ नीचे में विभिन्न नरकों में जा सकते हैं किन्तु ऊपर तो नियत स्वर्ग में ही जा सकते हैं

इस प्रकार जीव विशेषता या कर्म वैचित्र्य के कारण ऊर्ध्वगति

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अधोगति में शक्ति भेद पाया जाता है। देखिए—

१-तीर्थंकर भगवान् मोक्ष में ही जाते हैं नरक में जाते ही नहीं हैं तीर्थंकर के जीवन में कोई ऐसा कर्म बन्ध होता ही नहीं है कि वे नरक जांय।

२-अभवि मनुष्य सातवें नरक में जाता है मोक्ष में कतई नहीं जाता है यह कहना चाहिये वह मोक्ष पाने में असमर्थ है।

३—वासुदेव प्रतिवासुदेव नरक में ही जासकते हैं, मोक्ष में नहीं। देवलोक में भी नहीं। यहां गति की साम्यता नहीं रहती है।

४—युगालिक स्वर्ग में ही जाते हैं नरक में नहीं, फिर भी गति साम्यता कैसे मानी जाय?

५-भूज परिसर्प, पक्षी, चतुष्पद, और उर परिसर्प, नीचे तो क्रमशः दूसरे, तीसरे, चौथे और पाँचवें नरक तक में जाते हैं। मगर ऊपर सिर्फ सहस्रार देवलोक तक ही जाते हैं। यहाँ तो गति साम्यता की कल्पना का फुरचे फुर्चा हो जाता है।

६-मत्स्य सातवें नरक में जा सकता है। मोक्ष में नहीं। यदि गति कार्य में साम्यता होती तो मत्स्य मोक्ष में भी चला जाता। मगर वह बेचारा ऊँचा अहमेन्द्र पद पाने में भी असमर्थ है।

७-स्त्री मोक्ष में जा सकती है सातवीं नरक में नहीं।

आगति के नियम में भी वैसी ही विचित्रता पाई जाती है, जैसा कि—

नारकी से आकर मनुष्य बना हुआ जीव तीर्थंकर बन सके, मोक्षमें जाय, नरक में भी जाय, किन्तु वासुदेव बलदेव या चक्रवर्ती न हो सके। यह आगति की विचित्रता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(मूलाचार, परिच्छेद १२, गाथा १३०)

वैमानिक जीव वहां से च्यवन पाकर शलाका पुरुष बन सकता है मगर अनुत्तर विमान से आया हुआ जीव सीर्फ वासुदेव हो सकता नहीं है। आगतिकी कैसी विचित्र घटना है ?

(मूलाचार परिच्छेद १२, गाथा १२६, १३८ से १४१)

इस प्रकार गति की असाम्यता के अनेक दृष्टांत शास्त्रो में अंकित हैं, वास्तव में गतिप्राप्ति की समानता नहीं मानी जाती है।

अतएव स्त्री सातवें नरक पाने में असमर्थ होने पर भी मोक्षको पा सकती है।

दिगम्बर—वासुदेव और प्रति वासुदेव शुद्ध अध्यवसाय के न होने के कारण मोक्ष पाने में असमर्थ हैं, भोगभूमि के युगलिक अशुद्ध अध्यवसाय के अभाव से नरक पाने में असमर्थ हैं, और मत्स्य शक्तिवान होने पर भी गति और शरीरादि भेद के कारण शुद्ध अध्यवसाय की अंतिम सीमा को नहीं पहुँच सकता है अतः मोक्ष पाने में असमर्थ है, किन्तु स्त्री मोक्ष पाने में समर्थ है तो सातवीं नरक पाने में असमर्थ क्यों है ?

जैन—जैसे वासुदेव आदि में शुद्ध अध्यवसाय का अभाव है, युगलिक में अशुद्ध अध्यवसाय का अभाव है, मत्स्य में मोक्ष के योग्य शुद्ध अध्यवसाय का अभाव है वैसे ही अबला में स्त्री शरीर और मातृत्व होने के कारण सातवें नरक के योग्य अशुद्ध अध्यवसाय का अभाव है। वह चाहे जितनी क्रूर बनें, मगर पुरुष की समता नहीं कर सकती है। वासुदेव मत्स्य वगैरह अशुद्ध अध्यवसाय की आखिरी सीमा तक पहुँच जाते है। अतः वे सातवें नरक तक जाते हैं, किन्तु शुद्ध अध्यवसाय की सीमा तक नही जासकते हैं यानी मोक्ष में नहीं जा सकते हैं। वैसे ही स्त्री शुद्ध अध्यवसाय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

की अंतिम दशा तक पहुँचती है। और मोक्ष को पाती है। किन्तु अशुद्ध अध्यवसाय की अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचती है इसलिये सातवीं नारकी में नहीं जा सकती है। यह सप्रमाण बात है कि किसी में उर्ध्वगति की सामर्थ्य विशेष है किसी में अधोगति की। अथवा यों भी कहा जाय कि किसी में बंध की सामर्थ्य विशेष है है किसी में निर्जरा की, तो भी ठीक है। स्त्रीका शरीर उत्कृष्ट आयु बंध के अभाव का उर्ध्व गति के, अधिक सामर्थ्य का, या उत्कृष्ट निर्जरा शक्ति का नमूना है। स्त्री की अशुद्ध भावना अन्तिम सीमा तक नहीं पहुँचती है।

परमाधामी पुरुष ही होता है स्त्री नहीं होती है, यह समस्या भी स्त्री जाति में आन्तरिक क्रूरता न होने का प्रबल प्रमाण रूप है।

दिगम्बर—स्त्री में शुद्ध भावना की विशेषता है और अशुद्ध भावना की अल्पता या मर्यादा है, इस के लिये प्रमाण क्या है?

जैन—आज कल का विज्ञान भी उक्त बात को ही पुष्ट करता है। पाश्चात्य विद्वान मानते हैं कि स्त्री नम्र होती है। मातृत्व भावना से ओत प्रोत रहती है। वह सर्वत्र अशान्ति के बजाय शान्ति को ही अधिक पसंद करती है। इस विषय में जनवरी सन् १९३८ ई० के "मोडर्न रीव्यु" में भिन्न २ विद्वानों के मत प्रकाशित हुए हैं (पृ० २७) जिनका सार निम्न प्रकार है।

स्त्री की हर एक अंगोपांग पुरुष की अपेक्षा भिन्न बनावट का है × × इसलिये स्त्रियों के शरीर में मधुरता व नम्रता अधिक पाई जाती है।

शारीरिक कमी होने पर भी स्त्रियों में वीरता व साहस पाया जाता है। जब संकट आता है तब स्त्री दृढ़ रहती है शत्रुओं से

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अपने बच्चों की रक्षा करती है । और अपनी इज्जत बचाती है। यह वीरता मानसिक है, और शारीरिक बल से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

बौद्धिक क्षेत्र में स्त्री का दरजा पुरुष से नीचा है यह जाँच व अनुभव से सिद्ध है कि कुछ काम स्त्रियाँ अच्छा कर सकती है जब कि कुछ काम पुरुष अच्छा कर सकते हैं।

स्त्री का मन पुरुष की अपेक्षा भिन्न प्रकार का है हेतु यही है कि उनको माता पने का भारी काम करना पड़ता है। वे शान्ति से सहन कर सकती हैं, बलि कर सकती हैं जिन बातों की पुरुष में अयोग्यता है। माता के समान कोमल मन रखने वाली स्त्री पुरुष के व्यवसायों में बराबरी नही कर सकती है।

(प्रो॰ कृष्ण प्रसन्न मूरूका, सॅगबिक साहब वगैरह)

स्त्रियों को शान्ति स्थापना की बहुत आवश्यकता विदित होती है।

स्त्रियाँ जिस प्रकार घर का प्रबन्ध बड़ी विज्ञता और अच्छाई के साथ कर लेती हैं वे उसी भाँति जगत में शान्ति को भी स्थापित कर सकती हैं। शान्ति स्थापक मंडली में बड़ी २ स्त्रियां मेम्बर हैं। लंडन की मिस व्हाईट ने एक पुस्तक लिखी है (Wanen in warld Histary) इसमें दुनियाँ की स्त्रियों ने क्या २ वीरता पूर्ण काम किये हैं, उनका कथन है।

(मोडर्न रिव्यु पृ० ७९ केदारनाथ गुप्त का लेख)

दिगम्बर ब्रह्मचारी श्रीयुत शीतलप्रसादजी ने मोडर्नरिव्यु के उक्त लेख का सार दिया है और लिखा है—

"इस लेख का सार यह है कि स्त्रियों का शरीर, मन व उनकी बुद्धि औसत दरजे पुरुष के बराबर नहीं है इसलिये उनको कोमल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काम करने चाहिये"।

(जैन मित्र, व० ३६ अं० २३ पृ० ३६० ता० १४-४-३८)

इन वैज्ञानिक प्रमाणों से निर्विवाद है कि स्त्री शान्ति की इच्छुका है, नम्र, वीर, साहसिक, सहनशील और कोमल होती है। उससे कठोर काम होना मुश्किल है। माने—स्त्री साहस, नम्रता, वीरता इत्यादि गुणों से कर्म की निर्भरा करने वाली और मोक्ष की अधिकारिणी है। पुरुष के योग्य कठोर काम करने में असमर्थ होने से सातवें नरक में नहीं जाती है।

इसके अलावा वर्तमान में भी पुरुषों की अपेक्षा स्त्री जाति में अधिक सहृदयता होने के अनेक प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते हैं जैसे—खून, कतल, चोरी, बलात्कार, लूट और दगाबाजी इत्यादि अधम कार्यों में फीसदी पुरुष और स्त्रियों की औसत कितनी २ है? इसका खुलासा अदालती दफ्तरों से मिल सकता है। साधारण तया ऐसे क्रूर कार्यों में मरदों की संख्या ही अधिक मिलेगी।

जब देवदर्शन, सामायिक, तपस्या इत्यादि कार्यों में तो स्त्रियों की संख्या पुरुषों से कई गुनी बढ़ जाती है।

एक महर्षि ने ठीक ही कहा है

सप्तम्यां भुवि नो गतिः परिणतिः प्रायो न शास्त्राहवे।
नो विष्णु प्रतिविष्णु पातककथा यस्या न देशव्यथा॥
शीलात् पुण्यतनो जनो मृदुतनोः नस्या प्रशस्याशयः
कः सिद्धिं प्रतिपद्यते न निपुणः तत्कर्मणां लाघवात्॥ २॥
अर्हत्जन्म महे महेन्द्र महिता लोकंपृणै र्या गुणैः॥ ३॥

इस प्रकार भिन्न २ प्रमाणों की उपस्थिति में मानना पड़ता है कि स्त्री सातवें नरक में न जाय, किन्तु मोक्ष में जाय, यह होना सर्वथा स्वाभाविक है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माने—स्त्री मोक्ष में जाय, इस सिध्धांत में तनिक भी शंका नहीं है।

दिगम्बर—असल में तो स्त्री जिनेश्वर देव की अभिषेक आदि पूजा भी नहीं कर सकती है।

जैन—अनेकान्त दर्शन ऐसा संकुचित नहीं है कि जिसमें ईश्वर की पूजा के लिये भी पुरुष ही ठेकेदार हो।

भूलना नहीं चाहिये कि तीर्थंकर भगवान अवेदी हैं वीतराग हैं पतित पावन हैं मरद और जनाना उनके पुत्र पुत्री हैं इनके स्पर्श से उनको किसी भी प्रकार का वेदोदय नहीं होता है, अतः पुरुष और स्त्री तीर्थंकरदेव की सब तरह की पूजा कर सकते है करते हैं। तीर्थंकर की प्रतिमा लाखों के मन्दिर या रथ में बैठाने से सराग प्रतिमा नहीं मानी जाती है एवं स्त्री के स्पर्श से भी सराग नहीं मानी जाती है।

दिगम्बर शास्त्र भी स्त्री के लिये जिन पूजा बताते हैं। जैसा कि—

पूर्वमष्टान्हिकं भक्त्या, देव्यः कृत्वा महामहम्।
प्रारब्धा जिनपूजार्थं, विशुद्धेन्द्रियगोचराः ॥ १४० ॥
चारुभिः पंचवर्णैश्च, ध्वजमाल्यानुलेपनैः।
दीपैश्च बलिभिश्चूर्णैः पूजां चक्रुर्मुदान्विताः ॥ १४१ ॥

(आ० जटासिंह नन्दि कृत वरांग चरित अ० १५ पृ० १४०)

उपोपविष्टा प्रभुनैव सार्द्धं।

(वरांग चरित्र स० २२ श्लो० ७१, पृ० २२७)

कियत् काले गते कन्या, आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्यां महता चक्रुः मनोवाक्काय शुद्धितः ॥ ५६ ॥
तीन शूद्र कन्याओं ने पूजा की (गौतम चरि० आदि)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

बध्यते मुकुटं मूर्ध्नि, रचितं कुसुमोत्करैः ।
कंठे श्रीवृषभेशस्य, पुष्पमाला च धार्यते ॥

कन्याने श्रा० शु० ७ के दिन ऋषभदेव भगवान को मुकुट और पुष्प माला पहिनाई ।

(कथा कोश मुकुट सप्तमी कथा, चर्चासागर पृ० २१०, २५६)

कन्या मुकुट चढ़ाते समय भावना भाती है कि "हे जिनवर आप मुक्ति स्त्री के वर हो इसलिये आपके लिये यह मुकुट और माला पहिनाये जाते हैं ।

(मुकुट सप्तमी कथा पं० परमेष्ठीदास की चर्चासागर समीक्षा, पृ० १८१)

दिगम्बर—जब दिगम्बर समाज स्त्री दीक्षा का ही निषेध करती है तो फिर स्त्री को मोक्ष कैसे मिल सकती है ।

जैन—दिगम्बराचार्य भी पाँचवें छटे और सातवें गुणस्थान की उदय विच्छेद प्रकृतिओं में स्त्री का निषेध नहीं करते हैं फिर कैसे माना जाय कि स्त्री को मुनि दीक्षा नहीं है ।

देसे तादिय कसाया, तिरिया उज्जोय णीच तिरिय गदी ।
छट्ठे आहारदुगं, थीणतिगं उदय वोच्छिण्णा ॥ २६७ ॥

(गोम्मटसार कर्म० गा० २६७)

पाँचवें गुणस्थान में प्रत्याख्यानी ४ कषाय, तिर्यन्च आयु, उद्योत, नीचगोत्र व तिर्यंचगति का, और छटे गुणस्थान में आहारक शरीरद्विक व निन्द्रा ३ का उदय व्युच्छेद होना है ॥२६७॥

सातवें गुणस्थान में सम्यक्त्व प्रकृति व अन्तिम ३ संहनन का उदयव्युच्छेद होता है॥२६७॥ इससे साफ प्रकट है कि इन गुणस्थानों में स्त्री वेद या स्त्री जाति का निषेध नहीं है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतः जो मुनि दीक्षा ले सकती है। उसके "स्त्री वेद मोहनीय कर्म" का उदयविच्छेद नव में गुणस्थान में हो जाता है।

यदि नग्नता का ही आग्रह हो तो स्त्री के लिये नग्न रहना भी कोई मुश्किल बात नहीं है। देखो ? स्त्री पति आदि के निमित्त सर्वस्व बलि कर देती हैं, भाँति २ के कष्ट सहती है, जिन्दा ही अग्नि में प्रवेश कर सती होती है, जौहर करती हैं तो वह धर्म के लिये कष्ट सहें तपस्या करें और नग्न बन कर रहें उसमें कौन सी असम्भव बात है ? अत एव दिगम्बर शास्त्र भी स्त्री दीक्षा की हिदायत करते हैं।

खुद तीर्थंकर भगवान ही चारों संघों में श्रमणी (आर्जिका)का पवित्र स्थान रखकर स्त्रीदीक्षा फरमाते हैं। जहां आर्जिका का अभाव है वहां सम्पूर्ण जैन संघ ही नहीं है, इस हालत में स्त्रीदीक्षा भी अनिवार्य हो जाती है।

दिगम्बर—इसमें तो जरा सी शंका नहीं है कि स्त्रीदीक्षा सिद्ध है तो स्त्री मुक्ति भी सिद्ध है। ऊपर का अनुसन्धान स्त्री दीक्षा के पक्ष में है किन्तु इस विषय में दिगम्बर शास्त्रों में साफ २ उल्लेख क्या है ! वह स्पष्ट कर देना चाहिये।

जैन—दि० शास्त्र स्त्रीदीक्षा और स्त्रीमुक्ति को स्वीकार करते हैं। कतिपय प्रमाण निम्न प्रकार है :—

दिगम्बर प्रथमानुयोग शास्त्रों के प्रमाण—

१–मन्त्रीश्वरामात्य पुरोहितानां पुरप्रधानर्द्धिमतां गृहिण्यः।
नृपाङ्गनाभिः सुगति प्रियाभिः, दिदीक्षिरे ताभिरमा तरुण्यः
(जटाचार्य कृत वरांग चरित स० ३० श्लो० ६५ स० ३१ श्लो ११३)

२–भरतस्यानुजा ब्राह्मी, दीक्षित्वा गुर्वनुग्रहात्।
गणिनीपद मार्यार्णां, सा भेजे पूजितामरैः॥ १७५॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रराज राजकन्या सा, राजहंसीव सुस्वना ।
दीक्षा शरन्नदी शील-पुलिन स्थल शायिनी ॥ १७६ ॥
सुंदरी चात्त निर्वेदा, तां ब्राह्मी मन्वदीक्षत ।
अन्ये चान्याश्च संविग्ना, गुरो प्राव्राजिषु स्तदा ॥ १७७ ॥

(आ० जिनसेन कृत आदि पुराण पर्व २४)

शमिता चक्रवर्तीष्ट-कांतयाऽऽशु सुभद्रया ।
ब्राह्मी समीपे प्रव्रज्य, भाविसिद्धिश्चिरं तपः ॥ २८८ ॥
कृत्वा विमाने सानुत्तरे, ऽभूत्कल्पे ऽच्युते ऽमरः ॥

(—आदि पुराण पर्व—४७)

३-जिनदत्तार्यिकाभ्यर्णे, श्रेष्ठीभार्या च दीक्षिता ॥ २०६ ॥

(आ० गुण भद्र कृत उत्तर पुराण पर्व ७१, देव की पुत्र पूर्वभव)

तथा सीता महादेवी पृथिवी सुन्दरी युताः
देव्यः श्रुतवती क्षांति-निकट तपसि स्थिताः ॥ ७१२ ॥
सीताजी अच्युत देवलोक में गई । ७१६ ।

(उत्तर पुराण पर्व ६८ सीताधिकार)

भ० महावीर स्वामी के साधु आर्यिका श्रावक और श्राविका की संख्या का वर्णन है । इनमें एलक क्षुल्लक का नाम निशान नहीं है ।

(महावीर संघ) (उत्तर पुराण प० ७४ श्लो० ३७१, ३७९)

चंदना साध्वी (उत्त० प० ७४ श्लो० ३७६)
सुव्रतागणिनी, गुणवती आर्या (उत्त० ७६ श्लो० १६५, १६७)
पांचवे आरा की अन्तिम आर्यिका सर्व श्री ।

(उत्त० पर्व ७६ श्लो० ४३२)

ये सब आर्याएँ पांच महाव्रत धारिणी थीं, छठे, सातवें गुण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्थान की अधिकारिणी थी, श्रावक (ब्रह्म० एलक क्षुल्लक आदि) और श्राविका को पाँचवाँ गुण स्थान होता है।

४—राजीमती की दीक्षा (पर्व० ५६ श्लो० १२० से १३४) द्रौपदी दीक्षा प्रयाण (प० ६३ श्लो० ७८) धन श्री मित्र श्री की दीक्षा (प० ६४ श्लो० १३) कुन्ती द्रोपदी सुभद्रा आदि की दीक्षा (प० ६४ श्लो० १४४) जय कुमार मुनि १२ अंगपढ़ा, और सुलोचना आर्या ११ अंग पढ़ी (पर्व १२ श्लो० ५२)

तीर्थंकर की आर्यिका की संख्या (प० ६० श्लो० ५१-७८)

(आ० द्वि० जिनसेन कृत हरिवंश पुराण)

५—सम्यक् दर्शन संशुद्धाः, शुद्धैक वसना वृताः ।
सहस्रशो दधुः शुद्धाः नार्य स्तत्रार्यिका व्रतम् ॥ १३३ ॥

अशुद्धवंश की उपजी सम्यक् दर्शनकार शुद्ध कहिजे। निर्मल अर शुद्ध कहिए श्वेत वस्त्र की धरनहारी हजारों रानी अर्यका भई।

(जिनवाणी कार्यालय-कलकत्ता से मुद्रित पं० दौलतराम जैपुर निवासी कृत हरिवंश पुराण स० २, श्लो० १३३ की वचनिका, पृ० २३-२८)

६-वसुदेव की पत्नी प्रियंगुसुन्दरी ने जिनदीक्षा ली थी। ७-अनंग सेना नाम की वेश्या ने वेश्यावृत्ति को छोड़कर जिनदीक्षा ली और स्वर्ग को गई। ८-ज्येष्ठा आर्यिका ९-शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भु ने व्यभिचार किया, बाद में वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकांता आर्जिका के पास दीक्षा लेकर स्वर्ग गई।

दिगम्बरीय द्रव्यानुयोग शास्त्रों के प्रमाण-

१—दिगम्बरों के नन्दीगण पुन्नागवृक्ष और मूलसंघ के अनुयायी यापनीय संघवाले "यथायापनीयतंत्र" डंके की चोट

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जाहिर करते है कि—

"णो खलु इत्थी अजीवो, ण या वि अभव्वा, ण या वि दंसण विरोहिणी, णो अमाणुसा, णो अणारियउप्पत्ति, णो असंखेज्जाउआ, णो अइ कूरमइ, णो ण उवसंतमोहा, णो ण शुद्धाचारा, णो असुद्धबोही, णो ववसायवज्जिया, णो अपुव्वकरण विरोहिणी; णो णवगुणठाण रहिया, णो अजोगा लद्धीए, णो अकल्लाण भायणं त्ति, कहं ण उत्तमधम्म सहिगात्ति" ।

(सुरतवाली ललित विस्तरा० पृ० १०६)

स्त्री जीव है. भव्य है सम्यक्त्व युक्त है, मनुष्य है, आर्योत्पन्न है. संख्याते वर्ष की आयु वाली है, अक्रूर बुद्धि वाली है, उपशान्त मोहनीय है. शुद्धाचारिणी है, शुद्ध बोधि है. व्यवसाय युक्त है, अपूर्वकरण साधिका है। नवम गुणस्थान सहित है, लब्धियोग्य है, कल्याण के पात्र रूप है. फिर भी वो उत्तम धर्म की साधिका नहि है. यह कैसे माना जाय?

२—दिगम्बराचार्य शकटायन फरमाते हैं कि—

मायादिः पुरुषाणामपि, द्वेषादि प्रसिद्ध भावश्च ।
षएणां संस्थानानां, तुल्यो वर्ण त्रयस्यापि ॥ २८ ॥
"स्त्री" नाम मन्दसत्वा, उत्संग समग्रता न तेनात्र ।
तत्कथ मनल्प वृत्तयः, सन्ति हि शीलाम्बुधेर्वेलाः ॥ २६ ॥
संत्यज्य राज्य लक्ष्मी-पति पुत्र भ्रातृ बन्धु सम्बन्धम् ।
परिव्राज्य वहायाः कि मसत्वं सत्यभामादेः ? ॥ ३२ ॥
अन्तः कोटी कोटी स्थितिकानि, भवन्ति सर्वकर्माणि ।
सम्यक्त्व लाभ एवा, ऽशेषो प्यक्षयकरो मार्गः ॥ ३४ ॥
अष्टशत मेक समये, पुरुषाणा मादिरागमः॥ ३५ ॥
क्षपक श्रेण्यारोहे, वेदेनोच्येत भूतपर्वेण ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्त्रीति नितरामभि मुख्येर्थे युज्यते नेतराम् ॥ ४० ॥
मनुषीषु मनुष्येषु, चतुर्दशगुणोक्ति रार्यिकासिद्धौ ।
भावस्त वो परित्यज्य ०००० नवस्यो नियत उपचारः ॥४१॥
विगतानुवाद नीतौ, सुरकोपादिषु चतुर्दश गुणाः स्युः ।
नव मार्गणान्तर इति, प्रोक्तं वेदे ऽन्यथा नीतिः ॥ ४५ ॥
न च बाधकं विमुक्तेः, स्त्रीणामनु शासनं प्रवचनं च ।
संभवति च मुख्येर्थे, न गौण इत्यार्यिका सिद्धिः ॥ ४६ ॥

सारांश-पुरुष और स्त्री दोनों में माया आदि, द्वेष आदि, छै संस्थान वगैरह समान रूप से हैं। स्त्री राज्य लक्ष्मी पति, पुत्र, भाई बन्धु वगैरह को छोड़कर दीक्षा लेवे फिर भी उसे असत्व क्यों माना जाय?

एक समय में १०८ पुरुष मोक्ष में जाय, उसके अनुसन्धान में भी स्त्री मोक्ष सिद्ध है। क्षपक श्रेणी में "अवेदि" बनने के बाद भी वो पूर्वकाल की अपेक्षा से स्त्री मानी जाती है। मनुष्य और मनुषिणी दोनों १४ वे गुण स्थान में जाते हैं तब तो आर्यिका-मोक्ष स्वयं सिद्ध है।

नव मार्गणाद्वार में पुरुष व स्त्री के लिये एकता है सिर्फ वेद में पुरुष और स्त्री को भेद है। स्त्री मुक्ति का बाधक कोई प्रमाण नहीं मिलता है, स्त्री मुक्ति की आज्ञा व प्रवचन मिलते हैं।

(स्त्री मुक्ति प्रकरण)

३—दिगम्बर भट्टारक देवसेन लिखते हैं कि—

आ० जिनसेन के गुरुभ्राता विनयसेन के शिष्य कुमारसेन ने सं० ७५३ में काष्ठासंघ चलाया, और स्त्री दीक्षा की स्थापना की (दर्शन सार गा०) इतिहास कहता है कि श्वेताम्बर दिगम्बर के भेद होने के बाद दिगम्बर समाज में स्त्री दीक्षा को स्थगित कर दिया था, तीन संघ का ही शासन चल रहा था। अतः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मुमकिन है कि आ० कुमारसेन ने दिगम्बर आर्यिकासंघ चलाया।

४—आ० पूज्यपाद स्पष्ट करते हैं कि—

येनात्मना नुभूया हमात्म नैवात्मनात्मनि।
सोहं न तन्न सा नासौ, नैको न द्वौ न वा बहु ॥ २३ ॥

आत्मा आत्म भाव को पाता है तब उसे ज्ञान होता है कि मैं न पुरुष हूँ. न नपुंसक हूँ और न स्त्री हूँ। अर्थात् आत्मा आत्मा ही है, और मोक्ष में वही जाता है। पुरुष स्त्री, नपुंसक शरीर मोक्ष में नहीं जाते हैं।

त्यक्त्वैव बहिरात्मानम् ॥ २७ ॥

मैं पुरुष हूं, इत्यादि बहिरात्म भाव को छोड़ो।

यो न वेत्ति परं देहात् ॥ ३३ ॥

दृष्यमानामिदं मूढः, त्रिलिङ्ग मव बुध्यते ॥ ४४ ॥

बेचारा कम अक्ल आदमी मैं पुरुष हूं, मैं नपुंसक हूं, तू स्त्री है, ऐसा मानता है, जब कि मोक्षगामी आत्मा इन लिंगों से रहित है। उसके तो लिंग ज्ञानादि हैं।

शरीरे वाचि चात्मानं० ॥ ५४ ॥

शरीर को आत्मा मानना, यह अज्ञानता है। अतः पुरुष मोक्ष जाय, स्त्री नहीं, इत्यादि कहना भी अज्ञानता है।

जीर्णे स्वदेहे प्यात्मानं, न जीर्णं मन्यते बुधः ॥ ६४ ॥

इसके अनुकरण में ऐसा श्लोक भी बन सकता है।

स्त्रियो देहे तथात्मानं, न स्त्रियं मन्यते बुधः।

स्त्री का शरीर होने से आत्मा स्त्री नहीं बनती है।

लिङ्गं देहाश्रितं दृष्टं, देह एवात्मनो भवः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

न मुच्यन्ते भवात्तस्मात् ते ये लिङ्गकृताग्रहाः ॥ ८७ ॥

पुरुष या नग्न ही मोक्ष में जाते हैं इत्यादि लिंग के आग्रह से संसार बढ़ता है।

जाति लिंग विकल्पेन, येषां च समयाग्रहः ।
ते न आप्नुवन्त्येव, परमं पदमात्मनः ॥ ८९ ॥

मैं ब्राह्मण हूं मैं पुरुष हूं या नग्न हूं ऐसा आग्रह मोक्ष बाधक है।

५–आ० नेमिचन्द्रसूरि "स्त्री मोक्ष" का क्रम बताते हैं

(गोम्मटसार)

आहारं तु पमत्ते, तित्थं केवलिणि, मिस्सयं मिस्से ।

प्रमत्त गुण स्थान में आहारकाद्विक होता है।

(गोम्मट सार कर्मकाण्ड गा० २६१)

अपमत्ते सम्मत्तं, अन्तिम तिय संहदीय ऽपुव्वाम्मि ।
छच्चेव णोकसाया, अणिट्टिय भाग भागेसु ॥ २६८ ॥
वेदातिय कोह माणं, माया संजलण मेव ॥ २६९ ॥

अर्थ ७ अप्रमत्त गुण स्थान में सम्यक्त्व प्रकृति और अंत के तीन संहनन का, ८ अपूर्व गुणस्थान में हास्यादि छै कषायों का तथा ९ अनिवृत्ति गुण स्थान में तिन वेद और तीन कषायों का उदय विच्छेद होता है।

(गोम्मटसार कर्मकांड गा० २६८–२६९)

माने–पुरुष स्त्री और नपुंसक ये तीनों ९ वें गुणस्थान को पाते हैं तब उनके वेदों का उदय विच्छेद है। बाद के गुण स्थान में उनको अपने २ वेद कषाय का उदय नहीं होना है उनको नाम कर्म का उदय विद्यमान होने के कारण शरीर की रचना मात्र रहती है और वे अवेदी माने जाते हैं।

पज्जते वि इत्थी वेदाऽपज्जति परिहीणो ॥ ३०० ॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मगर भूलना नहीं चाहिये कि नवम गुणस्थान के पहिले या बाद में पर्याप्त पुरुष को स्त्रीवेद और अपर्याप्तपन का उदय कभी भी नहीं होता है।

यह भी ख्याल में रखना चाहिये कि पर्याप्त स्त्री को भी पुरुषवेद, नपुंसक वेद और आहार द्विक का उदय कभी नहीं होता है।

(कर्म गा० २००—२०१)

और नवम गुण स्थान में वेद का उदय विच्छेद होने के पश्चात वे अवेदि होते हैं।

पुरुष, स्त्री और नपुंसक ये तीनों क्षपक श्रेणी करते हैं। तेरहवें गुण स्थान में पहुँचते हैं किन्तु स्त्री और नपुंसक तीर्थंकर नहीं बनते हैं क्योंकि उन दोनों में तीर्थंकर नाम की प्रकृति सत्ता से ही नहीं होती है।

(गोम्मट सार कर्मकांड गा० ३५४)

थी पुरुसोदय चडिदे, पुव्वं संढं खवेदि थीअत्थी ।
संढस्सुदये पुव्वं, थी खविदं संढ मत्थित्ति ॥ ३८८ ॥

क्षपक श्रेणी में चढ़ते समय पुरुष नपुंसकवेद का स्त्री नपुंसक वेद का और नपुंसक स्त्रीवेद का प्रथम खात्मा करते हैं। (कर्म० गा० ३८८)

वेदे मेहुण संण्णा ॥ ६ ॥

वेद है, वहां तक "मैथुन संज्ञा" है।

(गोम्मटसार जीवकाण्ड गा० ६)

थावर काय प्पहुदी संढो, सेसा असण्णी आदी य ।
अणिय ट्टियस्स य पढमो, भागोत्ति जिणेहिं णिदिट्ठं ६८४

नपुंसकवेद स्थावरकाय मिथ्यादृष्टिमें अनिवृत्ति के प्रथम भाग तक होता है और शेष दोनों वेद असंज्ञी पंचेन्द्रिय से अनि-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वृत्तिकरण के प्रथम भाग तक होते हैं।

(गोम्म० जीवकांड गा० ६८४)

अनिवृत्ति गुण स्थान में मैथुन विच्छेद होता है

(गोम्म० जीव० गा० ७०१)

मणुसिणि पमत्त विरदे, आहार दुगं तु णत्थि णियमेण।
अवगद वेदे मणुसिणि, सण्णा भूद गदिमाऽऽसेज्ज ॥ ७१४ ॥

मनुषिणी जब प्रमत्त गुण स्थान में होती है तब उसे आहार द्विक तो कतई होता ही नहीं है। और नवम गुण स्थान के ऊपर अवेदी हो जाती है तब भी वो भूतगति न्याय से "मनुषिणी" संज्ञा वाली रहती है।

(गोम्मट सार, जीवकाण्ड गा० ७१४)

वेद से आहार तक की १० मार्गणा वाले ऊपर के गुणस्थान को प्राप्त करते हैं मगर विशेषता इतनी है कि नपुंसक और स्त्री छठे गुण स्थान में आहारद्विक को नहीं पाते हैं।

(गोम्मटसार जीव० गा० ७२३)

गोम्मटसार के कथन का सारांश यह है कि पुरुष स्त्री और नपुंसक ये सब क्षपकश्रेणी द्वारा मोक्ष में जाते हैं, किन्तु फरक इतना ही है कि स्त्री और नपुंसक को आहारक द्विक नहीं होता है स्वस्ववेदकषाय का क्षय पुंवेद के क्षय के पूर्व ही हो जाता है, स्त्री और नपुंसक की संज्ञा अवेदी दशा में भी उन्हें दी जाती है और तीर्थंकर पद नहीं होता है।

६—आ० कुन्द कुन्दजी ने "बोध प्राभृत" गा० ३३ में "वेए" बताया है। उसकी "श्रुतसागरी" टीका में लिखा है कि

वेए- स्त्री; पु० नपुंसक वेदत्रय मध्ये ऽर्हतः कोपि वेदो नास्ति

अरिहंत वेदरहित है (पृ० १०१) माने स्त्री पुरुष और नपुंसक ये तीनों ६ वें गुण स्थान के बाद अवेदी कहे जाते हैं और अवेदी ही मोक्ष के अधिकारी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

७—ब्र० शीतलप्रसादजी ने मोक्ष मार्ग प्रकाशक भा० २ अ० ४ मोहनीयकर्म के सत्तास्थान में क्रमशः षंढ या स्त्री वेद के क्षय से १२ की, षंढ या स्त्री वेद में से शेष १ के क्षय से ११ की, हास्यादि ६ नौ कषाय के क्षय से ५ की, और पुंवेद के क्षय से ४ की सत्ता लिखी है। माने स्त्री को क्रमशः नपुंसकवेद स्त्रीवेद और पुंवेद का क्षय होता है (पृ० १७७-१७६)

८—पं० आशाधरजी सागार धर्मामृत के अ० ८ में स्पष्ट करते हैं कि—

यदौत्सर्गिक मन्यद्वा, लिङ्ग मुक्तं जिनैः स्त्रियाः
पुंवत्त दिष्यते मृत्यु काले स्वल्प कृतोपधेः। ८। ३६

माने-स्त्री भी जिनोपदिष्ट मुनिलिंग-दीक्षा की अधिकारिणी है। इत्यादि।

दिगम्बर चरणकरणानुयोग शास्त्रों के प्रमाण-

१-अज्जा गमण काले, ण अत्थि दव्वं तधेव एक्केण।
ताहिं पुण संल्लावो, ण य कायव्वो अकज्जेण॥ १७७
तासिं पुण पुच्छाओ, इक्किस्से णय कहिज्ज एक्कोदु।
गणिणी पुरओ किच्चा, जदि पुच्छइ तो कहे दव्वं १७८

साधु और अर्जिकाओं को आपस २ में उक्त प्रकार से वर्ताव करना चाहिये।

(आ० वट्टेरक कृत मूलाचार अ० ४ श्लोक १७७-१७८)

२-दिणपडिम वीरचरिया तियाल जोगे णियमेण।
सिद्धांत रहस्सा धयणं, अहियारो णत्थी देस विरियाणं

(आ० वसुनन्दी सिद्धान्त चक्रवर्ती कृत श्रावकाचार)

वीरचर्या च सूर्यप्रतिमा, त्रिकाल योग धारणं नियमश्च।
सिद्धान्त रहस्यादि ष्वध्ययनं, नास्ति देश विरतानाम् ॥

(श्रावकाचार श० २४९ पृ० ५००)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्रावको वरिचर्याहः-प्रतिमा तापनादिषु ।
स्यान्नाधिकारी सिद्धांत-रहस्याध्ययने पि वा ॥

(धर्मामृत-श्रावकाचार)

त्रिकालयोग नियमो, वीरचर्या च सर्वथा ।
सिद्धांताध्ययनं सूर्य-प्रतिमा नास्ति तस्य वै ॥

(धर्मोपदेश पीयुष वर्षा कर श्रावकाचोर)

इन पाठों में श्रावक और श्राविका के लिये सिद्धात वाचना का निषेध किया गया है, अतः मुनि और आर्जिका ही सिद्धांत वाचना के अधिकारी हैं। माने दोनों जिनदीक्षा वाले हैं पांच महाव्रत के धारक हैं सर्वविरति हैं छट्ठे गुणस्थान के अधिकारी हैं अत एव आगम के भी अधिकारी हैं। श्रावक वैसे न होने के कारण सिद्धान्त पाठ के अधिकारी नहीं है।

दिगम्बर हरिवंश पुराण में दृष्टान्त भी है कि जिनदीक्षा लेने के पश्चात् जय कुमार ने १२ अंगों का और सुलोचना आर्जिका ने ११ अंगों का अध्ययन किया (१२-५२)।

३-सह समणाणं भणियं, समणीणं तहय होइ मल हरणं ।
वज्जिय तियालजोगं, दिणपडिमं छेदमालं च ॥ १ ॥

(दिगम्बर चर्चा सागर चर्चा १८६)

माने श्रमण और श्रमणिओं की प्रायश्चित्तविधि एक सी है। फर्क सिर्फ इतना ही है कि श्रमणी के लिये त्रिकाल जोग, सूर्य प्रतिमा योग और छेदमाल का निषेध है।

४-महत्तराप्यार्यिकाभ वंदते भक्तिभाविता ।
अद्य दीक्षितमप्याशुव्रतिनं शान्तमानसं ॥

(नीति सार)

साधु और आर्जिका दोनों दीक्षा वाले हैं, इस हालत में छोटा-मुनि बड़ी आर्जिका को वन्दन करे यह स्वाभाविक था, मुनि पद की हैसियत से यह होना संभवित ही था, अतः उसमें यह विशेष व्यवस्था की गई है कि—महत्तरा भी नव दीक्षित मुनि को बन्दन करें। यद्यपि मुनि और आर्जिका ये सब पांच महाव्रतधारी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं, पूजनीक हैं। फिर भी उनमें आर्जिका गणिनी मुनि उपाध्याय आचार्य व गणधर वगैरह ये उत्तरोत्तर अधिक पूजनीक हैं।

यह व्यवस्था भी सहेतुक और आवश्यक है, इस व्यवस्था से उन सब का मुनिपद और उनकी उत्तरोत्तर प्रधानता सिद्ध होती है।

माने—प्रस्तुत श्लोक आर्जिका के मुनिपद का एवं पुरुष प्रधानता का साधक है।

५-एवं दसविध पायच्छित्तं, भणियं तु कप्पववहारे।
जीदम्मि पुरिसभेदं, णाउं दायव्व मिदि भणियं ॥२८८॥
जं समणाणं वुत्तं, पायच्छित्तं तह जमायरणाम्।
तेसिं चेव पउत्तं, तं समणीणं पि णायव्वं ॥ २८६ ॥

(आ० इन्द्रनन्दि कृत छेदपिण्ड)

६—मुनि और आर्जिका दोनों पांच महाव्रत आदि मूलगुण व उत्तर गुणों को स्वीकार करते हैं। और उनका पालन भी करते हैं।

दिगम्बरीय गणितानुयोग के प्रमाण—

(१) दिगम्बर समाज के परम माननीय आ० पुष्पदंत और भूतबलि फरमाते हैं कि—

मूलम्—चउण्हं खवा अजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवड़िया ? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेण अठोत्तर सदं ॥ सू० ११ ॥

टीका-उक्कोस्सेण अट्ठुत्तरसयजीवा त्ति खवगसेढिं चडंति। (पृ० ६३)

अर्थ—चारों गुणस्थानों के क्षपक और अयोगिकेवली जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? प्रवेश की अपेक्षा एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्टरूप से एक सौ आठ हैं ॥ ११ ॥ पृ० ६२

मूलम्—सजोगिकेवली दव्वपमाणेण केवडिया ? पवेसेण एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोस्सेण। अट्ठुत्तर सयं ॥ सू० १३॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ--सयोगिकेवली जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने है ? प्रवेश से एक या दो अथवा तीन और उत्कृष्टरूप से एक सौ आठ होते हैं ॥ १३ ॥ पृ० ६५ ॥

मूलम्—मणुसिणीसु सासणसम्मइट्ठिप्पहुडि जाव । अजोगि केवलि त्ति दव्वपमाणेण केवडिया ! संखेज्जा ॥ सू ४६ ॥

अर्थ—मनुष्यनियोंमें सासादनसम्यग्दष्टि गुणस्थान से लेकर अयोगि केवली गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं ॥४६॥ पृ० २६१

मूल—वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु पमत्तसंजद प्पहुडि जाव अणिअट्टि बादर सांपराइय पविट्ठ उवसमा खवा दव्व पमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ सू० १२६ ॥

अर्थ—स्त्रीओ में प्रमत्तसंयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्ति बादर सांपराय प्रविष्ट उपशमक और क्षपक गुणस्थानतक जीव द्रव्यप्रमाण की अपेक्षा कितने हैं । संख्यात है ॥ १२६ ॥ पृ० ४१६ ॥

धवला टीका—पमत्तादीणं ओघरासिं संखेज्ज खंडे कए एय खंडमित्थिवेद पमत्त दाओ भवंति इत्थिवेद उवसामगा दस १० खवगा वीस २० ॥ पृ० ४१६ ॥

अर्थ--प्रमत्त संयत्त आदि गुणस्थान संबन्धी ओघराशिको संख्यात से खंडित करने पर एक खंड प्रमाण स्त्रीवेदी प्रमत्तसंयत आदि गुणस्थान वर्ति जीव होते हैं । स्त्रीवेदी उपशामक दश और क्षपक वीस हैं । पृ० ४१६ ।

मूलम्—णवुंसय वेदेसु -- पमत्तसंजय प्पहुडि जाव अणियट्टि बादर सांपराइय पविट्ठ उवसमा खवा दव्व पमाणेण केवडिया ? संखेज्जा ॥ सू० १३० ॥

टीका—इत्थिवेद पमत्तादि रासिस्स संखेज्जदिभागमेत्तो णपुंसय वेद पमत्तादि रासी होदि ! कुदो ? इट्टपागग्गि समाणेण णपुंसय वेदोदयेण सणिदाणेण पउरं सम्मत्त-संजमादीण मुवलं

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भाभावादो। ओघपमाणं ण पावेंति त्ति जाणावणट्टं सुत्ते संखेज्ज णिद्देसो कओ। णपुंसयवेद उवसामगा पंच ५, खवगा दस १०। इत्थिवेद णपुंसय वेदे पमत्ता अपमत्ता च पत्तिया चेव होंति त्ति संपहि (संप्रति) उवएसो णत्थि। पृ० ४१६।

अर्थ-प्रमत्त संयत गुणस्थान से लेकर अनिवृत्ति बादर सांपरायिक प्रविष्ट उपशमक और क्षपक गुण स्थानक तक (नपुंसक) जीव द्रव्य प्रमाण की अपेक्षा कितने हैं ? संख्यात हैं। ॥ १३० ॥ पृ० ४१८ ॥

मूलम्-सजोगिकेवली ओघं ॥ सू० १३४ ॥

टीका-सव्वपरत्थाणं पयदं (अल्पबहुत्वं प्रकृतं)। सव्वत्थोवा णपुंसय वेदुवसामगा, (तेसिं) खवगा संखेज्ज गुणा। इत्थि वेदुवसामगा तत्तिया चेव, तेसिं खवगा संखेज्जगुणा। पुरिस वेदुवसामगा संखेज्ज गुणा। तेसिं खवगा संखेज्ज गुणा। णपुंसय वेदे। अपमत्त संजदा संखेज्जगुणा, तम्हि चेव पमत्तसंजदा संखेज्ज गुणा, इत्थिवेदे अप्पमत संजदा संखेज्ज गुणा, तम्हि चेव पमत्तसंजदा संखेज्ज गुणा। सजोगि केवली संखेज्ज गुणा। (पृ० ४२२)

इन सब सूत्र पाठों से स्पष्ट है कि-पुरुष १०८ स्त्री २० और नपुंसक १० क्षपक श्रेणी करते हैं एवं मोक्ष में जाते हैं।

(षट् खंडागम—जीवस्थान—द्रव्यप्रमाणुगम,
धवला टीका, मुद्रित पुस्तक ३ रा)

वीसा नपुंसगवेया, इत्थीवेया य हुंति चालीसा।
पुंवेदा अडयाला, सिद्धा इक्कम्मि समयम्मि ॥

अर्थ—एक समय में एक साथ में षंढ २०, स्त्री ४०, और पुरुष ४८ सिद्ध होते हैं। माने-स्त्री और नपुंसक भी मोक्ष में जाते हैं।

इन सब पाठों से निर्विवाद सिद्ध है कि दिगम्बर शास्त्र स्त्री-दीक्षा और स्त्री-मुक्ति के पक्ष में हैं।

दिगम्बर—यह तो मानना ही पड़ेगा, कि स्त्री केवलिनी बनती है तो तीर्थंकर भी बन सकती है !

जैन—यद्यपि ऐसा होता नहीं है किन्तु अनन्त काल व्यतीत होने के बाद कभी स्त्री भी तीर्थंकर हो जाती है। मगर उस घटना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का समावेश आश्चर्य में हो जाता है । श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों अघटित घटनाओं का कभी २ होना भी मानते हैं और उसे आश्चर्य की संज्ञा देकर "किसी २ समय में ऐसा होजाता है" इतना ही उसके बारे में खुलासा करते हैं ।

वर्तमान चौवीसी में मल्लिकुमारी उन्नीसवें तीर्थंकर हुए हैं। मगर यह आश्चर्य, माने अशक्य नहीं, दुशक्य घटना मानी जाती है अनेकान्तवादी ऐसी नैमित्तिक घटनाओं के बारे में एकान्त इन्कार भी नहीं कर सकते हैं ।

दिगम्बर--यदि दिगम्बरीय शास्त्रों में भी स्त्रीदीक्षा और स्त्रीमुक्ति का विधान है तो दिगम्बर समाज उनका निषेध क्यों करता है ?

जैन--दिगम्बर समाज नग्नता का एकान्त हामी है, इसी से उसको क्रमशः वस्त्र, वस्त्रधारी की मुक्ति, और सीलसीला में स्त्रीमुक्ति का निषेध करना पडा है। वास्तव में नग्नता की एकान्त मान्यता हट जाय तो स्त्री मुक्ति का निषेध की भी आवश्यकता नहीं रहेगी, अंत एव अनेकान्तवाद के ज्ञाता दिगम्बर आचार्यों ने स्त्रीमुक्ति का भी कुछ २ उल्लेख भी किया है । जिनको मैं ऊपर बता चुका हूं । इसके अलावा वैदिक साहित्य भी स्त्री को वेदाध्ययन और मुक्ति का कुछ निषेध करता है, उसके असर वाले ब्राह्मणों में से बने हुए ब्रह्मचारी और भट्टारकों ने भी उस विषय को संभवतः ज्यादा जोर दे दिया होगा । कुछ भी हो, किन्तु स्त्री दीक्षा और स्त्रीमुक्ति दिगम्बर शास्त्रों से भी सिद्ध है ।

दिगम्बर—गीताजी अ० ९ के श्लोक ३२ में कहा है, कि—

मां हि पार्थ ! व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा स्तेपि यान्ति परां गतिम् ॥

इसके सामने जैनधर्म तब ही उदार विशाल और विश्वव्यापक बन सकता है जब कि शूद्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति का विधायक हो । ऊपर के प्रमाणों को देखकर हर एक विचारक को खुशी होगी कि दिगम्बर शास्त्र भी शूद्रमुक्ति और स्त्रीमुक्ति बताते हैं, यह जैनों के लिये अभिमान की बात है । इतना ही नहीं किन्तु जैन दर्शन इस हालत में ही सर्वोपरि दर्शन है, अनेकान्त दर्शन है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—इस बात को दिगम्बर समाज ठीक २ समझ ले तो जैन समाज में एक बड़े एकान्तआग्रह से खड़ा हुआ सम्प्रदायवाद का आज ही अन्त होजाय। अनेकान्तवादी जैनों का फर्ज है कि इसके लिये उचित प्रयत्न करे और जैनसंघ को पुनः अविभक्त संघ बनावे।

दिगम्बर—ऊपर के पाठों में षंढ दीक्षा और षंढ मुक्ति का भी विधान मिलता है तब तो षंढ मुक्ति भी दिगम्बर शास्त्रों से सिद्ध हो जाती है।

जैन—दिगम्बर शास्त्र नपुंसक को भी मोक्ष मानते है। मगर उसमें संभवतः इतनी विशेषता है। कि वो नपुंसक असली नहीं, किन्तु कृत्रिम नपुंसक होना चाहिये।

गोम्मटसार कर्म्म कान्ड गा० ३०१ में पर्याप्त स्त्री को पुरुष वेद और षंढ वेद के उदय की ही मना की है और पुरुष को सिर्फ स्त्री के उदय की ही मना की है। इसी से स्पष्ट है कि—पुरुष किसी निमित्त से षंढ बन जाता है, यह षंढ "कृत्रिम षंढ" है और यही मोक्ष का अधिकारी है।

जिनवाणी गांगेय को कृत्रिम नपुंसक मानती है और उसको मोक्ष गामी भी बताती है।

सारांश-दिगम्बर शास्त्र स्त्री मुक्ति के साथ षंढमोक्ष की भी हिदायत करते हैं माने "षंढ मोक्ष" मानते हैं

प्रथम भाग समाप्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

॥ वन्दे वीरम् श्रीचारित्रम् ॥

श्वेताम्बर-दिगम्बर

(भाग-दूसरा)

केवली अधिकार

दिगम्बर-वस्त्र परिग्रह नहीं है, मूर्छा परिग्रह है, ओर २ उपधि भी संयमकी रक्षाके लीए अनिवार्य उपकरण हैं। वस्त्रधारीको निर्ग्रन्थपद व केवलज्ञान हो सकता है। जैनमुनि एक घरसे सम्पूर्ण भीक्षा न लेवे, विभिन्न घरोंमें परिभ्रमण करके गोचरी ग्रहण करे, अजैनोंसे भी शुद्ध आहार लेवें, गृहस्थी अन्यलिंगी शूद्र स्त्री और नपुंसक भी मोक्षमें जाय। ये सब बातें दिगम्बर शास्त्रोंसे भी सिद्ध हैं, उसमें तनिक भी शंका का स्थान नहीं है। मगर श्वेताम्बरोंकी ओर २ कई बातें ऐसी हैं जो संशोधनके योग्य हैं।

जैन-प्रमाणोंसे व कसोटीसे सब बातोंका सत्य स्वरूप मिल जाता है, आपको दिगम्बर शास्त्रोंके ही प्रमाणोंसे ऊपरकी सब बातें सत्य व प्रामाणिक प्रतीत हुई हैं। इसी ही तरह ओर २ बातोंका निर्णय भी प्रमाणोंसे ही कर लेना चाहिये। आप प्रश्न करो, मैं प्रमाण बताऊं, आप शास्त्रके पाठ देखो, सोचो, और निर्णय कर लो। परस्परविरोधी बातोंके निर्णयमें एवं समन्वयमें, प्रमाण ही आयना है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर शास्त्रमें केवली भगवान के लिये कई विचित्र बातें लिखी हैं, वे सब हमको तो ठीक नहीं लगतीं हैं।

जैन-सिर्फ कहने मात्रसे ठीक-अठीक का निर्णय नहीं हो सकता है। केवली भगवान् कैसे होने चाहिये? इसका निर्णय

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

गुणस्थानकी व्यवस्था द्वारा ही हो सकता है। केवली भगवानमें जिस २ कर्मप्रकृतिका उदय विच्छेद हो जाता है, उस २ के कार्य का भी अभाव हो जाता हैं, यह सीधी-सादी बात है। तो आप उनकी उदय प्रकृति और उदय विच्छेद प्रकृति का विश्लेष करें, जिससे-केवलीओंकी रहन-सहन और प्रवृत्ति का बहुत खुलासा मिल जायगा।

दिगम्बर–केवली भगवानको १२२ उदय प्रकृतिमें से घातीये ४ कर्मकी सब प्रकृतियाँ और अघातिये ३ कर्मकी कुछ २ प्रकृतियां एवं ८० कर्मप्रकृतिओंका "उदय विच्छेद" हो जाता है, जो इस प्रकार है।

(१) १ मिथ्यात्वमोहनीय, २ आतप, ३–५ सूक्ष्मादि तीन। (२) ६–९ अनन्तानुबन्धी चार, १० स्थावर, ११ एकेन्द्रियजाति, १२–१४ विकलेन्द्रियजाति। (३) १५ मिश्रमोहनीय। (४) १६–१९ अप्रत्याख्यान चतुष्क, २० से २५ वैक्रीयादि षट्क, २६ नरकायु, २७ देवायु, २८ मनुष्यगतिआनुपूर्व्वि, २९ तीर्यंच०आनु०, ३० दुर्भग, ३१ अनादेय, ३२ अयशकीर्ति, (५) ३३-३६ प्रत्याख्यान चतुष्क, ३७ तिर्यंचआयु, ३८ उद्योत, ३९ नीचगोत्र, ४० तिर्यंचगति। इन ४० कर्मप्रकृतियोंका उदय विच्छेद होने पर मुनिपना प्राप्त होता है।

(६) ४१–४२ आहारकशरीर युग्म, ४३ स्त्यानर्धि, ४४ प्रचला प्रचला, ४५ निद्रानिद्रा इन ४५ प्रकृतिका उदय विच्छेद होने पर अप्रमत्त गुणस्थान प्राप्त होता है।

(७) ४६ सम्यक्त्व मोहनीय, ४७ सेवार्त, ४८ कीलिका ४९ अर्धनाराच। (८) ५०–५५ हास्यादि षट्क।

(९) ५६ नपुंसकवेद, ५७ स्त्रीवेद, ५८ पुरुषवेद, ५९–६१ सं. क्रोध मान माया। (१०) ६२ सूक्ष्म सं. लोभ। (११) ६३ नाराच, ६४ ऋषभ नाराच। (१२) ६५से ८० ज्ञानावरणीय पंचक, दर्शनावरणीय चतुष्क, निद्रा, प्रचला, अंतराय पंचक। इन ८० प्रकृतिओंका उदय विच्छेद होनेसे मनुष्य केवली होता है।

(गोम्म० कर्म० गा० २६५ से २७०)

केवली भगवानको ४ कर्म और ४२ उत्तर प्रकृतिका "उदय" हो सकता है, वे इस प्रकार हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(१३) १ शातावेदनीय या अशातावेदनीय, २ वज्रऋषभ नाराच संघयण, ३ निर्माण, ४-५ स्थिर-अस्थिर, ६-७ शुभ, अशुभ, ८-९ सुस्वर, दुस्वर, १०-११ शुभ विहायोगति, कुविहायोगति, १२-१३ औदारिकयुग्म, १४-१५ तैजस, कार्मण, १६-२१ संस्थानषट्क, २२-२५ रूप, रस, गंध, स्पर्श, २६-२९ अगुरु लघु, उपघात, पराघात उश्वास, ३० प्रत्येक शरीर।

(१४) ३१ शाता या अशातावेदनीय, ३२ मनुष्यगति, ३३ पंचेन्द्रिय जाति, ३४ सुभग, ३५-३७ त्रस, बादर, पर्याप्त, ३८ आदेय, ३९ यशःकीर्ति, ४० तीर्थंकर नाम, ४१ मनुष्यायु, ४२ उच्च गोत्र। इनमेंसे ३० प्रकृतिका उदय विच्छेद होनेपर "अयोगी गुणस्थान" और शेष १२ प्रकृति का उदय विच्छेद होने पर "सिद्ध पद" प्राप्त होता है।

(गोम्म० कर्म० गा० २७१, २७२)

वास्तवमें यह निश्चित है कि-केवली भगवान को तेरहवें गुणस्थानमें १२० बंध प्रकृतिओंमें से १ शाता वेदनीयका बंध (गोम्म० क० गा० १०२), १२२ उदय प्रकृतिओंमें से ४२ प्रकृतिओं का उदय (गा० २७१, २७२), १२२ उदीरणा प्रकृतिओंमें से शाता, अशाता और मनुष्यायु सिवाय की उदय योग्य ३९ प्रकृतिओंकी उदीरणा (गा० २७९ से २८१) और १४८ सत्ता प्रकृतिओंमें से ८५ प्रकृतिओंकी सत्ता (गा० ३४०, ३४१ कवि पुष्पदंतकृत 'अपभ्रंश महापुराण' संधि ९ गा०...) होती हैं।

केवली भगवानको ४ कर्म उदयमें रहते हैं—

१ आयुकर्म—केवली भगवानको मनुष्यायु उदयमें है, केवलज्ञान होने के बाद कोई केवली भगवान तो क्रोडों वर्षों से भी अधिक आठ वर्ष न्यून क्रोड पूर्व तक जिन्दे रहते हैं। उनका आयु अनपवर्तनीय होता है।

२ नामकर्म—आयुष्य है वहां तक शरीरस्थिति अनिवार्य है। इसीसे केवली भगवानको मनुष्य गति, औदारिक शरीर, संघयण, निर्माण, पंचेन्द्रियजाति वगैरह ३८ प्रकृति उदयमें होती है।

३ गोत्र—मनुष्यगति है-शरीर है वहां तक गोत्र भी रहता है। नीचगोत्र १४ वें गुणस्थान तक सत्तामें रहता है, किन्तु दीक्षा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

लेने के बाद उदयमें नहीं आता है, मुनिको अयश दुर्भग अनादेयका उदय नहीं होता है वैसे नीच गोत्रका भी उदय होता नहीं है; उच्च गोत्रका उदय होता है। केवली भगवानको उच्च गोत्र उदयमें होता है।

४ वेदनीय कर्म–जहां तक आयु है–शरीर है वहां तक वेदनीय तो है ही। केवली भगवान को शाता और अशाता ये दोनों प्रकृति उदयमें आतीं हैं। यद्यपि ये अघातिये कर्म हैं पर वे अपना काम अवश्य करते हैं। केवलो भगवान अनन्त वीर्यवाले हैं, किन्तु उदयमें आई हुई किसी भी प्रकृतिको रोक नहीं सकते हैं। आयुष्य को कम नहीं कर सकते हैं। नामकर्म को हटा नहीं सकते हैं और वेदनीय को दाब नहीं सकते हैं। केवली भगवान को उदय में आई हुई प्रकृति का संक्रमण भी नहीं होता है। देखिए दिगम्बरीय गोम्मटसार कर्मकांड में स्पष्ट है कि—

बंधुक्कट्टकरणं संकममोकड्डुदीरणा सत्तं।
उदयुवसाम णिधत्ती णिकाचणा होदि पडिपयडी॥

बंध, उत्कर्षण, संक्रमण, अपकर्षण, उदीरणा, सत्ता, उदय, उपशान्त, निधत्त और निकाचना, ये दश करण (अवस्था) हर एक प्रकृति के होते हैं ॥४३७॥
आठवें "अपूर्वकरण गुणस्थान" तक ये दश करण रहते हैं।४४१।

आदिम सत्तेव तदो, सुहुमकसाओत्ति, संकमेण विणा।
छच्च सजोगिति तदो, सत्तं उदयं अजोगिति ॥४४२॥

(१०) सूक्ष्म संपराय गुणस्थान तक शुरूके ७ करण, (१३) सजोगि गुणस्थान तक संक्रमण विना के ६ करण, और (१४) अजोगी गुणस्थान में उदय और सत्ता ये २ करण ही रहते हैं ॥४४२॥

माने केवली भगवान् को संक्रमण, उपशान्त, निधत्त और निकाचना नहीं होते हैं, उदयमें आई हुई प्रकृति अपना फल देती है।

सत्तागत कर्मप्रकृति कुछ काम नहीं करती है, उदय में आई हुई प्रकृति अपना काम अवश्य करती हैं। इस प्रकार केवली भगवान को ४ कर्म की ४२ प्रकृतिओं का उदय होता है।

जैन–केवली भगवानको "४२ कर्म प्रकृति" उदय में रहतीं हैं अतः केवली भगवान का वर्तन भी तदपेक्ष ही होगा।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रकृतिओं के बिना खोले यथार्थ ज्ञान होना मुश्किल है अतः इनका अलग २ विचार और समन्वय करना चाहिये।

इसमें भी सबसे पहिले वेदनीय कर्म का विचार करो, कि बाद में और २ कर्म का विचार करना आसान हो जायगा।

दिगम्बर–वेदनीय कर्म का बंध १३ वे गुणस्थान तक, उदय १४ वे गुणस्थान तक, उदीरणा छठे गुणस्थान तक, (गो० क० गा० २७९ से २८१) और सत्ता १४ वे गुणस्थान तक होती है। इसकी शाता और अशाता ये दो प्रकृतियां हैं। १४ वे गुणस्थान तक दोनों प्रकृतियां उदय में रह सकती हैं। यह "जीवविपाकी" कर्म-प्रकृति है। जीवविपाकी ७८ हैं, जिनमें वेदनीय भी है। केवली भगवान को दोनों वेदनीय रहती हैं। और उसी के जरिये ११ परिषह होती हैं। देखिये

(१) मार्गाच्यवननिर्ज्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ॥८॥

क्षुत् पिपासा० ॥९॥

एकादश जिने ॥११॥

वेदनीये शेषाः ॥१६॥

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नेकोनविंशतिः ॥१७॥

(दिगम्बर मोक्षशास्त्र अध्याय ९)

(२) उक्ता एकादश परीषहाः। तेभ्योऽन्ये शेषा वेदनीये सति भवन्तीति वाक्यशेषः। के पुनस्ते ?

क्षुत्-पिपास-शीतो-ष्ण-दंशमशक–चर्या-शय्या-वध–रोग-तृणस्पर्श-मलपरीषहाः।

(आ० पुज्यपाद अपरनाम आ० देवनन्दिकृत सर्वार्थसिद्धि)

(३) (जिने) तेरहवें गुणस्थानवर्ति जिनमें अर्थात् केवलि भगवानके (एकादश) ग्यारह परिषह होती हैं। छद्मस्थ जीवों को वेदनीय कर्म के उदय से १ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ दंश मशक, ६ चर्या, ७ शय्या, ८ वध, ९ रोग, १० तृणस्पर्श और ११ मल ये ग्यारह परिषह होती है, सो केवली भगवान के भी वेदनीय का उदय है, इस कारण केवली को भी ११ परिषह होना कहा है।

(श्रीयुत पन्नालालजीकृत मोक्षशास्त्र भाषा टीका
जैनग्रंथ रत्नाकर, ११ वां रत्न, पृष्ट ८३)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(४) एकादश बाकी रहीं, वेदना उदय से कहीं,
बाईस परीषह उदय, ऐसे उर आनिये ॥२५॥
बाईस परिषह, दि० जैनसिद्वान्त संग्रह पृ० १७७

इस प्रकार केवली भगवान को वेदनीय कर्मके उदय से ११ परिषह होती हैं। इन ११ परिषह का स्वरूप निम्न प्रकार है।

छप्पय—

१ क्षुधा २ तृषा ३ हिम ४ उश्न ५ डंसमसक दुखभारी।
६ निरावरण तन ७ अरति ८ वेद उपजावन नारी ॥
९ चरया १० आसन ११ शयन १२ दुष्ट वायक १३ वध बन्धन।
१४ याचैं नहीं १५ अलाभ १६ रोग १७ तृण फरस होय तन॥
१८ मलजनित १९ मान सनमान वश२० प्रज्ञा २१ और अज्ञानकर।
२२ दरशन मलीन बाईस सब साधु परीषह जान नर॥१॥

दोहा—सूत्र पाठ अनुसार ये, कहे परीषह नाम।
इनके दुख जो मुनि सहैं, तिन प्रति सदा प्रणाम॥२॥

१ क्षुधापरीषह—अनसन ऊनोदर तप पोषत, पक्षमास दिन बीत गये हैं। जो नहीं बेन योग्य भिक्षाविधि, सूख अङ्ग सब शिथिल भये हैं॥ तब तहां दुस्सह भूखकी वेदन, सहत साधु नहीं नेक नये हैं। तिनके चरणकमल प्रति प्रति दिन, हाथ जोड़ हम शीश नमे हैं ॥३॥

२ तृषापरिषह—पराधीन मुनिवर की भिक्षा, पर घर लेंय कहैं कुछ नाहीं। प्रकृति विरुद्ध पारण भुंजत, बढत प्यास की त्रास तहां ही॥ ग्रीषमकाल पित्त अति कोपै, लोचन दोय फिरे जब जाहीं। नीर न चहैं सहैं ऐसे मुनि, जयवन्ते वरतो जगमाहीं ॥४॥

३ शीतपरीषह—शीत काल सब ही जन कम्पत, खड़े तहां बन वृक्ष डहै हैं। झंझा वायु चलै वर्षाऋतु, बर्षत बादल झुम रहे हैं॥ तहां धीर तटनी तट चौपट, ताल पाल पर कर्म दहे हैं। सहैं संभाल शीतकी बाधा ते मुनि तारणतरण कहे हैं।।५॥

४ उष्णपरीषह—भूख प्यास पीड़े उर अंतर, प्रजुलैं आंत देह सब दागै। अग्निस्वरूप धूप ग्रीषम की ताती वायु झाल सी लागै॥ तपैं पहाड ताप तन उपजति, कोपै पित्त दाह ज्वरजागै। इत्यादिक गर्मी की बाधा, सहैं साधु धीरज नहिं त्यागैं ॥६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

५ डंसमस्कपरीषह–डन्स मस्क माखी तनु काटैं, पीडैं वन पक्षी बहुतेरे। डसैं व्याल विष हारे विच्छू, लगैं खजूरे आन घनेरे॥ सिंह स्याल सुन्डाल सतावैं, रीछ रोज दुख देहिं घनेरे। ऐसे कष्ट सहैं सम भावन, ते मुनिराज हरो अघ मेरे ॥७॥

६ चर्य्यापरीषह–चार हात परवान परख पथ, चलत दृष्टि इत ऊत नहीं तानैं। कोमल चरण कठिन धरती पर, धरत धीर बाधा नहीं मानैं ॥नाग तुरङ्ग पालकी चढ़ते, ते सर्वादि याद नहीं आनैं। यों मुनिराज सहैं चर्या दुःख, तब दृढकर्म कुलाचल भानैं॥

७ शयनपरीषह–जो प्रधान सोनेके महलन, सुन्दर सेज सोय सुख जोवैं। ते अब अचल अंग एकासन, कोमल कठिन भूमि पर सोवैं॥ पाहन खण्ड कठोर कांकरी, गडत कोर कायर नहीं होवैं। पांचो शयन परीषह जीतैं, ते मुनि कर्म कालिमा धोवैं ॥१२॥

८ वधबन्धनपरीषह–निरपराध निर्वैर महामुनि, तिनको दुष्ट लोग मिलि मारैं। कोई खैंच खम्भ सैं बांधैं, कोई पावक में परजारैं॥ तहां कोप करते न कदाचित्, पूरव कर्म विपाक विचारैं। समरथ होय सहैं वध बन्धन, ते गुरु भव भव शरण हमारैं ॥१३॥

९ रोगपरीषह–बात पित्त कफ श्रोणित चारों, ये जब घटैं बढैं तनु माहीं। रोग संयोग शोक जब उपजत, जगत जाव कायर हो जाहीं॥ ऐसी व्याधि बेदना दारुण, सहैं सूर उपचार न चाहीं। आतम लीन विरक्त देह सों, जैन यती निज नेम निवाहीं ॥१८॥

१० तृणस्पर्शपरीषह–सूखे तृण अरु तीक्ष्ण कांटे, कठिन कांकरी पांय विदारैं। रज उड़ आन पड़े लोचनमें, तीर फांस तनु पीर बिथारैं॥ तापर पर सहाय नहीं बांछत, अपने करसैं काढ न डारैं। यों तृणपरस परीषह विजयी, ते गुरु भव भव शरण हमारैं ॥१९॥

११ मलपरीषह–यावज्जीव जल न्हौन तजो जिन, नग्न रूप वन थान खड़े हैं। चलै पसेव धूप की वेला, उड़त धूल सब अंग भरे हैं॥ मलिन देह को देख महामुनि, मलिन भाव उर नाहिं करैं हैं। यों मल जनित परीषह जीतैं तिनहिं हाथ हम शीष धरे हैं ॥२०॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्ञानावरणी तें दोइ प्रज्ञा अज्ञान होइ एक महामोह तें अदर्शन बखानिये। अन्तराय कर्म सेती उपजै अलाभ दुःख सप्त चारित्र मोहनी केवल जानिये ॥ नगन निषद्या नारि मान सन्मान गारि यांचना अरति सब ग्यारह ठीक ठानिये। एकादश बाकी रहीं वेदना उदयसे कहीं बाईस परीषह उदय ऐसे उर आनिये ॥२५॥

अडिल्ल–एक बार इन माहिं एक मुनिकै कही। सब उन्नीस उत्कृष्ट उदय आवैं सही ॥ आसन शयन विहाय दाय इन माहिंकी। शीत उष्णमें एक तीन य नाहिं की ॥२६॥

(बाईस परिषह ३६, जैन सिद्धांत संग्रह पृ० १७२)

जैन—४ कर्म, ४२ प्रकृति और ११ परिषह ये केवली भगवान के वर्तन के विषय में अच्छा प्रकाश डालते हैं। इनसे मानना होगा कि केवली भगवान चलते हैं, बोलते हैं, खाते हैं, पीते हैं, मल छोड़ते हैं, रोगी होते हैं और वध परिषह को पाते हैं वगैरह ॥

यह भी निर्विवाद होता है कि केवलि भगवान में अज्ञान, क्रोध, मद, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, निन्द्रा, हिंसा, झूठ, चोरी, प्रेम, क्रीडा और ईर्षा ये १८ दूषण नहीं रहते हैं।

(आ० नेमिचन्द्रसूरिकृत प्रवचनसारोद्धार गा० ४५१-४५२)

दिगम्बर—केवली भगवान् खाते पीते नहीं हैं, यद्यपि अज्ञान वगैरह १८ दूषण हैं वे दूषण ही हैं साथ २ में भूख, प्यास, रोग, मृत्यु, स्वेद आदि भी केवली भगवान के दूषण ही हैं। अतः १८ दूषण में इनको भी जोड़ देना चाहिये।

आ० कुन्दकुन्द लिखते हैं कि—

जर वाहि जम्म मरणं चउगइगमणं च पुण्णपावं च।
हंतूण दोस कम्मे, हुओ नाणमयं च अरिहंतो ॥३०॥
जर वाहि दुःख रहियं, आहार निहार वज्जियं विमलं।
सिंहाण खेल सेदो, णत्थि दुगंछा य दोसो य ॥३७॥

(बोधप्राभृत पृ० ९६-१०३)

इस हिसाव से १८ दूषण ये हैं–भूख, प्यास, भय, द्वेष, राग, मोह, चिन्ता, जरा, रोग, मृत्यु, खेद, स्वेद, मद, अरति, विस्मय, जन्म, निद्रा और विषाद।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इनमें से एक भी दूषण केवली भगवान में नहीं होता है।

जैन—केवली भगवान के भूख, प्यास, स्वेद, रोग आदि होने का प्रमाण दिगम्बर शास्त्रोंमें भी उपलब्ध हैं। जैसा कि—

केवली भगवान को शाता, अशाता, उदयमें रहते हैं अतः भूख आदि की मना नहीं हो सकती है, उनको ११ परिषह होती हैं, जिनमें भूख प्यास वध रोग और मल भी सामिल हैं। मल परिषह है तो निहार है, स्वेद भी है। सिर्फ तीर्थंकरों को अतिशय के जरिये जन्मसे ही स्वेद की मना है। घातिकर्मज अतिशयों में निःस्वेदता का सूचन नहीं है इस दिगम्बरीय पाठ से केवली भगवान को स्वेद सिद्ध हो जाता है। अशाता का उदय है, रोग परिषह है, तो रोग भी होता है।

पांचों इन्द्रिय तीनों बल श्वासोश्वास व मनुष्यआयु ये १० प्राण उदय में हैं वहां तक "जीवन" रहता है (बोध प्राभृत ३५, ३८) और उन १० प्राणों के छूटने पर प्राण विच्छेदरूप "मृत्यु" भी होता है। वधपरिषह भी इस मान्यता की ताईद करता है।

वेदनीय कर्मके बंध उदय और सत्ता होनेसे पुण्य पाप भी हैं, अस्थिर, अशुभ, दुस्वर वगैरह पाप प्रकृति हैं। स्थिर जिन नामकर्म वगैरह पुण्य प्रकृतियाँ हैं।

ये सब बातें दिगम्बर शास्त्रों से सिद्ध हैं।

इसके अलावा दिगम्बर शास्त्रमें १४ ग्रन्थी माने गये हैं उनका विवेक करने से भी केवली के १८ दूषण कोन २ हैं, वह स्वयं समजमें आ जाता हैं। देखिए—

क्षेत्रं वास्तु धनं धान्यं, द्विपदं च चतुष्पदं।
हिरण्यं च सुवर्णं च, कुप्यं भाण्डं बहिर्दश ॥१॥
मिथ्यात्ववेदौ हास्यादि-षट् कषायचतुष्टयं।
रागद्वेषौ च संगाः स्यु-रन्तरंगाश्चतुर्दश ॥२॥

(दर्शनप्राभृत गा० १४ टीका, भावप्राभृत गा० ५६ टीका)

मिथ्यात्व, तीनों वेद, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग और द्वेष ये १४ अभ्यंतर ग्रंथ हैं। क्षपकश्रेणीमें इनका अभाव हो जाता है, अथवा यों कहा जाय तो भी ठीक है कि-पांच निर्ग्रन्थों में निर्दिष्ट चतुर्थ

२

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

निर्ग्रन्थ को ये मोहनीय कर्मजन्य दूषण होते नहीं हैं। यह तो दिगम्बर शास्त्र से स्पष्ट है।

वह निर्ग्रन्थ अन्तर्मुहूर्त में केवली बनता है, तब ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय व अन्तराय कर्म का क्षय हो जानेसे उक्त १४ दूषणों के उपरांत अज्ञान, मद, निद्रा, हिंसा, जूठ व चोरी इत्यादि दूषणों से रहित हो जाता है।

इस विश्लेषणसे तय है कि-केवली भगवान के अज्ञानता वगैरह जो १८ दोष माने गये हैं वह ठीक है।

और दिगम्बर शास्त्रों में जो उक्त क्षुधा वगैरह १८ दूषण गिनाये हैं, वे सिर्फ सिद्धोंके हिसाब से हैं, मगर केवली भगवान से जोड़ दिये गये हैं, वो ठीक नहीं है।

वास्तव में क्षुधा वगैरह १८ दूषण केवलीके दूषण नहीं हैं; अज्ञानता आदि १८ दूषण ही केवलीके १८ दूषण हैं।

आचार्य पूज्यपादकृत "सिद्धभक्ति" श्लोक ६ और ८ से भी यह मान्यता अधिक पुष्ट होती है।

यद्यपि केवली भगवान को आहार निहार रोग मल परिषह उपसर्ग शाता अशाता चलना समुद्घात और मृत्यु ये सब देह प्रवृत्ति अवश्य होती हैं, किन्तु वे निरीह भाव से होती हैं।

दिगम्बरसम्मत शास्त्र में भी निर्देश है कि—

प्रातिहार्यविभवैः परिष्कृतो, देहतोऽपि विरतो भवानभूत् ।
मोक्षमार्गमशिषन् नरामरान्, नापि शासनफलेषणातुरः ॥७३॥

काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो, नाभवंस्तव मुनेश्चिकिर्षया ।
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो, धीर ! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥७४॥

(स्वामी समन्तभद्र का स्वयंभू स्तोत्र, स्तो० १५)

कायवाङ्मनसां सत्तायां सत्यामपि ॥

(बोधप्राभृत गा० ३५ टीका)

केवली भगवान् केवली समुद्घात करते हैं।

माने केवली भगवान को आहार वगैरह शारीरिक प्रवृत्तियां होतीं हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर—केवली भगवान् नोकर्म्म आहार लेते हैं, कहा भी है कि—

कम्मा हारु असेसहं जीवहं। णोकम्माहारु विभवभावहं॥
लेवाहारु वि दिसइ रुक्खहं। कवलाहारु णरोह तिरीक्खहं॥
ओजाहारु पक्खि संघायहं। मणभोयणु चउदेव निकायहं॥

(कवि पुष्पदंतकृत महापुराण, संधी ११ वी)

यहां विभव भाव में "णोकर्म" आहार और मनुष्य और तिर्यंच के लिये कवलाहार बताया है।

यद्यपि केवली भगवान् मनुष्य ही हैं, किन्तु वे "णोकर्म" आहार लेते हैं, कवलाहार नहीं लेते हैं। निद्रा का नोकर्म दही वगैरह पदार्थ हैं, वेदोदय का नोकर्म भोगांग है, वैसे शरीर आदि की अमुक नोकर्म वर्गणा है, केवली भगवान् उनका ही आहार लेते हैं। इसके लिये कहा है कि—

आहारदंसणेण य, तस्सुवजोगेण ओमकोट्ठाए।
सादिदरुदीरणाए हवदि हु आहारसण्णा हु॥१३४॥

आहार देखने से अथवा उसके उपयोग से, और पेटके खाली होने से तथा अशातावेदनीय के उदय और उदीरणा होने पर जीवको नियमसे आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है।

(पं० गोपालदासजी बरैयाकृत भाषानुवाद)

उदयावण्णसरीरोदयेण, तद्देह–वयण–चित्तानाम्।
णोकम्मवग्गणाणं, गहणं आहारयं नाम॥६६३॥
आहरदि सरीराणं, तिण्हं एयदर वग्गणाओ।
भासा मणाणं णियदं, तम्हा आहारओ भणिओ॥८६४॥

(गोम्मटसार, जीवकाण्ड)

माने–औदारिक वैक्रिय आहारक भाषा और मनकी वर्गणाओं का ग्रहण करना, वही आहार है, केवली भगवान् "णोकर्म्म वर्गणा" का आहार लेते हैं।

जैन—णोकर्म्म वर्गणा का आहार लेना, उस आहार द्वारा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आठ वर्ष की छोटी अवगाहनामें केवल ज्ञान पाये हुए केवली भगवान के शरीर की क्रमशः ५०० धनुष तक वृद्धि होते जाना, खाली पेटको भरदेना, शाता अशाता वेदनीय के उदय को भोग लेना, भूख को शान्त करना और क्षुधा परिषह को जीतना, ये सब विकट समस्या हैं।

"नोकर्म्म आहार" तो विभव भाव में है। और कर्मयोगवाले जो कि अनाहारी हैं वे क्या विभव भाव में नहीं हैं? यदि मनुष्य कवलाहार करते हैं तो क्या केवलीं भगवान् मनुष्य नहीं हैं? क्या उनको मनुष्यायु मनुष्यगति और मानवी शरीर नहीं है? यदि नोकर्म्म वर्गणा ही आहार का कार्य करे तो गर्भकी व्यवस्था निरर्थक है, और २ आहार भी निरर्थक है, देवों का मनोभोजन भी फिजूल है, और क्षुधापरिषह यह कल्पना ही है। न अशाता को मौका मिलेगा न क्षुधा लगेगी, न आहारशुद्धि का प्रश्न उठेगा, न परिषह ही होगी और न क्षुधा परिषह को जीतना पड़ेगा। मगर शास्त्र तो केवली के लिये लम्बा आयुष्य, शरीर-वृद्धि, अशाता, भूख, तृषा, भूखपरिषह, रोग, चलना-विहार करना इत्यादि विधान करते हैं इतना ही नहीं किन्तु कई दिगम्बर शास्त्र तो कवलाहार का भी स्पष्ट उल्लेख करते हैं।

इस हालत में केवली भगवान् नोकर्म्म वर्गणा का आहार लेते हैं, यह कवलाहार के विपक्षमें मनस्वी कल्पना ही है।

दिगम्बर—केवली भगवान कवलाहार करें यह बात बुद्धि-गम्य नहीं है।

जैन—विना तेल दीपक जिस तरह नहीं जलता है उसी प्रकार विना आहार के शरीर नहीं टिकता है, यानी शरीर को आहार अनिवार्य है।

केवली भगवान् को औदारिक शरीर है, बड़ा आयुष्य है, अशाता वेदनीय है, भूख है, आहारपर्याप्ति है और लाभांतराय आदि का अभाव है।

फिर क्या कारण है कि वे आहार न करें?

दिगम्बर—केवली भगवान को अनन्त ज्ञान है।

जैन—ज्ञान और अज्ञान एकान्त विरोधि वस्तु है। अतः इन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दोनोंमें ही एक के बढने से दूसरे का ह्रास होता है, किन्तु ज्ञान के बढने से या घटने से भूख की हानि वृद्धि होती नहीं है।

भूख अज्ञताका फल नहीं है, इसी लीए ज्ञान या अज्ञान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं हैं। आहार पाने से या भूख का कारण नष्ट होने से भूख शान्त हो जाती है, किन्तु ज्ञान बढने से भूख मीटती नहीं है। ज्ञान होने से अज्ञानता नष्ट होती है और उप· योग शक्ति प्राप्त होती है, भूख दबती नहीं है।

वास्तवमें ज्ञानावरणीय कर्म्म और भूख का परस्पर सहकार भाव नहीं है।

दिगम्बर–खाने से ज्ञान दब जायगा।

जैन–महानुभाव ! खाने-पीने से सामान्य या विशेष प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई ज्ञान दबता नहीं है। क्षायिक केवलज्ञान किसी से नहीं दबता है।

दिगम्बर–केवली भगवान को अनन्त दर्शन है।

जैन–दर्शनावरणीयकर्म और भूख का परस्पर में कोई सह-कार भाव नहीं है, खाना और देखना इनमें कोई सम्बन्ध नहीं है।

दिगम्बर–मायालोहे रदिपुव्वाहारं (गो० जी० गा० ६) इस कथनानुसार "आहार" मोह विपाक का फल है, कषाय होता है जब आहार होता है, तो माया और लोभ न होने से आहार नहीं रहता है। अतः अकषायी केवली भगवान् आहार न करें।

जैन–अधिक मायावी या बडा लोभी ही आहार लेवे, ऐसा देखने में नहीं आता है। कपटी भी खाता पीता है, सरल भी खाता पीता है, लोभी भी खाता पीता है, संतोषी भी खाता पीता है। कहीं कपटी या लोभी भी कम खाता है और सरल या संतोषी अधिक भी खाता है। इस प्रकार माया लोभ और आहार क्रिया में किसी भी प्रकार का अन्वय-व्यक्तिरेक सम्बन्ध नहीं है।

दिगम्बर–खाना प्रमाद है अतः छठे गुणस्थानके ऊपर खाना बंद हो जाता है।

जैन–छठे गुणस्थानवर्ती जीव आहारक द्वय, स्त्यानर्धि प्रचलाप्रचला और नीद्रानीद्रा इन ५ प्रकृतिओं का उदयविच्छेद

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

करके सातवें अप्रमत्त गुणस्थान में जाता है। इनमें ऐसी कोई प्रकृति नहीं है कि जिससे खाने-पीने का निषेध हो जाय।

दिगम्बर–आहारक द्वय का उदय विच्छेद है।

जैन–इन आहारक द्वय से आहारक शरीर और आहारक अंगोपांग का विच्छेद होता है, न कि आहारग्रहण का।

दिगम्बर–अप्रमत्त दशावाला क्या खावे पीवे?

जैन–खाना प्रमाद नहीं है, खाते खाते तो शुद्ध भावना से कभी केवलज्ञान भी हो जाता है। अप्रमत्त को निद्रा और प्रचला का भी उदय होता है फिर खाने पीने का तो पूछना ही क्या?

दिगम्बर–केवली भगवान् अनन्त वीर्यवाले हैं, अतः क्षुधा को दबा देवे।

जैन–जैसे वे आयुष्य को नहीं बढ़ा सकते हैं और न घटा सकते हैं, वैसे ही क्षुधा को भी नहीं दबा सकते। उनको लाभांतराय भोगांतराय या कोई अंतराय नहीं है अतः आहारप्राप्ति का अभाव नहीं है, फिर क्षुधा को क्यों दबावें? अंतराय का क्षय होने से लब्धि होती है, किन्तु क्षुधा का अभाव नहीं होता है।

दिगम्बर–तीर्थंकर भगवान को स्वेद नहीं है तो आहार भी न होना चाहिये।

जैन–स्वेद तो निहार है, वह शरीर से निकलता है, आहार तो ग्रहण किया जाता है; इनकी समानता कैसे की जाय? फिर भी केवलीको तो स्वेद होता है, आहार भी होता है।

दिगम्बर–भूख वेदनीय कर्म की सहकारिणी है!

जैन–नही, वेदनीय कर्म भूख का सहकारी है। वेदनीय कर्म का उदय विच्छेद होते ही भूख का भी अभाव हो जायगा।

दिगम्बर–वेदनीय अघातिया कर्म है, मामूली है, वह उदय में आने पर भी कुछ नहीं करता है। और वे ११ परिषह भी उपचार से हैं। (सर्वार्थसिद्धि ९-११)

जैन–कर्म घातिया हो या अघातिया मगर उदय में आने से अपना कार्य अवश्य करता है, इतना ही क्यों केवलीको

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समुद्घात भी कराता है। वेदनीय मामूली नहीं है, यदि मामूली होता तो सातवें गुणस्थान से ही वेदनीयकी उदीरणा की क्यों मना कर दी गई? मामूली था तो उसकी उदीरणा भी कुछ नहीं करने पाती। मगर उदीरणा का वहां से निषेध है, अतः वेदनीयकी ताक़तका परिचय हो जाता है जिसकी उदीरणा का पहिले से निषेध है वह कर्म मामूली कैसे माना जाय? वह अपना कार्य अवश्य करता है और उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।

११ परिषह भी उपचार से नहीं हैं, सिर्फ उपचार से ही बताना था तो २२ ही क्यों न बताये? वास्तव में ११ परिषह भी उपचारसे नहीं हैं; परिषह परिषह के रूप में ही होते हैं और वे भी अपना कार्य अवश्य करते हैं।

आचार्य पूज्यपादजीने भी परिषहों का उपचार होना लिख दिया, किन्तु वह दलील कमजोर थी अत एव उन्होंने "न सन्तीति" कल्पना भी बताई, अन्ततः "एकादश जिने" इस पाठ के सामने वह कल्पना भी निराधार बन जाती है। वास्तव में केवली भगवान को ११ परिषह हैं और वे सहने पड़ते हैं।

दिगम्बर–मोहनीय कर्म न होने से वे सताते नहीं हैं।

जैन–अशाता वेदनीय व परिषह अपना २ कार्य करते हैं किन्तु उनसे केवली भगवान को ग्लानि नहीं होती है। कारण? अरतिका अभाव है। किन्तु इससे यह नहीं माना जाय कि केवली भगवान को अशाता व परिषह नही होते हैं।

दिगम्बर–कर्मप्रकृतिओं का आपस २ में संक्रमण भी होता है तो अशातावेदनीय का शाता के रूप में संक्रमण हो जायगा।

जैन–दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रसूरिने १३ वे गुणस्थान में संक्रमण की मना की है।

(गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ४४२)

अतः वहां संक्रमण मानना ही भूल है। अशाता वेदनीय अशाता रूप से ही उदयमें आवेगी, और उसको वैसे ही भोगनी पड़ेगी।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सारांश यह है कि-केवली भगवान को भूख प्यास वगैरह होते हैं और वे आहार पानी लेते हैं।

दिगम्बर—केवली भगवान किस कारणसे आहार लेवे? दिगम्बर शास्त्रमें आहार के त्याग और स्वीकार के लिये निम्न कारण माने हैं।

छहिं कारणेहिं असणं, आहारंतो वि आयरदि धम्मं।
छहिं चेव कारणेहिं दु, णिज्जुहवंतो वि आचरेदि ॥५९॥
वेणयं वैयावच्चे, किरियाट्ठाणेयं संजमट्ठाए।
तथापाण धम्मचिंन्ता, कुज्जा एदेहिं आहारं ॥६०॥
आदंके उवसग्गे, तितिक्खणे बंभचेरगुत्तीओ।
पाणिंदया तवहेऊ, सरीरपरिहारं वुच्छेदो ॥६१॥

टीका—तितिक्षणायां ब्रह्मचर्यगुप्तेः सुष्ठु निर्मलीकरणे,
सप्तमधातुक्षयाय आहारव्युच्छेदः ॥६१॥
ण बलाउसादु अट्ठं, ण सरीरस्सुवचयट्ठ तेजट्ठं।
णाणट्ठ संजमट्ठं, झाणट्ठं चेव भुंजेज्जो ॥६२॥

(मूलाचार परिछेद ६ पिंडविशुद्धि अधिकार)

जैन—केवली भगवान शरीर, संयम, धर्म और शुक्ल ध्यान आदि के कारण आहार लेते हैं, और आहारत्याग भी करते हैं।

दिगम्बर—दिगम्बरीय शास्त्रमें तीन आहार व चार आहार के त्यागरूप तपस्या है, जिसके नाम चतुर्थ भक्त छट्ठ अट्ठम दशम वगैरह हैं। देखिये—

(१) खवणं छट्ठ ट्ठम दसम खमणं, खमणं च छट्ठ अट्ठमयं।
खमणं खमणं खमणं, छट्ठं च गदेस्सिमो छेदो ॥७८॥

(आ० इन्द्रनन्दिकृत छेदपींडम्)

(२) रत्ति गिलाणभत्ते चउविह एकम्हि छट्ठखमणाओ।
टीका—रात्रौ व्याधियुते चतुर्विधाहारे ॥२९॥

(दिगम्बरीय छेद शास्त्रम्)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उपवासः प्रदातव्यः षष्टमेव यथाक्रमम् ॥३३॥

टीका–चतुर्विधे चतुष्प्रकारे अशने पाने खाद्ये स्वाद्ये च। उपवासः क्षमणं ॥

(प्रायश्चित्त चूलिका श्लो॰ ३३)

उपवास में गरम पानी पीने से उपवासका आठवां हिस्सा कम हो जाता है। +

(आ॰ सकलकीर्तिकृत प्रश्नोत्तरोपासकाचार पौषधोपवासकथन, चर्चासागर, चर्चा ३५.)

दिगम्बरोंकी तपस्याकी परिभाषामें छट्ठ अट्ठम वगैरह शब्द-प्रयोग किये गये हैं इसी प्रकार सामान्य तपस्या के लीए "योगधारण" इत्यादि शब्दप्रयोग भी किये गए हैं। *

+ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी "अंग्रेजी जैन गजट" (जुलाई का सार) शीर्षक लेख में लिखते हैं कि:–

"नोट–भादों मास में जैन समाज में स्त्रीपुरुष बहुत उपवास करते हैं सो लाभप्रद है, ऊपर के वर्णन से यह सिद्ध है कि–चार प्रकार के आहारको त्यागते समय शुद्ध प्रासुक पानी रख लेना चाहिये।

यह बात अनुभवसे सिद्ध है कि–पानी के बिना उपवासके दिन बहुत आकुलता हो जाती है। धर्मध्यान भी कठिनता से होता है। श्वेताम्बर समाज में पानी को रख कर उपवास करने का रिवाज है, सो ठीक विदित होता है। जिनको आकुलता बिल्कुल न होवे तो पानी भी न लेवें परन्तु डाक्टरी सिद्धान्त में पानी लेना लाभकारी है। गृहस्थ को हर अष्टमी चौदशको पानी लेते हुए उपवास करना ही चाहिये।"

(ता. २१–७–३९ वी. सं. २४६४ श्रा. व॰ ९ का जैनमित्र, पु. ३९ अं. ३७ पृ॰ ५९४–५९५)

* आदिपुराणादि ग्रन्थोमें छह महिना तपश्चरण के पश्चात् पारणा के लिए चर्याको जानेका उल्लेख है और अंतराय होने पर पुनः छह महिना का योग धारण करने का विधान किया गया है। इस तरह आदि पुराणादि ग्रन्थों से भी एक वर्ष में पारणा होने की बात सिद्ध हो जाती हैं।

(पं. परमानन्द जैन शास्त्रीका "त्रिलोकप्रज्ञप्तिमें उपलब्ध ऋषभदेव चरित्र" लेख, अनेकांत व॰ ४, कि॰ ५. पृ॰ ३१० की टीपणी.)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यदि केवली भगवान आहार लेते हैं तो क्या उक्त्य तप भी करते हैं?

जैन–हाँ, वे आहार के अभावरूप तप भी करते हैं।

दिगम्बर–केवली भगवान के आहार और तप के लिये शास्त्र-प्रमाण दीजिये!

जैन–दिगम्बर शास्त्रों में केवली भगवान के आहार और तपके प्रमाण ये हैं।

(१) सर्व मान्य आ० श्री उमास्वातिजी कहते हैं—

एकादश जिने। (तत्त्वार्थ० अ० ९ सू० ११)

केवली भगवान को ११ परिषह होती हैं माने शुद्ध आहार पानी मिलने पर क्षुधा और प्यास का शमन होता है।

(२) आ० कुन्दकुन्द बताते हैं कि–

गइ इंदियं च काए, जोए वेए कसाय णाणे य।
संजम दंसण लेसा, भविया सम्मत्त सण्णि आहारे ॥३३॥

टीका–आहारे आहारकद्वयमध्येऽर्हत आहारकानाहारकद्वयं।

यहाँ टीकाकार ने आहारक शब्द बना लिया है वह उसका अनाभोग है। वास्तविक बात यह है कि-केवली भगवान आहार लेते हैं, नहीं भी लेते हैं, आहारी हैं, अनाहारी भी हैं॥

आहारो य सरीरो, तह इंदिय आण पाण भासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो, उत्तमदेवो हवइ अरुहो ॥३४॥
पंच वि इंदिय पाणा, मण वय काएण तिन्नि बलपाणा,
आणप्पाणप्पाणा, आउग पाणेण होंति दह पाणा ॥३५।

(बोधप्राभृत)

(३) आ० समन्तभद्रजी लिखते हैं कि—

बाह्यं तपः परम दुश्चरमाचरंस्त्वं।
आध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम्॥
ध्यानं निरस्य कलुषद्वयमुत्तरस्मिन्।
ध्यानद्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥८३॥

(बृहत्स्वयंभूस्तोत्रम्)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(४) आ० शाकटायन स्पष्ट करते हैं—

अस्ति च केवलिभुक्तिः, समग्रहेतुर्यथा पुराभुक्तेः।
पर्याप्ति–वैद्य–तैजस–दीर्घायुष्कोदयो हेतुः ॥१॥
तैजससमूहकृतस्य, द्रव्यस्याऽभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या।
अनुत्तरपरिणामे क्षुत्क्रमेण भगवति च तत् सर्वम् ॥९॥
नष्टविपाका क्षुदिति, प्रतिपत्तौ भवति चागमविरोधः।
शीतोष्णक्षुदुदन्या–ऽऽदयो हि ननु वेदनीय इति ॥१३॥
रत्नत्रयेण मुक्तिर्न विना तेनास्ति चरमदेहस्य।
भुक्त्या तथा तनोः स्थितिरायुषि न त्वनपवर्त्येऽपि ॥१९॥
अपवर्तहेत्वभावे, ऽनपवर्तनिमित्तसंपदायुष्कः।
स्याद् अनपवर्त इति, तत् केवलिभुक्तिं समर्थयते ॥२५॥
कायस्तथाविधोऽसौ, जिनस्य यद् भोजनस्थितिरितीदम्।
वाङ्मात्र नात्रार्थे, प्रमाणमाप्तागमोऽन्यद् वा ॥२६॥
अस्वेदादि प्रागपि, सर्वाभिमुखादि तीर्थंकरपुण्यात्।
स्थितनखतादि सुरेभ्यो, न क्षुद् देहान्यता वास्ति ॥२७॥
भुक्तिर्दोषो यदुपोष्यते, न दोषश्च भवति निर्दोषैः।
इति निगदतो निष्पद्या–हेति न स्थान–योगादेः ॥२८॥
रोगादिवत् क्षुधो, न व्यभिचारो वेदनीयजन्मायाः।
प्राणिनि "एकादश जिन" इति जिनसामान्यविषयं च ॥२९॥
तैलक्षये न दीपो, न जलागममन्तरेण जलधारा।
तिष्ठति, तथा तनोः स्थितिरपि न विनाहारयोगेन ॥३१॥
विग्रहगतिमापन्नाऽऽद्यागमवचनं च सर्वमेतस्मिन्।
भुक्तिं ब्रवीति तस्माद्, द्रष्टव्या केवलिनि भुक्तिः ॥३५॥
तस्य विशिष्टस्य स्थिति–रभविष्यत् तेन सा विशिष्टेन।
यद्यभविष्यदिहैषां, शालीतरभोजनेनेव ॥३७॥

(केवलिभुक्तिप्रकरणम्)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(५) आ० पूज्यपाद तीर्थंकर का तप फरमाते हैं—

ऋजुकूलायास्तीरे, शालद्रुमसंश्रिते शिलापट्टे।
अपराह्ने षष्ठेनाऽऽस्थितस्य खलु जृंभिकाग्रामे ॥११॥

यह भगवान का आखिरी छद्मस्थ तप है। वैसे तीर्थंकर भगवान् केवली जीवन में भी तप करते हैं। केवली तीर्थंकर खाते हैं पीते हैं और तप भी करते हैं, देखिये—

आद्यश्चतुर्दशदिनै-र्विनिवृत्तयोगः।
षष्ठेन निष्ठितकृतिर्जिनवर्धमानः।
शेषा विधूतघनकर्मनिबद्धपाशाः।
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन् वियोगाः ॥२६॥

(निर्वाणभक्ति श्लो० २६)

मोक्ष जाने से पहिले केवली भगवान् आदिनाथने चौदह दिन के उपवास किये, केवली तीर्थंकर श्री वर्धमान स्वामी ने षष्ठ तप किया, और शेष २२ केवली तीर्थंकरोंने एक महिने का अनशन तप किया। अंतमें ये सब कर्मपाश को तोडकर अयोगी-अशरीरी बने व मोक्षमें पधारे, यह निर्वाण तप है। यहाँ षष्ठ शब्द का अर्थ दो दिन किया जाय तो वह भ्रम है, यह शब्द दिगम्बर परिभाषामें भी तपस्या का ही सूचक है, इससे षष्ठ का अर्थ बेला—तप ही होता है। इस निर्वाण तपके पाठसे स्पष्ट है कि-केवली भगवान् केवली जीवन में आहारपानी लेते हैं, सीर्फ निर्वाणसे अमुक दिन पहिले आहार पानी को छोड देते हैं, और द्रव्य मन, वचन, और काया की क्रियाओं को तो अयोगी स्थान में जाने पर ही रोक देते हैं।

श्वेताम्बर मान्यता में भी तीर्थंकरों का निर्वाणतप उपरोक्त पाठ के अनुसार ही है या कहा जाय कि उक्त पाठ श्वेताम्बर मान्यता का प्रतिघोष ही है। देखिये, चतुर्दश पूर्वधारी श्री भद्रबाहुस्वामी फरमाते हैं कि--

निव्वाणमंतकिरिया, सा चौदसभत्तेण पढमनाहस्स।
सेसाण मासिएणं, वीरजिणिंदस्स छट्ठेणं॥ ॥३०६॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अट्ठावयम्मि सेले, चौद्सभत्तेण सो महारिसिणं।
दसहिं सहस्सेहिं, समं निव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥४३४॥

(आवश्यकनिर्युक्ति, गा० ३०६, ४३४)

(६) आ० शुभचन्द्रजीने "क्रियाकलाप" के निर्वाणसूत्र में भगवान् महावीरस्वामी का निर्वाण तप "छट्ठ" बताया है। इसी प्रकार सब तीर्थंकरों को विभिन्न निर्वाण तप है।

(७) आ० नेमिचन्द्रजी फरमाते हैं—
सयोगि केवली भगवान को बंध में १, उदय में ४२, उदीरणा में ३९ और सत्ता में ८५ प्रकृति होती हैं।

(गोम्मटसार कर्मकांड गा० १०२, २७१, २७२, २७९ से२८१, ३४०, ३४१)

जोगिम्हि य समयिक ट्ठिदि सादं (गो. क. १०२)

माने-केवली भगवान शाता वेदनीय को बांधते हैं, जिसकी स्थिति एक समय की होती है।

तदियेक्क-वज्ज-णिमिणं, थिर-सुह-सर-गदि-उराल-तेजदुगं।
संठाणं वण्णा-गुरुचउक्क पत्तेयं जोगिम्हि ।२७१॥

तदियेक्कं मणुवगदी, पंचिंदियसुभगतसतिगाऽऽदेज्ज।
जसतीत्थं मणुवाऊ, उच्चं च अजोगि चरिमम्हि ॥२७२॥

माने-केवली भगवान को एक वेदनीय, वज्रऋषभनाराच संहनन, निर्माण, स्थिर शुभ स्वर गति औदारिक और तेज का युग्म, संस्थान, वर्णादि चार, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उश्वास, प्रत्येक, दूसरा वेदनीय, मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, सुभग, त्रस, बादर, पर्याप्त, आदेय, यश, तीर्थंकर, मनुष्यायु और उच्च गोत्र ये ४२ प्रकृतियां उदय में होतीं हैं। इनमें से अंत की १२ प्रकृतियाँ अयोगीकेवली को भी उदय में होती हैं। (गो० क० २७१, २७२)

वेदनीय, संहनन, निर्माण, औदारिक युग्म, तैजस, पर्याप्त, मनुष्यायु वगैरहका उदय है वहाँ तक आहार अनिवार्य है।

केवली भगवान को शाता अशाता और मनुष्यायु सिवायकी सब उदय प्रकृति, यानी ३९ प्रकृतिओं की उदीरणा होती है।

(गो० क० गा० २७९ से २८१)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

केवली भगवानको ६३ प्रकृतिके क्षय होनेसे शेष ८५ प्रकृतियां सत्ता में रहती हैं, वे ये हैं—

५. शरीर, ५. बन्धन, ५ संघात, ६ संस्थान, ६ संहनन, ३ अंगोपांग, २० वर्णादि, २ शुभ, २ स्थिर, २ स्वर, २ देवगति देवानुपूर्वी २ विहायोगति, दुर्भग, निर्माण, अयश, अनादेय, प्रत्येक, अपर्याप्त, ४ अगुरुलघु, एक वेदनीय, नीच गोत्र मनुष्यानुपूर्वी और १२ अयोगि की उदय प्रकृतियां, इनमें से अन्तकी १३ प्रकृतियां अयोगि केवली को भी सत्ता में रहती हैं।

(गोम्मटसार कर्म्मकांड गाथा ३४०–३४१)

(ब्र. शीतलप्रसादजीका मोक्षमार्ग प्रकाशक भा. २ पृ० ८७)

वेद से आहार तक की १० मार्गणाओं में, अपने २ गुणस्थानकी सत्ता होती है।

(गोम्मटसार, कर्मकांड, गा० ३५४, जीवकांड ७२३)

इस तरह केवली भगवानके आहार की स्वीकृति दी गई है।

विग्गहगदिमावण्णा, केवलिणो समुग्घदो अजोगी य।
सिद्धा य अणाहारा, सेसा आहारया जीवा ॥६६५॥

अर्थ—१ विग्रह गतिवाले, २ केवली समुद्घातवाले केवली, ३ अजोगी केवली और ४ सिद्ध ए अणाहारी हैं इनके सिवाय के सब जीव आहारी हैं।

(गोम्मटसार जीवकांड गाथा ६६५)

दिगम्बर टीका-भाषाकारों ने इस गाथा के अर्थ में केवली भगवानका अलग नम्बर लगाकर पांच अणाहारी गिनाये हैं, मगर वह उनका केवलीभुक्ति-निषेधरूप ख्याल का ही परिणाम है।

यदि केवली नामको अलग करके सब केवली अणाहारी मान लिये जाँय तो अकेले समुद्घात शब्द से सातों समुद्घातवाले अणाहारी माने जावेंगे और अजोगी शब्द से केवलज्ञानरहित किसी अयोगिकी कल्पना करनी पडेगी या पुनरुक्ति माननी पड़ेगी, जो कल्पना या मान्यता दिगम्बर शास्त्र से प्रतिकूल है।

असल में आहारी और अणाहारीका विवेक किया जाय तो—जीवों के १४ भेदों में से विग्रह गतिवाले ७ अपर्याप्त और केवली समुद्घातवाले १ संज्ञी पर्याप्त एवं ८ ही अणाहारी होते हैं

(कर्मग्रन्थ, ४–१८)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अणाहार मार्गणा में १, २, ४, १३, १४, गुणस्थान हैं
(कर्मग्रन्थ, ४-३३) (मूलाचार परि० ५ गा० १५९ टीका)

अब इनका समन्वय किया जाय तो विग्रह गतिवाले, केवली समुद्घाती, अजोगी केवली और सिद्ध ही अणाहारी हैं ।

वास्तव में संसार में कार्मण काययोगी ही अणाहारी होते हैं। (कर्मग्रन्थ ३-२४, ४-२४) जब यहां तेरहवें गुणस्थानवाले सयोगी केवलीओं को तो सिर्फ कार्मणकाययोग नहीं किन्तु १५ में से ७ काययोग होते हैं (कर्मग्रन्थ ४।२८)

फिर ये अणाहारी कैसे माने जाय ?

दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रसूरि भी दिगम्बर विद्वान् उक्त गलती न करें, इस लिये साफ २ कार्मणकाययोगीको ही अणाहारी बता कर सिवाय के सब संसारियों को आहारवाले बताते हैं।

कम्मइयकायजोगी, होदि अणाहारयाण परिमाणं ।
तव्विरहिद संसारो, सव्वो आहार परिमाणं ॥

(गोम्मटसार जीवकांड गा० ६७०)

जो २ कार्मण कायजोगी हैं वे सब अणाहारी हैं । इसके सिवाय सब संसारी जीव आहारवाले हैं ।

अर्थात्-विग्रह गतिवाले, समुद्घाती केवली और अजोगी केवली ये ही अणाहारी हैं, सजोगी केवली आहारवाले हैं।

इस कथन से स्पष्ट है कि दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्रजी केवली भगवानको अणाहारी नहीं मानते हैं !

माने-केवली भगवान आहारी हैं-आहार लेते हैं ।

(८) रेवतीश्राविकया श्रीवीरस्य औषधं दत्तं । तेनौषधदानफलेन तीर्थंकरनामकर्मोपार्जितमत एव औषधिदानमपि दातव्यम् ।

(दि० सम्यक्त्वकौमुदी पृष्ठ ६५)

अर्थ-भगवान् महावीर स्वामी को गोशाले की तेजोलेश्या के कारण रोग हुआ था उस समय रेवती श्राविकाने कोलापाक (पैठा) वहराया था, उससे भगवानको रोगशमन हुआ और रेवती को तीर्थंकर नामकर्मका बंध हुआ । याने तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी आहार लेते थे, औषधि भी लेते थे ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(९) आ. श्रुतसागरजी तीर्थंकरों के अतिशय में बताते हैं कि कवलाहारो न भवति, भोजनं नास्ति।

अर्थ-अतिशय के कारण तीर्थंकर भगवान को कवलाहार होता नहीं है, वे भोजन करते नहीं है।

अर्थात् तीर्थंकर सिवाय के केवली भगवान कवलाहार लेते हैं, भोजन करते हैं।

(बोधप्राभृत गाथा ४१ की टीका, पृष्ठ ९९)

(१०) कम्मइय कायजोगो, विग्गहगइ समावण्णाणं, केवलीणं वा समुग्घाद गदाणं ।६८।

(षट्खंडागम, सूत्र ६८, पृ० २९८)

(११) आहारए इंदिय-पाहुडि जाव सजोगि केवलित्ति

(षट्खंडागम, सूत्र १७६ पृ० ४०९)

(१२) अणाहारा चदुसु ठाणेसु विग्गहगइसमावण्णाणं, केवलीणं वा समुग्घादगयाणं, अजोगिकेवली, सिद्धा, चेदि।

(षट्खंडागम, सूत्र १७७ पृ. ४१०)

दिगम्बर शास्त्रों के उक्त प्रमाण केवली भगवान के कवलाहार की गवाही देते हैं।

सारांश-केवली भगवान कवलाहार करते है।

दिगम्बर-यदि दिगम्बर शास्त्र ही केवलिआहार का विधान करते हैं तो निःशंक मानना पडता है कि केवली कवलाहार लेते हैं। क्या उनको रोग भी होता है ?

जैन-रोग होता है इस लिए तो केवली भगवान को अशाता का उदय माना जाता है, रोग परिषह भी माना जाता है ! हां तीर्थंकरों को अतिशय के जरिये रोग होने की मना है, किन्तु केवली भगवान को रोग होना सम्भव है,वेदनीय भोगना ही पड़ता है।

दिगम्बर-अगर केवली भगवान आहार ले तो निहार भी करे।

जैन-यह भी देह-प्रवृत्ति है. आहार और निहार ये दोनों सहकारी हैं। केवली भगवानको श्वासोश्वास है, मलपरिषह है; तीर्थंकरके सिवाय केवली को स्वेद है, छींक भी होती है, ये भी निहार ही हैं ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर–दिगम्बर शास्त्रो में तीर्थंकर वगैरहको निहारकी आजीवन साफ मना हैं। देखिये—

तित्थयरा तप्पियरा, हलहर चक्की य अद्धचक्की य।
देवा य भूयभूमा, आहारो अत्थि, णत्थि नीहारो ॥१॥
(आ० श्रुतसागरीय बोधप्राभृत टीका पृ० ९८)

तित्थयरा तप्पियरा, हलहर चक्कीइ वासुदेवाहि।
पडिवासु भोगभूमि य, आहारो णत्थि णिहारो ।१॥
(पं० चंपालालकृत चर्चासागर चर्चा–३)

माने–तीर्थंकर वगैरह को जन्मसे ही निहार नहीं होता है।

जन–महानुभाव ! आहार तो लेवे और निहार न करे यह दिगम्बरीय विज्ञान तो अजीब है। कुछ भी हो किन्तु तीर्थंकर, उनके पिता, चक्री, वासुदेव, युगलिक वगैरहको पुत्र पुत्री होते हैं संतान होती हैं रोग होता है, स्वेद है, मल परिषह है जब निहार होने में कोनसी रुकावट है ? फिर भी यह कथन सिर्फ तीर्थंकरके निहार की ही मना करता है केवली निहार के खिलाफ नहीं है। जहां आहार है वहां निहार भी है। केवली भगवान आहार लेते हैं और निहार करते हैं।

दिगम्बर–केवली का शरीर केवलज्ञानकी प्राप्ति होते ही परमौदारिक बन जाता है।

जैन–केवली या तीर्थंकर भगवान के शरीर को परमौदारिक मानना यह किसी भक्त या विद्वान की अतिशयोक्तिपूर्ण कल्पना ही है, यद्यपि उनका शरीर अतिशय सुन्दर होता है किन्तु वास्तव में तो औदारिक ही रहेता है। जो बात द्रव्यानुयोग के जरिये स्पष्ट है, देखिए।

(१) बारहवें क्षीणमोहनीय गुणस्थान में ऐसी कोई प्रकृतिका उदयविच्छेद परावर्तन या नामकर्मकी विशेष प्रकृति का उदय नहीं होता है कि सहसा तेरहवें सयोगी केवली गुणस्थानमें औदारिक शरीर परमौदारिक बन जाय।

(२) केवलज्ञानीको औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग, छ संस्थान, वर्णचतुष्क. निर्माण, तैजस, वज्र ऋषभनाराच संघयण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय, त्रस, बादर, प्रत्येक, पर्याप्त वगैरह प्रकृतिओं का उदय है, जो प्रकृतियां औदारिक शरीरको व्यक्त करती हैं।

(३) औदारिक काययोग, वचनयोग और मनोयोग होने के कारण "सयोगी" दशा है, जो औदारिक शरीर की ताईद करती है।

(४) केवलि समुद्घात होता है, वह भी केवली के औदारिक शरीर के पक्षमें ही है।

(५) वर्गणा भी औदारिक आदि आठ प्रकारकी ही हैं, उनसे अधिक वर्गणा नहीं है, और उन आठों में परमौदारिक नामवाली वर्गणा भी कोई नहीं है।

(६) "तत्तो रालिय देहो", माने-केवली भगवानको औदारिक शरीर है।

(मूलाचार, परि० १२ गा० २०६)

(७) कायजोगि-केवलीणं भण्णमाणे अत्थि एगं गुणट्ठाणं, एगो जीवसमीसो दो वा, छपज्जत्तिओ, चत्तारिपाण दोपाण, खीण सण्णाओ, मणुसगदी, पंचिंदिय जादी, तसकाओ, ओरालिय मिस्स-कम्मइय कायजोगो, इदि तिण्णिजोग, अवगद वेदो।

[छक्खंडागम, धवल टीका पु. २ पृ० ६४८]

(८) ओरालिय कायजोगीणं भण्णमाणे अत्थि तेरह गुणट्ठाणाणि, ++ ओरालिय कायजोगो।

[छक्खंडागम धवलटीका, पु० २, पृ० ६४९]

इन प्रमाणों से केवली भगवान के शरीर को औदारिक ही मानना प्रमाणसंगत है।

दिगम्बर—केवली को तेरहवें गुणस्थान में वज्र ऋषभनाराच संहनन है, यह बात तो ठीक है। दिगम्बर शास्त्र भी ऐसा ही मानते है। देखिए—

अपूर्वकरणाख्ये, चानिवृत्तिकरणाभिधौ।
सूक्ष्मादिसांपरायाख्ये, क्षीणकषायनामनि ॥१२७॥
सयोगे च गुणस्थाने, ह्याद्यं संहननं भवेत्।
केवले क्षपकश्रेण्यारोहणे कृतयोगिनाम् ॥१२८॥

क्षपकश्रेणी में ८ से १३ तक वज्रऋषभनाराच संहनन

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अयोगिजिननाथानां देवानां नारकात्मनां।
आहारकमनुष्याणां एकाक्षाणां वपुंषि च ॥१२९॥
यानि कार्मणकायानि व्रजतां परजन्मनि।
षण्णां सर्वशरीरिणां नास्ति संहननं क्वचित् ॥१३०॥

(सिद्धांतसारप्रदीप)

अर्थात्-सयोगी केवली को वज्रऋषभनाराच संहनन है मगर उनके शरीर में सातों धातु नहीं रहती हैं, केवलज्ञान होते ही उनके शरीर की सातों धातु विनष्ट हो जाती हैं, इस हालत में वह शरीर परमौदारिक माना जाता है। भूलना नहीं चाहिये कि-रस, खून, मांस, मेद, हड्डी, मज्जा और शुक्र ये सात धातु हैं तथा वात, पित्त, कफ, नस, स्नायु, चमडी और पेट ये उपधातु हैं।

जैन-दिगम्बर शास्त्रों में ही केवली के शरीर में सातों धातुएँ होने का विधान है। देखिये—

(१) केवली भगवान्‌को औदारिक आदि ४२ प्रकृतिओं का उदय है, उनमें से कई प्रकृति सातों धातुके लिये हैं। जैसा कि-

दिगम्बर ग्रन्थके अनुसार पर्याप्तकर्म, तैजसके सहयोग से आहार ग्रहण-पाचन, शरीर व इन्द्रियोंका निर्माण करता है!

निर्माणकर्म, अंग उपांग और धातुओंकी व्यवस्था करता है।

(मूला० प० १२ गा० १९६ टीका)

पंचेन्द्रिय औदारिक शरीर और औदारिक अंगोपांग, ये पंचेन्द्रिय योग्य नस-हड्डी आदि युक्त, शरीर बना रखते हैं

वज्रऋषभ नाराच संहनन रस हड्डी और ग्रन्थिओं को वज्र के समान बना रखता है।

वर्णादि चतुष्क खून मांस और चमड़ी में ५ रंग ५ रस २ गंध और ८ स्पर्श को जमा रखता है।

उपघातकर्म शरीर में नुकसान करने वाले अंगोपांग और मांस ग्रन्थी आदि को बनाता है।

स्थिर अस्थिर नामकर्म "थिरजुम्मस्स थिराथिर रस रुहिरादीणि" (गो० क० गा० ८३)

शरीर की सातों धातु और उपधातुओं को स्थिर और अस्थिर रखते हैं!

(गोम्मटसार, मूलाचार परि० १२ गा० १९६ टीका पृ० ३११)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उदय प्राप्त प्रकृति निरर्थक नहीं होती है वो अपना कार्य अवश्य करती है। इन उदय प्रकृतिओं से सिद्ध ह कि केवलीओं के शरीर में ७ धातुएं हैं।

(२) ब्र० शीतलप्रसादजी केवली के शरीर में नख त्वचा रोंआ और त्वचा पर की महीन झिल्लीका भी भेद बताते हैं। (चर्चासागर समीक्षा पृ. ८०) जब सात धातुओं का अभाव कैसे माना जाय?

(३) तीर्थंकरों के ३४ अतिशय में एक अतिशय यह है कि तीर्थंकरों के खून और मांस सफेद होते हैं—

केशः श्मश्रु च लोमानि नखाः दंताः शिरास्तथा।
धमन्यः स्नायवः शुक्र-मेतानि पितृजानि हि॥

(चर्चासागर, चर्चा १९९)

पितृ प्राप्त केश वगैरह रहें और दांत नख शुक्र वगैरह न रहें, यह असम्भवित है। पुंवेद में मोक्ष माननेवाली समाज स्त्री प्राप्त नहीं किन्तु पुरुषप्राप्त अंगोंका निषेध करे, यह भी एक विसंवाद है।

(४) आ० कुन्द कुन्द फरमाते हैं कि—अरिहंत भगवान् को १० प्राण, ६ पर्याप्ति, १००८ लक्षण और गाय के दूधसा सफेद माँस तथा सफेद रुधिर होते हैं।

(बोध प्राभृत गा० ३१। ३८)

(५) केस णह मंसु लोमा, चम्म वसा रुहिर मुत्त पुरिसं वा।
णेवट्ठी णेव सिरा, देवाण सरीर संठाणे॥

(मूलाचार अ० १२ श्लो० ११। चर्चा सागर चर्चा १९९)

संहनन रहित देवों को केश आदि का अभाव होता है, अर्थापत्ति से मानना पड़ेगा, कि—संहनन वाले को ये सब वस्तुएं होती हैं-रहती हैं।

(६) १२ प्रकृति "ध्रुव उदय" कहलाती हैं, जो सबके उदय में रहती हैं। वे ये हैं—तैजसशरीर, कार्मणशरीर, वर्णादि चतुष्क, अगुरुलघु, निर्माण, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ १२।

(ब्र० शीतलप्रसादकृत मोक्षमार्ग प्रकाशक भा० २ अध्या० ४ नामकर्मके उदयस्थान, पृ० १५१)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जो प्रकृति ध्रुवउदयी है, उसका कार्य न होवे, यह कैसे हो सकता है? उदय प्रकृति अपना कार्य अवश्य करती है, उक्त १२ प्रकृति धातु और उपधातु में अपना कार्य अवश्य करती हैं।

(७) (जीने) तेरहवें गुणस्थानवर्ती जिनमें अर्थात् केवली भगवान के (एकादश) ग्यारह परिषह होती हैं। छद्मस्थ जीवों के वेदनीय कर्म के उदय से क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंश मशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ग्यारह परिषह होती हैं, सो केवली भगवान् के भी वेदनीय का उदय है इस कारण केवली के भी ग्यारह परिषह होना कहा है।

(मोक्षशास्त्र श्रीयुत पन्नालालजी विरचित भाषा टीका,
जैनग्रन्थ रत्नाकर ११ वां रत्न, पृ. ८३)

ये सब परिषह केवली भगवान के शरीर में धातु और उपधातुओं का होना सिद्ध करते हैं।

(८) गजसुकुमाल आदि अन्तकृत केवली को अंगारादिका दाह होना माना गया है तथा पांडवों को भी गरम लोहे की जंजीर का उपसर्ग होना, माना गया है।

वास्तव में केवल ज्ञानीओं के शरीर में सात धातुएं व उपधातुएं हैं और अंगारादि से उनको दाह होता है यह मानना अनिवार्य होगा।

ये सब प्रमाण केवलीओं के शरीर में सात धातुओं का अस्तित्व बताते हैं और परमौदारिकता के विपक्ष में जाते हैं।

दिग–दिगम्बर शास्त्र के अनुसार जब केवली भगवान का निर्वाण होता है तब उनका शरीर बिखर जाता है

कारण? वे सात धातुओंसे रहित हैं परमौदारिक हैं।

जैन–दिगम्बर शास्त्र निर्वाण के बाद भी केवली का शरीर कायम रहता है ऐसा मानते हैं–देखिए–

(१) परिनिर्वृत्तं जिनेन्द्रं, ज्ञात्वा विबुधा ह्यथाशु चागम्य।
देवतरु रक्तचंदन कालागुरु सुरभि गोशीर्षैः। १८
अग्नीन्द्राज्जिनदेहं, मुकटानलसुरभि धूपवरमाल्यैः
अभ्यर्च्य गणधरानपि गता दिवं खं च वनभवने। १९

(श्री पूज्यपाद स्वामीकृत, निर्वाणभक्ति)

(२) भगवान महावीर स्वामी मोक्षपधारे ऐसा जानकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इन्द्रादिक देव बहुत शीघ्र आये। उन्होंने भगवानके शरीरकी पूजा की और फिर देवदारु लालचन्दन, कालागुरु [कृष्णागुरु] और सुगंधित गोशीर्ष नामके चन्दनसे अग्निकुमार देवोंके इन्द्रके मुकुटसे निकली हुई अग्निसे तथा सुगन्धित धूप और उत्तम मालाओंसे भगवान के शरीर का अग्नि संस्कार किया। फिर देवोंने गणधरोंकी पूजा की।

(पं. लालारामजी जैनशास्त्री अनुवादित "दशभक्त्यादि संग्रह, निर्वाण भक्ति पृ. १२६)

(३) केवली भगवान् समुद्घात करते हैं जब सब जीव प्रदेशको अलग २ करके लोकाकाशको भर देते हैं। फिर भी उनका शरीर विखरता नहीं है, तो क्या कारण है कि निर्वाण होते ही उनका शरीर विखर जाय?

(४) मोक्ष जानेके बाद भी तो भगवान् का परमौदारिक शरीर रह जाता है, तब पांडेजीकी बुद्धिमें क्षपकश्रेणी चढते ही कैसे उड़ जाता होगा सो समझ में नहीं आता।

(पं॰ परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थकृत—चर्चासागर समीक्षा. पृ॰ १०७)

(५) तीर्थंकरके शरीरका अग्नि संस्कार होता है राख होती है वहाँ निर्वाण तीर्थ बनता है।

(नन्दीश्वर भक्ति श्लो॰ ३१-३२)

इन प्रमाणोंसे स्पष्ट है कि केवली भगवानका शरीर औदारिक है और निर्वाण के बाद नहीं विखरता है।

दिगम्बर—हमारे विद्वान् कहते हैं कि जहाँ केवली भगवान् का शरीर आकाश में कपूरके समान उड़ जाता है, जहाँ उनके केश और नख गिरते हैं, वहाँ तीर्थ स्थापना होती है। श्वेताम्बर तो भगवानके शरीरका अग्नि संस्कार मानते हैं साथ २ उनकी दाढ वगैरह को देव ले जाते हैं ऐसाभी मानते हैं दिगम्बर इस में सहमत नहीं हैं।

जैन—केश और नख जो कि शरीरके ऊपरकी वस्तु हैं उनके आधार पर तीर्थ मानना, और सात धातुओंका उड़ना मानना कहीं संभव हो सकता है? मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि किसी तेरहपंथी विद्वान्ने हिन्दी भाषामें कल्पना करके वह लिख दिया होगा। प्राचीन दिगम्बर शास्त्रोंमें इन बातों का सबूत मिलना मुश्किल है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीर्थंकरोंके शरीर का रहना, पूजा व अग्नि संस्कार होना यह तो दिगम्बर शास्त्रोंमें स्वीकृत है, फिर उनकी दाढाएं वगैरह को देव ले जाते हैं, यह तो भक्तिका कार्य है अतः यह होना भी ठीक मालूम होता है। सारांश-यह है कि केवली का शरीर कवलाहारसे वर्धित एवं औदारिक होता है। सात धातु वाला होता है। और उसका अग्नि संस्कार होता है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि केवली भगवानको उपसर्ग भी होते हैं।

जैन-दिगम्बर आचार्य "एकादशजिने" इस मोक्ष शास्त्र के सूत्रानुसार केवली भगवान् में ११ परिषह मानते हैं। पांडवोंने तप्तलोह शृंखलाका और गजसुकुमालादि अन्तकृत् केवलीने अंगार आदिका परिषह सहा था यह बात दिगम्बर पुराणोंमें उल्लिखित है। इसी ही तरह केवलीकी निर्भयता आदिकी परीक्षा करनेके लिये देवादि उपसर्ग करे तो संभवित है, यद्यपि वह आश्चर्य रूप है पर उपसर्ग होना संभवित है। वध, केवलीओंके ११ परिषहोंमेंसे एक है उसकी उपस्थिति में उपसर्ग का एकान्त अभाव कैसे माना जाय? दिगम्बर मतमें सिर्फ तीर्थंकरोंके लिये १५ वां उपसर्गा-भावरूप अतिशय माना गया है जब केवलीओंको उपसर्ग होनेकी स्वीकृति मिल ही जाती है।

दिग०-क्या केवली के शरीर से दूसरे प्राणी का वध होता है?

जैन-केवली से चिकीर्षा पूर्वक प्राणिवध नहीं होता है किन्तु परिषहोंमें कभी अग्नि आदिके जीवोंको बाधा होती है, मच्छर आदि पुष्ट होते हैं, कभी उनमेंसे किसीको नुकसान भी होता है।

दिग०-प्रायः दो केवली नहीं मिलते हैं, किन्तु अगर वे मिलें तो क्या परस्पर का विनय करते हैं? विनय शुद्धि रखते हैं?

जैन-केवली भगवान् अविनित रुखे या व्यवहार शून्य नहीं होते हैं, अतः तीर्थंकर आदि का विनय करते हैं, व्यवहार शुद्धि भी रखते हैं,। इसके अलावा दुसरे जीवोंके आत्म कल्याणमें अपना अवश्यंभावी निमित्त होता है तो उनके लिये निमित्त रूप बनते हैं। जैसा कि केवली विहार करते हैं किन्तु व्यवहार शुद्धि के लिये रात्रि को विहार नहीं करते हैं। केवली बाहुबलीजीने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्यवहार शुद्धिके लिये और तीर्थंकर पदकी प्रतिष्ठा के लिये भगवान् ऋषभदेवका प्रदक्षिणापूर्वक विनय किया। केवलीनी साध्वी "पुष्पचूला" अरण्यक गुरु को आहार पानी ला देती थी।

केवली भगवान प्रश्नकारको पूर्व भव बताते हैं, विहार करते है, दिक्षा देनेको पधारते हैं। केवलीनी साध्वी "मृगावती"ने अपनी गुरुणीजीसे सर्पका निवेदन किया और उनके लीए केवल ज्ञान पानेका पूर्व पूर्वतर कारण खड़ा कर दिया।

एक छद्मस्थ मुनिजीने "चन्डरुद्राचार्य" गुरु को कंधेसे उठा कर विहार किया। उसी हालतमें शिष्य को केवलज्ञान हो गया इस पर भी उसने गुरु को उठा ही रक्खा और विहार जारी रक्खा, बादमें उस निमित्तसे गुरु को भी केवलज्ञान हुआ। यहाँ विनय, व्यवहार शुद्धि, अवश्यंभावी, स्वनिमित्त और चर्यापरिषह वगैरह सब मिले हुए हैं।

कपील केवलीने भी कुछ विशेष निमित्तरूप बनकर ५०० चौरोंको प्रतिबोध दिया।

दिगम्बर—श्वेतांबर मानते हैं कि—कपिल केवलीने चारों को प्रतिबोध देने के लिये नाच किया था।

जैन—केवलीओं की प्रवृत्ति बेकार नहीं होती हैं। उनकी प्रवृत्ति फल सापेक्ष होती है देखिए—

दिगम्बर मानते हैं कि ऋषभदेव भगवान् ज्ञानी थे फिर भी दीक्षा के बाद ६ माह तक आहार के लिये फिरे।

तीर्थंकर सामोसरन में जाकर बैठते हैं।

स्वर्ण कमल पर विहार करते हैं।

कपिल केवलीने भी नाच नहीं किया. किन्तु प्रतिबोध के लिये जो हाथ पैर की प्रवृत्ति की वह छद्मस्थ के लिये तो नाच ही है।

केवलीओं का अवश्यंभावी निमित्त हो वहां उनकी वैसी ही प्रवृत्ति होती है। वे विहार करते हैं, वैसे ही हाथ पैर को हिलाते हैं। यह औदयिक कर्म प्रवृत्ति है, केवली भगवान को अस्थिर नाम कर्म भी उदय में रहता है।

दिगम्बर—श्वे० मानते हैं कि—कुर्मापुत्र केवली, केवल होने पर भी कुछ काल तक घर में ठहरे थे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—केवली भगवान में न मोहनीय है, न आसक्ति है। उनको तो शातावेदनीय, अशातावेदनीय, अशुभ नाम कर्म का उदय रहता है। परिषह और अनुकूल प्रतिकूल उपसर्ग भी होते है, धवला टीका के निर्माता ने सूत्र १२९ की टीका में, " न तावद्राजादि लक्षणायां संपदि [व्यापारः] तस्याः सद्वेद्यतस्समुत्पत्तेः लिखकर राज्यादि सुखों को भी शातावेदनीय में सामील माने हैं। होनहार तो होता ही है इस हालत में वैसा बनना भी असंभव नहीं है।

दिगम्बर—तब तो केवलज्ञान के पाने के लिये जो विशिष्ट मुद्रा होना आवश्यक है वह बात भी न रहेगी।

जैन—दिगम्बर शास्त्र में भी कुछ ऐसा ही उल्लेख है। देखिए

(१) तेरहवे गुणस्थानमें छै संस्थान होते हैं, माने-केवली भगवानको कुब्ज व हुंड संस्थान भी रहते हैं। इस हालतमें नीयत आसन और मुद्रा का प्रश्न ही बेकार है।

(२) बारहवे गुणस्थान तक दर्शनावरणीय कर्म, निद्रा और प्रचला का उदय हो सकता है।

इस दशामें विशिष्ट आसन का एकान्त नियम कैसे माना जाय?

(३) दिगम्बर प्रतिमा विधानमें तीर्थंकरकी दृष्टि ऊंची या नीची हो तो नुकसान बताया है और समदृष्टि हो तो लाभ बताया है। माने मुंदे हुए नेत्र सप्रमाण नहीं हैं। इससे भी स्पष्ट है कि केवली भगवान्की विशिष्ट मुद्रा नहीं है।

(४) दिगम्बराचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्तिने त्रिलोकसारमें नंदीश्वरद्वीप की जिनप्रतिमाओंका वर्णन करते हुए बताया है कि—

सिंहासणादिसहिया, विणील कुंतल, सुवज्जमयदंता।
विद्दुमअहरा, किसलय-सोहायर हत्थपायतला॥९८५॥

दसताल माण लक्खण भरिया पेक्खंत इव वदंता वा।
पुरुजिण तुंगा पडिमा, रयणमया अट्ठ अहियसहिया॥९८६॥

माने—उन जिन प्रतिमाओंमें नीले केश वज्रमय दांत, लाल होठ, किसलयसे हाथपेरके तलीये १० ताल प्रमाण नाप व लक्षण

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

हैं। वे देखती हो, बोलती हो ऐसी भगवान आदिनाथके समान ५०० धनुष्य ऊंची रत्नमय १००८ जिन प्रतिमाएं हैं।

स्पष्ट बात है कि जिनेश्वरकी आंखे खुली हुई रहेती है।

(५) पं. द्यानतराय कृत दिगम्बरीय नंदीश्वर द्वीप पूजा में अकृत्रिम प्रतिमाओं का स्वरूप बताया है कि—

शैल बत्तीस ३२ एक सहस जोजन कहे।
चार ४ सोलह १६ मिले सर्व बावन ५२ लहे॥
एक इक शीष पर एक जिनमंदिरं।
भवन बावन्न ५२ प्रतिमा नमों सुखकरं॥६॥
बिंब अठ एक सौ १०८ रतन मई सोह हीं।
देव देवी सरव नयन मन मोहहीं॥
पाँच सौ ५०० धनुष तन, पद्म आसन परं।
भवन बावन्न ५२ प्रतिमा नमों सुखकरं॥७॥
लाल-नख-मुख, नयन श्याम अरु श्वेत हैं।
श्याम रंग भोंह-सिर केश, छबि देत हैं।
बचन बोलत मनो हँसत कालुष हरं।
भवन बावन्न ५२ प्रतिमा नमों सुखकरं॥८॥

माने—अकृत्रिम जिन प्रतिमाओं का मुख लाल है नखून लाल हैं आँख सफेद है। बीचमें काला रंग है। आँखकी भौंह-काली हैं शिरके केश काले हैं। जिनमुद्रा भी वास्तवमें ऐसी ही होती है। अतः अकृत्रिम प्रतिमाकी मुद्रा भी ऐसी बनाई है। कृत्रिम प्रतिमा बनानेवाले भी आँख वगैरह में ऐसा ही रंग लगावे तब ही दिगंबर शास्त्र प्रमाण प्रतिमा बन सकती है। आज कल दिगम्बर समाजमें आँख रहित और तंबोल आदि रंगसे रहित जो प्रतिमाएं बनाई जाती हैं-रक्खी जाती हैं, वे सब दिगम्बर शास्त्र से विरुद्ध एवं कल्पित हैं।

(६) दिगम्बर सम्मत तीर्थंकर के ३४ अतिशय में नेत्रों में मेषोन्मेष के अभावको अतिशय माना है, तब भी तीर्थंकरके सिवाय केवली भगवान् में मेषोन्मेष सिद्ध हो जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(७) नंदीश्वर भक्ति श्लो० ३१-३२ में गिरितल, दर्रे, गुफाएँ-नदी-वन-वृक्षके स्कंध जलधि और अग्निशिखा इत्यादि स्थान से साधुओंका निर्वाण होना बताया है।

अतः स्पष्ट है कि-आसन आदिका कोई खास नियम नहीं है। किसी भी आसन से केवल ज्ञान हो परंतु बाद में केवली भगवान विहार करते हैं एवं किसी भी मुद्रासे केवल ज्ञान हो परन्तु बादमें मेषोन्मेष होता है, सम्भवतः दिगम्बर विद्वानोंने इस ख्याल से सब केवलीओंको नहीं किन्तु सिर्फ तीर्थंकरों को ही मेषोन्मेष का निषेध कहा है। कुछ भी हो दिगम्बर शास्त्र एकान्ततः विशिष्ट मुद्रा और आसन के पक्ष में नहीं हैं।

दिगम्बर—आपने दिगम्बर शास्त्रों के आधारसे गृहस्थ और वस्त्रधारी मुनिको ममता न होने के कारण मोक्ष सिद्ध किया है, किन्तु प्रश्न यह है कि वस्त्र केवलज्ञान को ढंक देता होगा।

जैन—जहां ममता है वहां केवल ज्ञानकी मना है। ममता नहीं रहने से वस्त्र ही क्या समोसरन और सोने के कमल वगैरह ऋद्धि वैभव विभूति भी केवलज्ञानकी बाधक नहीं है, इसके अलावा छद्मस्थ ज्ञान भी वस्त्र से नहीं दबता है, फिर केवल ज्ञानका तो पूछना ही क्या? केवल ज्ञान क्षायिक है रूपी अरूपी दृष्य अदृष्य सब पदार्थों का ज्ञान कराता है केवल ज्ञानी पर वस्त्र डालनेसे केवल ज्ञान दब जाय, ऐसा नहीं है। स्वयंभू स्तोत्र श्लोक ७३, १०९ में तीर्थंकरोंका वैभव बताया है और श्लोक १३२ में फणामंडल की स्वीकृति दी है। निर्ममता के कारण ये सब केवल ज्ञान के बाधक नहीं हैं।

दिगम्बर—केवली भगवान किसी चीजको छूते नहीं हैं, यहां तक कि भूमितलको भी नहीं छूते है फिर वस्त्र का क्या पूछना?

जैन—यह भी एक निराधार कल्पना ही है, इसके विरुद्धमें दिगम्बर शास्त्रों के अनेक पाठ हैं। देखिए—

(१) स्वामी समन्तभद्रजी भूमि विहार बताते हैं।

(स्वयंभू स्तोत्र श्लो० २९, १०८)

(२) आ० सिद्धसेनसूरि सिंहासन के ऊपर बैठने का उल्लेख करते हैं। (कल्याण० २३)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(३) आ०मानतुंगसूरि पैर धरनेका ही बताते हैं।

(भक्तामर–३२)

(४) वरदत्त केवली शिला पट्ट पर बैठे।

(वरांग चरित्र सर्ग ३ श्लो० ६)

(५) आ०श्रुतसागरजी तीर्थंकरके लिये ही अतिशयरूप कमल द्वारा विहार बताते हैं, माने–तीर्थंकर के सिवाय अन्य सब को भूमि विहार है। तीर्थंकर देव भी कमल स्पर्श करते हैं।

(प्राभृत टीका)

(६) आ०उमास्वातिजी ने केवली को शय्या, शीत, उष्ण और तृण स्पर्श होने का विधान किया है।

(मोक्षशास्त्र अ० ९)

ये सब प्रमाण स्पर्श क्रिया के पक्षमें हैं। इस हालतमें स्पर्श के जरिए वस्त्रकी मना करना वह युक्तियुक्त नहीं है। माने–केवली भगवान वस्त्रधारी भी होते हैं।

दिगम्बर विद्वान भी तीर्थंकर को नग्नता का इन्कार करते हैं। तीर्थंकरों के अतिशयों में एक भी अतिशय ऐसा नहीं है कि जो उनकी नग्नता को छिपावें फिर वे भी नग्न दिखाई नही पड़ते हैं, उसका कारण? तीर्थंकर भी वस्त्रधारी होते हैं, अत एव ये नग्न देखे जाते नहीं हैं।

दिगम्बर–तीर्थंकर और केवली उपदेश देते हैं, उनको शरीर है, मुख है, वचन योग है, भाषापर्याप्ति है और भाषापर्याप्ति कालमें ३० प्रकृतिओंका उदयस्थान है, यानी वे भाषा बोलते हैं।
(गोम्मटसार जीवकांड गा० २२७, २२८, ६६३, ६६४. ब्र०शीतलप्रसाद कृत मोक्षमार्ग प्रकाशक भा० २ पृ० १९५, १९६, २०६)

उनकी वाणी सर्व गुण संपन्न होती है बारह पर्षदा उनका व्याख्यान सुनती हैं संतुष्ट होती हैं आनन्दित होती हैं, मगर वे दशम द्वार से निरक्षरी भाषा बोलते हैं।

अट्ठारस महाभासा, खुल्लयभासा सयाइ सत्त तदा।
अक्खर अणक्खर प्पय सण्णीजीवाण सयलभासाओं ॥८९९॥
एदासुं भासासुं, तालुव दंतोट्ठ कंठ वावारो।
परिहरिय एककालं, भव्वजणे दिव्वभासित्तं ॥९००॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पगदीए अक्खलिओ, सव्वंतिदियंमि णवमुहुत्ताणि।
णिसरदि निरुवमाणो, दिव्वज्झुणी जाव जोजणयं ॥९०१॥
सेसेसुं समयेसुं, गणहर देविंद चक्कवट्टीणं।
पण्हाणुरूवसमत्थं, दिव्वज्झुणीए य सत्तभंगीहि ॥९०२॥
छदव्व णवपयत्थो, पंचट्टिकाय सत्ततत्ताणि।
णाणाविह हेइहिं, दिव्वज्झुणी भणइ भव्वाणं ॥९०३॥

माने—तीर्थंकर भगवान् दिव्यध्वनिसे उपदेश देते हैं, प्रश्नों का उत्तर देते हैं, मगर उनकी वह भाषा कंठ तालु आदिके व्यापारसे रहित या निरक्षरी होती है।

(तिलोय पण्णति, पर्व ४था)

जैन–तीर्थंकर व केवली भगवान साक्षरी भाषामें हीं उपदेश देते हैं, अत एव हम समझते हैं लाभ उठाते हैं और प्रसन्न होते हैं। यदि वे निरक्षरी भाषामें बोलें और हम समझ न सकें तो उनके पास क्यों जाय? इस हालतमें बारहों पर्षदा तो सिर्फ दिखाव मात्र ही मानी जायगी।

दिगम्बर–तीर्थंकर भगवान निरक्षरी भाषा से उपदेश देते हैं उसको गणधर ही समझते हैं। और गणधर द्वारा हमें जिनवाणी का ज्ञान होता है। बिना गणधर तो तीर्थंकर की वाणी खिरती ही नहीं है।

भगवान महावीरस्वामी ऋजु वालुका नदी पर देवकृत समवसरन में उपदेश देते मगर गणधर हुए ही नहीं थे, अतः गणधर के अभाव में ६६ दीन तक उनकी वानी न खिरी।

जैन–तबतो हमको गणधर से ही लाभ होता है इस हालतमें जब तीर्थंकर उपदेश देवें तो समवसरन में जाना फिजूल है और केवलीओंको गणधर न होने के कारण वाणी खिरेगी ही नहीं, अतः उनके उपदेश में भी जाना फिजूल है। इसके अलावा यह भी मानना पडेगा कि तीर्थंकर उपदेश देनेमें पराश्रित है। अफसोस। न मालूम! यह बात दिगम्बर विद्वानों ने कैसे उठाई होगी? दिगम्बर शास्त्र में भी बिना गणधर तीर्थंकरों का उपदेश होने का स्पष्ट उल्लेख है। देखिए—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भ० ऋषभनाथ तीर्थंकर की भी दिव्य ध्वनि सबसे पहिले बिना गणधर के ही खिरी थी।

दि० पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ कृत चर्चा सागर समीक्षा पृ० १८

इसके अलावा दिगम्बर पुराणों में कई तीर्थंकर व केवलीओं से राजा और गृहस्थों के प्रश्नोत्तर का उल्लेख है।

सारांश-तीर्थंकर वगैरह साक्षरी भाषा बोलते हैं और बिना गणधर ही स्वयं जनता समझ लेती है।

दिगम्बर-तीर्थंकर की निरक्षरी वाणी को "मागधदेव" समझता है और उसके द्वारा जनता समझती है।

अतएव वह एक "देव कृत अतिशय" माना जाता है।

जैन-यह दूसरी कल्पना भी कल्पना ही है हम तीर्थंकर की वाणी को नहीं समझें अविरति मागध देव ही उनकी वाणी समझे और हम उस अल्पज्ञ दूभाषिया की वाणी को ही जिनवाणी यानी आप्तागम मान लेवें यहतो अजीब दिगम्बर फरमान है।

हां ऐसा सम्भव हो सकता है कि देव भगवान की वाणी का ब्रोडकास्ट करें किन्तु भगवान् की निरक्षरी वाणी को साक्षरी बना देवें यह नहीं हो सकता है।

इसके अलावा केवली भगवान् को तो वह "देवकृत-अतिशय" नही हैं अतः उनकी वाणी तो निष्फल ही रहेगी।

दिगम्बर-यद्यपि दिगम्बर शास्त्र तीर्थंकरकी निरक्षरी वाणी को देवकृत अतिशय के जरिए साक्षरी बनना मानते हैं। किन्तु दिगम्बर मान्य आचार्य यति वृषभ उस बातका स्वीकार करते नहीं है। वे तो दिव्यध्वनिको देवकृत अतिशय में नहीं किन्तु केवलज्ञान के अतिशय में गिनाते हैं। कहा है कि—

घादिक्खएण जादा, एक्कारस अदिसया महत्थरिया।
एदं तित्थयराणं, केवलणाणम्मि उप्पण्णे ॥१०३॥

माने तीर्थंकर भगवान् को घाति कर्मों के क्षय होने पर ११ अतिशय उत्पन्न होते हैं।

(आचार्य यतिवृषभ कृत त्रिलोक प्रज्ञप्ति, प० ४ गा० १०३)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इन ११ अतिशयोंमें दिव्यध्वनि भी एक अतिशय है।

जैन–आ० यतिवृषभ के इस कथन से दो बातें एकदम साफ हो जाती है।

तीर्थंकरको घातिकर्म के क्षय से उत्पन्न होने वाले अतिशय दस नहीं किन्तु ग्यारह हैं दूसरा दिव्य ध्वनि का अतिशय इन में ही सामेल है। आ० समन्तभद्रजी भी दिव्यध्वनिको "सर्व भाषा स्वभावकम्" माने देवकृत नहीं किन्तु घाति कर्म ज स्वाभाविक अतिशयरूप मानते हैं। और श्वेताम्बर शास्त्र भी वैसा ही बताते हैं।

सारांश—निरक्षरी वाणीको मागध देव द्वारा साक्षरी होनेका मानना यह कोरी कल्पना ही है।

दिगम्बर–श्वेताम्बर शास्त्रमें भी तीर्थंकर की वाणीके लीए अतिशय माना गया है।

(प्रवचन सारोद्धार गा० ४४३)

जैन–श्वेताम्बर शास्त्र केवलीओं के लीए नहीं किन्तु सिर्फ तीर्थंकरके लिये ही "नियमासाए नर तिरि सुराण धम्मावबोहिया वाणी" ऐसा 'कर्म क्षय जात' अतिशय बताते हैं, इसमें न देव का सन्निधान मानते हैं न निरक्षरता मानते हैं। स्पष्ट है कि तीर्थंकर भगवान् अर्ध मागधी भाषामें उपदेश देते हैं। साक्षरी वाणी बोलते हैं और सुनने वाले अपनी २ भाषा में ज्ञान मिलता हो वैसे समझ लेते हैं अतिशय के द्वारा इससे अधिक क्या हो सकता है? केवली भगवान् भी साक्षरी वाणी ही बोलते हैं, मगर वे उक्त अतिशय के न होने के कारण सीर्फ पर्षदा के योग्य उपदेश देते हैं। उनके लिये न समवसरण होता है न बारह पर्षदा होती है। न सर्व भाषामें बोध परिणमन होनेकी परिस्थीति होती है। आ० कुंदकुंदके "बोध प्राभृत"की टीका का अर्ध भगवद् भाषाया मगधदेश भाषात्मकं, अर्धं च सर्व भाषात्मकं। इत्यादि पाठ अंश भी साक्षरी भाषा के पक्ष में ही जाता है।

दिगम्बर–कई दिगम्बर शास्त्रों में–पुराणों में केवली भगवान और राजा व सेठों का प्रश्नोत्तर है, अतः केवलीओं की वाणी साक्षरी होती है यह तो मानना पड़ता है। श्री "अंगपन्नति" (श्री

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भगवतीजी सूत्र)भी ६०००० प्रश्नोत्तर का संग्रह था, इस से भी साक्षरी वाणीकी ताईद होती है। मगर दिगम्बर शास्त्र कहते हैं कि–तीर्थंकर भगवान् मुखसे नहीं बोलते हैं, ब्रह्मरन्ध्र के दशम द्वार से आवाज देते हैं, वही निरक्षरी जिन वाणी है।

जैन–यह तो अपौरुषेय वाद सा हो गया। वेद भी विना मुख के विनामुख वाले के रचे माने जाते हैं, यह ब्रह्मरन्ध्र निर्गत निरक्षरी जिनागम भी वैसा ही "आप्तागम" माना जायगा, मगर भूलना नहीं चाहिए कि पुद्गल के संयोग या वियोग से शब्द उत्पन्न होते हैं जो संयोग, वियोग ब्रह्मरन्ध्रमें नहीं हैं। वास्तवमें वाणीका स्थान तो मुख ही है।

दिगम्बर–किसी दिगम्बर आचार्य के मतसे "तीर्थंकर भगवान् सर्व शरीर से बोलते हैं" ऐसा माना जाता है।

जैन–यदि सर्व शरीर से वाणी निकले तो एकेन्द्रिय को भी वचन लब्धि का अभाव मानने की जरूरत नहीं रहेगी। क्यों कि विना मुखके वचन लब्धि होती हो तो एकेन्द्री भी उसका अधिकारी हो जायगा मगर शास्त्र इस बात की गवाही नहीं देते हैं। दिगम्बर शास्त्र तो साफ २ बताते हैं कि—

(१) मुखवाले को ही वचन योग होता है, यानी वचन का स्थान मुख ही है।

(२) मुख वाले को ही भाषा पर्याप्ति होती है, माने–मुखसे ही वाणी निकलती है।

(३) मुख वाले को ही वचन बल है। माने–वचन का सामर्थ्य मुखमें ही है। बात भी ठीक है कि–कंठतालु वगैरह मुखमें ही होते है अतएव कंठ्यतालव्य वगैरह की रचना भी मुख से ही होती है।

गणधर, मागधदेव, अतिशयमें संख्याभेद ब्रह्मरन्ध्र और सर्वावयव वगैरह भिन्न २ कल्पना ही इस विषय का कमजोरी जाहिर करती हैं।

श्वेताम्बर शास्त्र तो बताते हैं कि–

तीर्थंकर देव साक्षरी वाणी से उपदेश देते हैं। मालकोश वगैरह राग गाते हैं और उनके साथ देवों के बाजे बजते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर—दिगम्बर शास्त्रोंसे केवली की साक्षरी वाणीके प्रमाण दीजिए

जैन—दिगम्बर सम्मत शास्त्र भी केवली की वाणी को साक्षरी मानते हैं। देखिये प्रमाण—

(१) केवलीओंको सुस्वर और दुःस्वर दोनों प्रकृतियाँ उदय में होती हैं।

(गोम्मटसार कर्मकांड गा० २७१)

(२) तीर्थंकर भगवान् पर्याप्ता हैं, 'भाषापर्याप्ति'वाले हैं।

(बोधप्राभृत गा० ३४–३८, गोम्मटसार कर्म० गा० २७२,५९५,५९६,५९७)

(३) केवली को १० प्राण हैं, माने भाषाप्राण भी है।

(बोधप्राभृत गा० ३५, ३८)

(४) केवली को १ औदारिक काययोग, २ औदारिक मिश्र-काययोग, ३ कार्मणकाययोग, ४ सत्य मनोयोग, ५ असत्या मृषा मनोयोग, ६ सत्य वचनयोग, ७ असत्यामृषा वचनयोग ये ७ योग होते हैं

(क० ४।२८)

(५) छप्पिय पज्जत्तिओ, बोधव्वा होंति सण्णिकायाणं।
एदा हि अणिवत्ता, ते दु अपज्जया होंति ॥६॥

(मूलाचार परि० १२ पर्याप्ति श्लो० ६)

(६) सार्वार्धं मागधीया भाषा ॥३९॥

अर्थ—भगवान् की दिव्य ध्वनि अर्धमागधी भाषा में होती है। भगवान् की दिव्य ध्वनि एक योजन तक सुनाई पड़ती हैं परन्तु मागध जातिके देव उसे समवसरण के अंत तक पहुँचाते रहते हैं ॥३९॥ (अन्य–प्रति श्लो० ४२)

ध्वनिरपि योजनमेकं प्रजायते श्रोतृहृदयहारी गभीरः ॥५५॥

(अन्य प्रति श्लो० ५८)

(आ० पूज्यपादकृत नंदीश्वरभक्ति पं० लालारामजी जैनशास्त्रीकृत अर्थ पृ० १४७,१५२)

(७–८) सार्वार्धं मागधीया भाषा।

(बोधप्राभृत गा० ३२ टीका, दर्शनप्राभृत गा० ३५ टीका)

(९–१०) तस्सट्ठ पडिहारा ॥

६

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीर्थंकर भगवान को दिव्य ध्वनि और दुंदुभि ये प्रतिहार्य होते हैं।

(बोधप्राभृत गा० ३२ दर्शनप्रा० गा० ३५ टीका)

(११) अर्हद् वक्त्र प्रसूतं॥ (दिगम्बर पूजापाठ)

(१२) तीर्थंकर व केवली प्रश्न का उत्तर देते हैं जिसमें मुख-व्यापार होता है। (आदि पुराण २४, तथा भरत प्रश्नोत्तर)

(१३) कर्मप्रकृति ३० का उदयस्थान। नं. ३ वाले ऊपरके २४ में अंगोपांग संहनन परघात प्रशस्तविहायोगति उच्छवास व कोई स्वर जोड़ने से ३० का उदय सामान्य समुद्घात केवली के "भाषापर्याप्ति"काल में होता है।

(ब्र० शीतलप्रसाद का मोक्षमार्ग प्रकाशक भा० २ अ०४ पृ०१९५,२०५,२०६)

(१४) पेक्खंत इव वदंता वा।

"स्वयं तीर्थंकर भगवान् मुखसे बोलते हैं" यह 'भाव' तीर्थंकर की प्रतिमाओंके मुख पर भी बना रहता है।

(आ० नेमिचन्द्रजीकृत त्रिलोकसार गा० ९८६)

(१५) बचन बोलत मनो हंसत कालुष हरं।
भवन बावन्न ५२ प्रतिमा नमों सुखकरं ॥६॥

(दिगम्बर पं० द्यानतरायकृत नंदीश्वरद्वीपपूजा)

जिनेन्द्रबिंब के मुख की आकृति ही बताती है कि-तीर्थंकर भगवान मुखसे बोले।

(१६) जगाद तत्त्वं जगतेऽर्थिने ऽञ्जसा ॥४॥
मोक्षमार्गमशिषन् नरामरान्।
नापि शासनफलैषणातुरः ॥७३॥
काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो।
नाभवंस्तव मुनेश्चिकिर्षया ॥
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो।
धीर! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥७४॥
तव वागमृतं श्रीमत्, सर्वभाषास्वभावकम्।
प्रणीयत्यमृतं यद्वत्, प्राणिनो व्यापि संसदि ॥९७॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव,
स्वस्फुरदाभा कृतपरिवेषा ॥
वागपि तत्त्वं कथयितुकामा,
स्याद्पदपूर्वा रमयति साधून् ॥१०७॥
विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तत्।
विशेषैः प्रत्येकं नियम विषयैश्चापरिमितैः ॥
सदान्योन्यापेक्षैः सकलभुवन ज्येष्ठ गुरुणा।
त्वया गीतं तत्वं बहुनय विवक्षेतरवशात् ॥११८॥

(स्वामी समन्तभद्रकृत बृहत्स्वयंभूस्तोत्र)

(१७) तस्याग्रशिष्यो वरदत्त नामा,
सद्दृष्टि-विज्ञान-तपःप्रभावात्।
कर्माणि चत्वारि पुरातनानि,
विभिद्य कैवल्यमतुल्यमापत् ॥२॥
एवं स पृष्टो भगवान् यतीन्द्रः,
श्रीधर्मसेनेन नराधिपेन।
हितोपदेशं व्यपदेष्टुकामः,
प्रारब्धवान् वक्तुमनुग्रहाय ॥४२॥
येऽर्थास्त्वया प्रश्नविदा नरेन्द्र !
चतुर्गतीनां सुखदुःखमूलाः।
पृष्टा यथावद्विनयोपचारै-
रेकाग्रबुद्ध्या शृणु ते ब्रवीमि ॥४३॥

(आ० जटासिंहनन्दिविरचित, वरांगचरित सर्ग ३ पृ० २९-३०)

इन दिगम्बर प्रमाणों से निर्विवाद है कि-तीर्थंकर व केवलीओं की वाणी मुखसे निकली है, साक्षरी है, मनोहर है, गम्भीर है, स्याद्वादवाली है, नयनिक्षेपादियुक्त है और गेयपद्धतिवाली है।

दिगम्बर-केवलीओं को मन होता है या नहीं इसके लिये भी कुछ मतभेद है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—केवली भगवान को केवलज्ञान होने के कारण भावइन्द्रिय नहीं हैं किन्तु द्रव्यइन्द्रिय रहती हैं, वैसे भाव मन नहीं होता है किन्तु द्रव्यमन रहता है और वे शरीर से व वचन योगसे आहार निहार विहार उपदेश वगैरह काम लेते हैं। वैसे द्रव्य मन से भी काम लेते हैं।

दिगम्बर—केवलीओं को द्रव्यमन होने का दिगम्बर प्रमाण दीजीए—

जैन—दिगम्बर शास्त्र भी मानते हैं कि केवली भगवान् को द्रव्यमन है। देखीए—

(१) केवली को मन है, अत एव वे पर्याप्त है।

(गोम्मटसार कर्मकांड, गाथा २७२)

(२) पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरुहो ॥३४॥

टीका—मनःपर्याप्ति एवं कायवाङ्मनसां।

दसपाणा पज्जत्ती ॥३८॥

टीका—षट् पर्याप्तयश्चार्हति भवन्ति।

(आ० कुन्दकुन्दकृत बोधप्राभृत)

(३) पंचवि इंदियपाणा मणवयकायेण तिण्णि बलपाणा ॥३५॥

दसपाणा पज्जत्ती ॥३८॥

टीका—दशप्राणाः पूर्वोक्त लक्षणाः अर्हति भवन्ति।

माने—अरिहंत में-केवली में १० प्राण हैं जिनमें एक मन भी है।

(बोधप्राभृत)

(४) सम्मत्त सण्णि आहारे ॥३३॥

टीका—संज्ञिद्वयमध्येऽर्हन् संज्ञी ह्येक एव....

अरिहंत केवली संज्ञी हैं माने मनवाले हैं। मनरहित होता है वह असंज्ञी माना जाता है, तीर्थंकर भगवान् मन वाले हैं अतएव संज्ञी हैं। (आ० कुन्दकुन्दकृत बोधप्राभृत)

(५) केवली को सत्य मनोयोग और असत्यामृषा मनोयोग होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(६) सयोगी केवली को वचन योग है, अतः औपचारिक मनोयोग भी है। वे मनोवर्गणा के स्कंध लेते हैं।

(गोम्मटसार, जीवकांड, गा० २२७, २२८, ६६३, ६६४)

केवलीओंको द्रव्यमन हैं, मगर जा वस्तु है वह तो है ही, असत् नहीं है, फिर भी उसे औपचारिक मानना, यह शब्दव्यवहार मात्र ही है वस्तुतः केवलीको द्रव्यमन है।

(७) छप्पिय पज्जत्तीओ, बोधव्वा होंति सण्णिकायाणं ॥६॥

टीका–आहारशरीरेन्द्रियानप्राणभाषामनःपर्याप्तयः बोधव्वा-बोधव्याः सम्यगवगन्तव्याः होंति भवन्ति सण्णिकायाणं संज्ञिकायिकानां, ये संज्ञिनः पंचेन्द्रियास्तेषां षडपि पर्याप्तयो भवन्ति इत्यवगन्तव्यम् ॥६॥

(दि० आ० वट्टेरकस्वामीकृत मूलाचार परि० १२ पर्याप्तधिकार)

(८) समनस्कामनस्काः। मनो द्विविधं द्रव्यमनो भावमनश्चेति। तत्र पुद्गलविपाकि कर्मोदयापेक्षं द्रव्यमनः। वीर्यान्तरायनोइन्द्रियावरणक्षयोपशमापेक्षया आत्मनो विशुद्धिर्भावमनः तेन मनसा सह वर्तन्ते इति समनस्का। न विद्यते मनो येषां ते इमे अमनस्काः। एवं मनसो भावाभावाभ्यां संसारिणो द्विधा विभज्यन्ते।

(तत्वा० अ० २ सू० ११) (सर्वार्थ सिद्धि पृ० ९९)

माने—संसारी जीव दो प्रकार के हैं, मनवाले वे समनस्क और मन से रहित वे अमनस्क हैं, तीर्थंकर अमनस्क नहीं हैं, समनस्क हैं-मनवाले हैं।

भावमन स्तावत् लब्धि उपयोग लक्षणं, पुद्गलावलंबनात् पौद्गलिकं। द्रव्यमनश्च पौद्गलिकम्।

(सर्वार्थसिद्धि अ० ५ सू० १९ पृ० १८३)

(९) एकेन्द्रियास्तेपि यदष्टपत्रपद्माकारं द्रव्यमनस्तदाऽऽधारेण शिक्षालापोपदेशादिग्राहकं भावमनश्चेति, तदुभयाभावान्न संज्ञिन एव।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

माने—एकेन्द्रियको द्रव्य या भाव में से कोई भी मन नहीं है, अतः यो असंज्ञी माना जाता है, तीर्थंकर भगवान् मनके जरिए संज्ञी हैं।

(बृहद् द्रव्यसंग्रह, जै० द० व० पृ० २०५ से २०८)

(१०) मनोबलप्राणः पर्याप्तसंज्ञिपंचेन्द्रियेष्वेव संभवति, तन्निबन्धन-वीर्यान्तराय-नोइन्द्रियावरणक्षयोपशमस्यान्यत्राऽभावात् ।

(आ० माधवचन्द्र त्रैवेद्यदेवकृता जीवकांड बडी टीका पृ० ३४५)

माने—पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय में मनप्राण होता है अतः केवली भगवान में भी मन है।

(११) कायवाक्यमनसां प्रवृत्तयो ।

नाभंवस्तव मुनेश्चिकिर्षया ॥७४॥

केवली तीर्थंकर भगवान् मन की प्रवृत्ति करते हैं

(स्वामी समन्तभद्रकृत बृहत्स्वयंभूस्तोत्रम्)

(१२) सण्णीण दस पाणा ॥१५१॥

टीका—संज्ञिनः पर्याप्तस्य पुनः सर्वेपि प्राणा भवन्ति ।

(मूलाचार परि० १२ पर्याप्त्यधिकार)

केवली संज्ञीपर्याप्ता हैं उन्हें दश प्राण हैं।

(१३) न विद्यते योगो मनवचःकायपरिस्पंदो द्रव्यभावरूपो येषां तेऽयोगिनः ।

माने—केवली भगवान् को मन वाणी और देह की क्रिया है, अयोगी केवलीको नहीं है।

(मूलाचार प० १२ गा. १५५ टीका पृ० २७५)

दिगम्बर—केवली भगवान् मुक्त होते हैं तब सिद्ध बनते हैं। यहां श्वेंताम्बर मानते हैं, कि-सिद्ध दशा में उनके चरम शरीर से त्रिभागोन २/३ अवगाहना रहती है। परन्तु दिगम्बर विद्वान इसका इन्कार करते हैं।

जैसाकि-ब्र० शीतलप्रसादजी लिखते हैं कि—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"सिद्धात्मा का आकार पूर्वशरीर प्रमाण सांगापांग बना रहता है 'किंचित' ऊनका अर्थ यह है कि जहाँ २ आत्मा के प्रदेश नहीं थे इतना आकार कम होजाता है, जैसे नख केश व रोआँ का व त्वचा पर की महीन झिल्ली का" (पृ० ८०)

जैन-दिगम्बर विद्वान भी सिद्ध भगवान् का आकार मुक्त शरीर से २/३ प्रमाण में ही मानते हैं। देखिये प्रमाण-

(१) पं० लालारामजी सिद्धभक्ति में लिखते हैं "उसका परिमाण अन्तिम शरीर से कुछ कम रहता है। क्योंकि-शरीर के जिन २ भागों में आत्मा के प्रदेश नहीं हैं उतना परिमाण घट जाता है।शरीर के भीतर पेट नाक कान आदि भाग ऐसे हैं जिनमें (पोले भागमें) आत्माके प्रदेश नहीं हैं। इसलिये आचार्य कहते हैं कि अन्य ऐसे कारण हैं जिनसे यह सिद्ध हो जाता है कि मुक्त जीव का परिमाण अन्तिम शरीर के परिमाण से कुछ कम है। यह कमी आकार की अपेक्षा से नहीं है किन्तु घनफल की अपेक्षा से है" ॥

(दशभक्त्यादि संग्रह पृ० ४४)

(२) वे ही अन्यत्र बताते हैं कि—

"यह दो भाग का रह जाना घनफलकी अपेक्षा है। अन्तिम शरीर का जो घनफल है उससे सिद्ध अवस्था घनफल एक भाग कम है, क्योंकि पेट आंटी शरीर के भीतर का पोला भाग भी उस घन फल में से निकल जाता है"।

(चर्चासागरसमीक्षा पृ० ७८)

(३) चम्पालाल पांडे लिखते हैं कि—

"जिस शरीर से केवली भगवान् मुक्त होते हैं उसका तीसरा भाग कम हो जाता है। दो भाग प्रमाण सिद्धों की अवगाहना रहती है। जैसे तीन धनुष के शरीर वाले मनुष्य की अवगाहना सिद्ध अवस्था में जाकर दो धनुषकी अवगाहना के समान रह जाती है। जो जीव केवल नख केश रहित सिद्धों की अवगाहना मानते हैं वह भ्रम है"।

(च० पृ० ७७)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(४) "जैन गजट"–सोलापुरके तंत्री पं०वंशीधरजी लिखते हैं–
"किंचिदूनका मतलब २/३ क्यों न समझा जाय?"

+ + "उपांगादि ३० प्रकृतियों का सयोग केवलीके अन्त्य समय में नाश हो जाता है। तब अन्त में नासिका आदि अनेक उपांगों के छिद्र थे नहीं रह सकते"

(जैन गजट व० ३७ अं० २ और च० पृ० ७९)

इन प्रमाणों से निर्विवाद स्पष्ट है कि—सिद्ध भगवान् की अवगाहना त्यक्त अंतिम शरीर के २/३ हिस्से में रह जाती है।

दिगम्बर–केवली भगवान ४ कर्मयुक्त हैं औदारिक शरीरवाले ह ११ परिषह उपसर्ग सहते हैं आहार लेते हैं पानी पीते हैं रोगी होते हैं निहार करते हैं सातों धातु युक्त हैं देहप्रवृत्ति करते है साक्षरी भाषा बोलते हैं इत्यादि २।

यदि यह बातें दिगम्बर शास्त्रों से सिद्ध हैं तो फिर दिग-म्बर विद्वान् इनकी मना क्यों करते हैं?

जैन–दिगम्बर विद्वान् दिगम्बरत्व की रक्षाके लिये इन बातों की मना करते हैं। वे एकान्त नग्नत्व में जोर देते हैं और उसी के कारण वस्त्र, पात्र, गोचरी विधि, आहार लाना इत्यादि की मना करते हैं। ठीक उसी सिलसिले में क्रमशः केवली के लिये आहार लाना आहार करना औदारिक शरीर सातधातु रोग परिषह उपसर्ग निहार अग्निसंस्कार देहप्रवृत्ति १८ दूषण वाक् प्रवृत्ति साक्षरी भाषा और द्रव्यमन वगैरह की मना करते हैं॥

माने–यह सारी बात दिगम्बरत्व के कारण खड़ी की गई है दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि दिगम्बर विद्वानों ने जग-त्कर्ता ईश्वर अपेक्षा तीर्थंकर का जीवन कुछ विशेषता युक्त है ऐसा बतलाने के लिये आहार, रोग, निहार, अग्निसंस्कार, साक्षरी वाणी इत्यादि का निषेध करदिया होगा। और उस अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन को ही वास्तविक रूप स शास्त्रों में दाखिल करदिया होगा। कुछ भी हो, उन कल्पनाओं को दिगम्बर शास्त्रों का आधार नहीं है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३४ अतिशय–अधिकार

दिगम्बर–तीर्थंकर भगवान को ३४ अतिशय होते हैं, जो अन्य साधारण मनुष्यों में नहीं किन्तु सीर्फ तीर्थंकर भगवान् में ही होते हैं वे अतिशय माने जाते हैं। वे, सफेद खून वगैरह १० जन्मसे, चतुर्मुख वगैरह १० घातिक्षय से, और अर्धमागधी भाषा वगैरह १४ देवसानीध्यसे यूं ३४ होते हैं।

(आ० पूज्यपाद कृत नंदीश्वर भक्ति श्लो० ३५ से ४८ दूसरी प्रतिमें श्लो० ३८ से ५१ दर्शनप्राभृत गा० ३५ श्रुतसागरी टीका पृ० २८ बोधप्राभृत गा० ३२ श्रुतसागरी टीका पृ. ९८)

जैन–तीर्थंकर की जीवनी में ये "अतिशय" ही प्रधान वस्तु हैं, अतः इन पर अधिक गौर करना चाहिये।

दिगम्बर–तीर्थंकरके शरीर में जन्म से १० अतिशय होते हैं। १ पसीनाका अभाव २ निर्मलता ३ सफेदखून और मांस ४ सम-चतुरस्रसंस्थान ५ वज्रऋषभनाराच संहनन ६ सुरूप ७ सुगंध ८ सुलक्षण ९ अनन्त बल १० प्रियहितवादित्व।

जैन–वज्रऋषभनाराच संहनन सब मोक्षगामी मनुष्यको होता ही है, अतः उसे तीर्थंकरका अतिशय नहीं मानना चाहिये। खून और मांस दो भिन्न२ हैं पर उनके निमित्त का अतिशय एक है, इसी तरह सर्वाङ्गसुन्दर शरीर ऐसा १ अतिशय रखने से उसमें निर्मलता सुरूपता वगैरह अतिशयोंका भी समावेश हो सकता है। इस हिसाब से इन अतिशयों की संख्या भी कम हो जायगी।

तीर्थंकर को शुरुसे १० अतिशय होते हैं बढते २ केवली दशामें ३४ अतिशय हो जाते हैं माने—शुरुके १० अतिशय उन्हें

७

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आजीवन रहते हैं। नतीजा यह है कि सफेद खून और सफेद मांस अतिशय तीर्थंकरमें आजीवन रहता है। इस हालतमें केवली तीर्थंकर के शरीर में खून मांस आदि सात धातुओंका अभाव मानना, यह तो नितान्तभ्रम ही है।

दिगम्बर—आ० श्रुतसागरजीने बोधप्राभृतकी टीकामें निर्मलता अतिशय से निम्न प्रकार की ३ बातें बताई हैं।

१–तीर्थंकरको जन्मसे मलमूत्र नही होते हैं।

२–उनके मातापिताको भी मलमूत्र निहार नहीं होते हैं।

तीत्थयरा तप्पियरा, हलहर चक्की य अद्धचक्की य
देवा य भूयभूमा, आहारो अत्थि नत्थि नीहारो।

३–तीर्थंकरके दाढी मूंछ नहीं होते हैं सिर्फ सिर पर केश होते हैं।

देवा वि य नेरइया, हलहर चक्कीय तहय तित्थयरा।
सव्वे केसव रामा, कामा निक्कुंचिया होंति ॥१॥

जैन–खाना पीना और निहार नहीं करना, यह तो अजीव मान्यता है। वे बीमार होते हैं श्वासोंश्वास लेते हैं पसीज जाते हैं छींक खाते हैं डकार लेते हैं जँभाई करते हैं उनको मल परिषह होता है. उनके पुत्र पुत्री सन्तान होती हैं, फिर भी वे निहार नहीं करते हैं यह कैसे मान लिया जाय? हाँ यह हो सकता है कि उनकी निहार क्रिया गुप्त रहे। विशिष्ट मनुष्योंके लिये इतना होना संभवित है, किन्तु वे मलमूत्र निहार ही करते नहीं हैं, यह नहीं हो सकता है। यह अतिशय है तीर्थंकर का और निहार नहीं करते हैं उनके मातापिता, यह भी बेढब बात है।

दिगम्बर विद्वान नख और केश इत्यादिको मल ही मानते हैं, फिर उनके रहने पर भी सिर्फ दाढी मूंछके अभाव को ही निर्मलता अतिशय मानते हैं! यह भी विचित्र घटना है।

सारांश–उक्त बातें तर्क और आप्तागम से निराधार हैं। कल्पनारूप हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर–तीर्थंकर भगवानको ४ घातिकर्मके क्षय होने से १० अतिशय उत्पन्न होते हैं। यें हैं-११ चारसो कोश अकाल न पड़े १२ आकाशमें चले १३ प्राणि वध न होवे १४ कवलाहारका अभाव १५ उपसर्ग का अभाव १६ चतुर्मुखता १७ सर्व विद्यामें प्रभुत्व १८ प्रतिबिम्ब न पडे १९ आँखोंमें मेशोन्मेशका अभाव (आंखोकी टीमकार न लगे) २० नख केश बढ़ें नहीं।

ये अतिशय तीर्थंकरको ही होते है, केवली को नहीं होते हैं अत एव ये तीर्थंकरके अतिशय गिने जाते हैं और इनके जरिये तीर्थंकर भगवान की विशेषता कही जाती है। बात भी ठीक है कि केवली भगवान को ४०० कोश तक सुभीक्षता, चतुर्मुखता वगैरह अतिशय नहीं होते हैं।

आ० पूज्यपाद फरमाते हैं कि-"स्वातिशयगुणा भगवतो (श्लो० ३८)" पं. लालाराम जैन शास्त्री साफ २ बताते हैं कि-ये दश अतिशय भगवान तीर्थंकर परमदेवके घातिया कर्मों के नाश होने पर होते हैं (पृ. १४७)

जैन–यह तयशुदा बात है कि—ये अतिशय तीर्थंकरके हैं, केवलीके नहीं हैं। अतः केवली भगवानके लिये कवलाहार और उपसर्गका अभाव बताना भी भ्रम ही है। जो कि वह वस्तु केवली अधिकार में सप्रमाण स्पष्ट कर दी गई है। अस्तु

अब रही तीर्थंकरदेव की बात। तीर्थंकरोंके इन अतिशयों में कई अतिशय सिर्फ कल्पनारूप ही हैं क्योंकि इनके खिलाफ में दिगम्बर शास्त्र प्रमाण मिलते हैं।

दिगम्बर–मानलिया जाय कि-सुभीक्षताके लिये कुछ कम क्षेत्र होगा किन्तु तीर्थंकरदेव आकाशमें विहार करते हैं, यह तो ठीक है।

जैन–गत केवलीअधिकारमें केवली भगवान् भूमि पर विहार करते हैं और शिलापट्ट पर बैठते हैं यह उल्लेख कर दिया गया है वास्तव में तीर्थंकर भगवानके लिये भी वैसा ही है। वे आसन पर बैठते हैं और भूमि पर पैर धर कर विहार करते हैं फरक इतना ही है कि-उनके पैरके नीचे देव कमलोंकी रचना करते है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर–तीर्थंकर भगवान् समवसरणमें सिंहासन पर बैठते नहीं हैं अधर रहते हैं।

(त्रि. प्र. पर्व ४ गा० ८९३)

जैन–सिंहासनस्थ मिह भव्य शिखण्डिनस्त्वाम् ॥२३॥

(आ० सिद्धसेनसूरि कृत कल्याणमंदिरस्तोत्र)

इस पाठसे तीर्थंकरोंका सिंहासन पर बैठना सिद्ध है।

दिगम्बर–आ० यतिवृषभ फरमाते हैं कि–केवली तीर्थंकरका शरीर केवलज्ञान प्राप्त होने पर पृथ्वीसे पांच हजार धनुष ऊपर चला जाता है, माने वे ५००० धनुष ऊंचे विहार करते हैं।

(त्रि. प्र. पर्व ४ गा० ७०१)

आ० श्रुतसागरजी बताते हैं कि तीर्थंकर भगवान् एकेक योजन ऊंचे और आधेर योजन की केसरा वाले कमल पर विहार करते हैं और ये कमल भी कम नहीं हैं। पं० लालाराम शास्त्रीके लेखानुसार ये १५ या आठों दिशा आदिके हिसाब से २२५ होते हैं। तब तो तीर्थंकर का आकाशगमन मानना ठीक है। इससे यह आराम रहता है कि तीर्थंकरो को समवसरण की पैरी चढने का कष्ट नहीं होगा तीर्थंकर भगवान सीधे समवसरणके सिंहासन पर आकर बैठ जावेंगे।

जैन–ये सब अतिशयोक्ति ही हैं। योजनकी ऊंचाईवाले कमल, कमलोकी संख्याका मतभेद, उंचाई का भी फर्क और उनको फिरनेका क्षेत्र, इन सब बातोंको सोचने पर यहाँ अतिशयोक्ति मानना यही ठीक मार्ग है। इस अतिशयोक्ति की जड़ संभवतः "जातविकोशाम्बुजमृदुहासा" है, विकोश के स्थान पर "विक्रोश" माने विशिष्ट कोश समजकर अपनी बुद्धिसे योजनकी कल्पना कर ली है मगर सब दिगम्बर शास्त्र उसके पक्षमें नहीं हैं। तीर्थंकर भगवान विहार करें वैसे सीडी भी चढ़ें, इसमें विशेषता क्या है? वीर्यान्तराय कर्मके क्षय होने से चलनेमें चढनेमें या बोलनेमें तीर्थंकर भगवान् कहीं थकते नहीं है और न कष्ट होता है अतः चढनेके कष्टका

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

प्रश्न भी निरर्थक है। इस परिस्थितीमें उंचे जाकर आकाश में नहीं किन्तु भूमि पर ही कमलों द्वारा विहार मानना यही उचित मार्ग है।

निर्वाणतीर्थ भूमि पर ही होता है यह बात भी तीर्थंकर के भूमि विहार की समर्थक है।

दिगम्बर–तीर्थंकर भगवान के भूमि विहार का दिगम्बरीय प्रमाण दीजिये—

जैन–दिगम्बरशास्त्र तीर्थंकर का भूमिविहार मानते है देखिये—

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं, सहस्रपत्रांबुजगर्भचारैः।
पदाम्बुजैः पातित मारदर्पो, भूमौ प्रजानां विजहर्ष भूत्यै ॥२९॥
यस्य पुरस्ताद् विगलितमाना, न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासीत्, जातविकोशाऽम्बुजमृदुहासा ॥१०८॥

(स्वयंभू स्तोत्र)

उन्निद्रहेम नव ९ पंकज पुंजकांति
पर्युल्लसन्नख मयुख शिखाभिरामौ ॥
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र ! धत्तः।
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३२॥

(आ॰ मानतुंगसूरि कृत भक्तामर श्लो॰ ३२)

दिगम्बर—केवली भगवान् कवलाहार करें तो करें परन्तु तीर्थंकर भगवान् तो कवलाहार नहीं करते हैं।

जैन–दिगम्बर शास्त्र केवलीओं की तरह तीर्थंकर भगवान् को भी कवलाहारी और तपस्वी बताते हैं जैसे कि—

(१) "जीने एकादश" माने तीर्थंकर भगवान को भूख और प्यास लगती है

(आ॰ उमास्वातिकृत, तत्त्वार्थसूत्र अ॰ ९ सू॰ ११)

(२) अर्हत आहारानाहरकद्वयं ॥३३॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आहारोय......हवई अरुहो ॥३४॥

(आ० कुन्दकुन्दकृत बोधप्राभृत)

(३) बाह्यं तपः परमदुश्चरमाचरस्त्वं ॥८३॥

(आ० समन्तभद्रकृत स्वयंभू स्तोत्र)

(४) तैजस समूह कृतस्य, द्रव्यस्याभ्यवहृतस्य पर्याप्त्या
अनुत्तरपरिणामे क्षुत् क्रमेण भगवति च तत्सर्वेम् ॥१॥

(५) आद्यश्चतुर्दशदिनै विनिवृत्त योगः ।
षष्ठेन निष्ठितकृति जिन वर्धमानः ॥
शेषा विधूत घनकर्म निबद्धपाशाः ।
मासेन ते यतिवरास्त्वभवन् वियोगाः ॥२६॥

मोक्ष पाते समय के० भ० आदिनाथ जीने चौदह दिन का के० भ० वर्धमानस्वामीने छट्ठ का और शेष २२ के०तीर्थकरों ने महीना का तप किया। माने वे कवलाहार लेते है उनका त्याग किया।

(आ० पूज्यपादकृत–निर्वाण भक्ति)

सारांश—तीर्थंकर भगवान् आहार लेते हैं, तप भी करते हैं, उनको आहार का अभाव मानना यह कल्पना ही है,

इस तरह और २ अतिशयों में भी कुछ २ कम वेशी होगी।

दिगम्बर—तीर्थंकर भगवान को केवलज्ञान होने से १४ अतिशय देवकृत होते हैं। वे ये हैं—।

२१ भाषा सार्वामागधी होवे २२ सब जीवों से मैत्री रहे, २३ छै ऋतुओं के वृक्ष एक साथ पत्ते, फूल, गुच्छे और फलों से सुशोभित रहे २४ भूमि रत्नमयी और शीशा के समान निर्मल बनी रहे २५ अनुकूल हवा चले २६ जनता में आनन्द बढ़े २७ वायु विहारभूमि से एकेक योजन तक कुडा कर्कट काँटे और कँकरी को हटा देवे और भूमि में खुशबू फैली रक्खे, २८ स्तनितकुमार खुशबू पानी की वर्षा करे २९ विहार में तीर्थंकर के पैर के नीचे एकेक योजन प्रमाण १५ (२२५) कमल रहें। ३० भूमि में सब अनाज होवे। ३१ आठों दिशाएं और आकाश स्वच्छ निर्मल रहे ३२ देवों को महापूजा के निमित्त आह्वान होता रहे। ३३ आकाश में निराधार धर्मचक्र चले ३४ अष्ट मांगलीक चले।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—इन अतिशयों के चुनाव में एक बड़ी कमी है कि-जिनको हरगीज नही छोड़ना चाहिये ऐसे ८ प्रतिहार्य छोड़ दिये गये हैं, संभव है कि कवलाहार का अभाव इत्यादि कल्पित अतिशयों ने उनका स्थान ले लिया है और उनको कम कर दिया गया है। मगर यह ठीक नहीं है। आखीर में उनको दूसरे रूप में स्वीकार करना ही पड़ता है। इसलिये उनको अतिशयों में ही रखना उचित था। ईसके अलावा यह भी कमी है कि चतुर्मुखता और नख केश बढ़े नहीं ये अतिशय केवल ज्ञान के बताये हैं जो देवकृत होने चाहिये, और अर्धमागधीभाषा जिसका सम्बन्ध सर्वविद्या में प्रभुत्व के साथ है वह और सर्वजीवों से मैत्री ये अतिशय देवकृत बताये हैं माने-तीर्थंकर की वाणी को देव के अधीन और "अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सिन्निधौ वैरत्यागः" ऐसी शक्ति को देवशक्ति बताई है किन्तु ये अतिशय तो केवल ज्ञान के ही होने चाहिये।

आचार्य यति वृषभने भी दिव्यध्वनि को तिलोयपन्नति पर्व ४ श्लोक ९०४ में केवल ज्ञान का अतिशय माना है, और आ० पूज्यपादने भी "सर्वभाषा-स्वभावकम्" से दिव्यध्वनि को स्वाभाविक अतिशय रूप माना है।

नतीजा यह है कि-ये ३४ अतिशय वास्तविक नहीं है इनमें कुछ कल्पना है, कुछ कम वेशी है और कुछ अव्यवस्था भी है।

दिगम्बर-तब तो तीर्थंकरों के ३४ अतिशय संभवतः श्वेताम्बर शास्त्रोक्त ठीक माने जावेंगे। वे ये है-

जन्म के ४ अतिशय-१ रज रोग और पसीना आदि से रहित सर्वांगसुन्दर देह, २ सफेद खून और मांस, ३ गुप्त (अदृश्य) आहार और गुप्त निहार, ४ सुगन्धि श्वासोश्वास।

घातिकर्मक्षय (केवलज्ञान) के ११ अतिशय-५ योजनप्रमाण समवसरण में कोटाकोटी प्रमाण पर्षदा का समावेश, ६ वाणी का मेघ की वर्षा के समान श्रोताओं की भाषा में परिणमन, और उसके द्वारा बोधकथन *७ पच्चीस २ योजन तक पुराने रोगों

* इसामसीह व उसके शिष्यों की वाणीमें भी एसाही भाषा परिणमन माना गया है। अम्माल पुस्तक में लीखा है कि—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

का विनाश, ८ जातिवैर का भी अभाव, ९ अकाल का अभाव, १० युद्धविप्लव का अभाव, ११ प्लेग आदि का अभाव, १२ अनाज के विनाश करने वाले तीड़ चूहा वगेरह का अभाव, १३ अति-वृष्टि न होवे १४ अनावृष्टि न होय १५ शिर के पीछे भामण्डल का उद्योत रहे ।

देवकृत १९ अतिशय-१६ पाद पीठ युक्त मणिमय सिंहासन, १७ तीन छत्र, १८ इन्द्रध्वज, १९ दो सफेद चामर, २० धर्मचक्र, ये ५ साथ में रहे आकाश में चले । २१ स्थिरता में अशोक का प्रादुर्भाव, २२ समवसरण में चतुर्मुखता चारों दिशा में ४ तीर्थंकर दीख पड़ें, २३ समवसरण में मणि स्वर्ण और चांदी के तीन गढ की रचना, २४ विहार के निमित्त ९ कमलों की रचना, २५ कांटे मुड़ जांय यानी कांटे की नोक उलटी हो जाय, २६ केश रोम और नख एक ही स्वरूप में रहें, २७ स्पर्श रस रूप गन्ध और शब्द अच्छे २ बने रहें, २८ छै ऋतु बनी रहें, २९ खुशबू पानी की वर्षा होय, ३० पांचो रंग के फूल बरसें, ३१ पक्षी प्रदक्षिणा देवे शुभ शकुन रहे, ३२ अनुकूल हवा चले, ३३ दरखत झुकते रहें झुक २ कर नमस्कार करें, ३४ दुन्दुभि बाजे ।

तीर्थंकर भगवान को ये ३४ अतिशय होते है

(आ० नेमिचन्द्रसूरिकृत प्रवचन सारोद्धार)

जैन—ये अतिशय वास्तविक हैं व्यवस्थित हैं और इनमें कमी नहीं है ।

उन ११ शिष्यों पर "रुह" की असर होती थी, और युनानी वगेरह हरएक भाषावाले उनके उपदेशको अपनी २ भाषामें समज लेते थे ।

भूलना नहीं चाहिए कि-इसामसीह ने हिन्द में आकर जैनधर्म का अभ्यास किया था (देखिए भा० १ पृ० ११) उपरोक्त उपदेश परिणमन की बात भी उसने श्वेताम्बर जैनधर्म से ली है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीर्थंकराधिकार

दिगम्बर—तीर्थंकर सम्बन्धी कई मान्यताएं और वर्तमान चौवीसी के तीर्थंकरों की जीवनीयां के लीए श्वेताम्बर और दिगम्बर में कुछ २ मतभेद है।

जैन—उनको भी सुलझाना चाहिये,

दिगम्बर—भगवान् ऋषभदेव की माता मारुदेवी ऐरवत क्षेत्रके प्रथम तीर्थंकरके पिता की युगलिनी बहिन है, और ऐरवत क्षेत्र के प्रथम तीर्थंकर की माता वह भारतके नाभिराजाकी युगलिनी बहिन है, इस प्रकार अयुगलिक मातापिता से तीर्थंकर का जन्म होता है, जब श्वेताम्बर मानते हैं कि नाभिराजा और मारुदेवी ये दोनों युगलिक राजारानी हैं उनसे भगवान ऋषभदेवका जन्म हुआ है.

जैन—इसका निर्णय करनेके पूर्व अपने को युगलिक व्यवस्था देखलेनी चाहिये। भोग भूमिके काल में भाई बहिन का एक साथ ही जन्म होता था, और बाद में वे दोनों पतिपत्नी बनते थे, उस समयमें अपनी २ युगलिनी को छोड़ दूसरी से सम्भोग करना व्यभिचार माना जाता था इत्यादि सीधी सादी बातें थी। २० लाख पूर्व की उम्र होने के पश्चात भ० ऋषभदेव ने इनका संस्कार किया।

आ० जिनसेनजीने विक्रमी नवमी शताब्दी में आदिनाथ पुराण बनाया है देवबंदवाले बाबू सूरजभान वकील के "ब्राह्मणों की उत्पत्ति" और "आदि पुराण समीक्षा" वगैरह लेखों से पत्ता चलता है कि. रचना काल की परिस्थिति को मद्दे नजर रख कर वह पुराण बनाया गया है, आ० जिनसेनजी ने स्वकालीन कर्णाटक की ब्राह्मणी सभ्यता को सामने रखकर उस पुराण का संदर्भ किया है उसमें प्रधानतया भगवान आदिनाथ का चरित्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है। किन्तु तत्कालीन सभ्यताके योग्य कुछ २ संस्कारकरण भी है, सम्भवतः ईश्वर के माता पिता युगलिक न हों एसी २ बात भी कुछ उस संस्कार का ही फल है।

भ० आदिनाथ ने २० लाख पूर्व के बाद युगलिक प्रवृत्ति में संस्कार दिया यह बात उक्त पुरण के पर्व १६ में श्लो॰ १४२ से १९० तक हैं जिसका परमार्थ यह है—

"भोग भूमि की रीति के समान होंने पर भगवान ने विचार किया कि पूर्व और पच्छिम विदेह में जो स्थिति विद्यमान है प्रजा अब उसीसे जीवित रह सकती है. वहाँपर जिसप्रकार षट्कर्मों की और वर्णाश्रम आदि की स्थिति है वैसे ही यहां होनी चाहिए। इन्हीं उपायों से इनकी आजीविका चल सकती है, अन्य कोई उपाय नहीं है। इसके बाद इन्द्रने भगवान की इच्छानुसार नगर ग्राम देश आदि बसाये, और भगवान् ने प्रजाको छह कर्म सिखला कर क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ईन तीन वर्णो की स्थापना की।

(ब्राह्मणों की उत्पत्ति पृ० ३२)

इस पाठ से तय होता है कि-भगवान् ऋषभदेवने ही स्वराज्यकाल में भोगभूमि की मर्यादा का परावर्त्तन किया। आजतक युगलिक व्यवहार था, उस को भी भ० ऋषभदेवने ही छुडाया है। इस हालतमें "भ० ऋषभदेव के समय तक युगलिक मर्यादा थी और नाभिराजा व मरुदेवी ये दोनो भाई-बहेन थे एवं युगलिक-युगलिनी थे वह मानना अनिवार्य हो जाता है। नाभिराजाने तो युगलिक रीति को संस्कार दिया नही है, फिर उसने ऐरवत के राजाकी भगिनी से ब्याह किया, यह कैसे? वे युगलिक ही थे आदिपुराण का उपरका पाठ उसी बातकी ताईद·समर्थन करता है, माने नाभिराजाने ऐरवतकी राजभगिनी से ब्याह किया, यह निराधार मान्यता है।

इसके अलावा भरत और ऐरवत क्षेत्रमें आपसी मुसाफरी सम्बन्ध नहीं है, ईतना ही क्यों तीर्थंकर या चक्रवर्ती भी वहां जाते नही है-जा सकते नहीं है, अत एव यह नामुमकीन है- कि युगलिक वहां जाय, युगलिक मर्यादाको तोडे और वहांकी कन्यासे ब्याह शादी करे।

सारांश यह है कि नाभिराजा और मारुदेवी माता ये दोंनों भोग भूमिके युगलिक थे, उस जमाना के आदर्श पति-पत्नी थे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

भगवान ऋषभदेवका ब्याह उसी प्रकार का था।

दिगम्बर—आदिपुराण पर्व १६ के कथनानुसार "भगवान ऋषभदेवने २० लाख पूर्व की उम्र होने के बाद भोगभूमिकी मर्यादाको उठाकर कर्मभूमि की मर्यादा स्थापित की" यह ठीक बात है, किन्तु उनका ब्याह तो कच्छ-महाकच्छ की बहिन यशस्वती और सुनन्दा से हुआ है। श्वेताम्बर मानते हैं कि उनका ब्याह अपनी सहजात सुमंगला और दूसरे अकाल मृत युगलिक की बहिन सुनन्दा से हुआ है वह बात ठीक नहीं है। सुमंगला से ब्याह मानना, यह तो सर्वथा विचारणीय समस्या है।

जैन-भगवान ऋषभदेवका ब्याह माता-पिताकी इच्छानुसार हुआ है। युगलिक माता पिता अपना पुत्रका सम्बन्ध युगलिक रीतिसे ही मनावे यह सर्वथा संभवित है।

ऋषभदेव और सुमंगला के ब्याह के उल्लेख भी अतिप्राचीन है उस कर्णाटकी या ब्राह्मणी सभ्यता के पूर्वके हैं, इस मान्यता में श्वेताम्बर-दिगम्बर के वास्तविक भेद वाली भिन्नता भी नहीं है और यह भी प्रमाण नहीं मिलता है कि भगवानने २० लाख पूर्वके पहिले भोगभूमिकी मर्यादाओं का उल्लंघन किया था। आदिनाथ पुराणका उक्त उल्लेख साफ २ बताता है कि भगवान् ऋषभदेव का ब्याह हुआ उस समय तक, भोगभूमि की मर्यादाएं ज्यों कि त्यों प्रचलित थी। नाभिराजाने भगवान के साथ सुनन्दाका भी ब्याह कर दीया था वह भी मर्यादा को तोडनेके लिये नहीं किन्तु लाचारी से। हां भगवानने जबसे कर्मभूमि की स्थिति स्थापित की तबसे सब बातो में कुछ न कुछ परावर्त्तन होने लगा। अब तक पुत्र और पुत्रीका एक ही साथ जन्म होता था उसमें न तो दो पुत्र होते थे, ओर न दो कन्याएं होती थी, एकपुत्र और एक कन्या ही होते थे, भगवान् की सन्तान में वह क्रम बदल गया। भगवान् को १०० पुत्र हुए २ कन्यायें हुई और भरत-ब्राह्मी का युगलिक ब्याह भी नहीं हुआ।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि भरतचक्रवर्ती बाहुबली के साथ में जन्मी हुई सुन्दरी को स्त्रीरत्न बनाना चाहता था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन–यह सप्रमाण पाया जाता है कि–वस्तुका विकास और विकार ये क्रमशः होते हैं। बॉम के धड़ाके की तरह वे होते नहीं है। कुदरत को मानने वाले भूस्तर शास्त्री, शरीरशास्त्री, विज्ञानके अध्यापक और आत्मध्यानी ये सब उस बात की ताईद करते हैं।

करीब २ अठारह कोटाकोटि सागरोपम काल से जो संस्कार चला आता था उसको बदलना यह कोई मामुली बात नहीं थी और वह विना भगवान के कोई दूसरेसे होने वाला नहीं था। इस हालत में कोई घटना पूर्वकालीन रीति के अनुसार बन जाय वह भी संभवित था।

भगवान् ऋषभदेवने सब में उचित संस्कार दे दिया, मगर जनता अज्ञता व भद्रिकताके कारण उसका ठीक २ लाभ न उठा सके वह भी संभवित था।

भगवानने सहोदरी से व्याह करनेकी मना की, मगर भरत-चक्रीने उसका अर्थ इतना ही किया हो कि सीर्फ अपनी ही युग-लिनी या सहोदरीसे व्याह करना नहीं चाहिए।

असंख्यात वर्षों से चली आइ रूढिमें सुधारा किया गया मगर विकास क्रमके नियमानुसार शुरु २ में मना का इतना ही अर्थ लिया गया हो तो उसमें आश्चर्य भी क्या है ?।

यह तो सिर्फ उस समय की परिस्थिति के अनुकुल विचार हुआ।

मगर यह बात निश्चित है कि–भरतचक्रवर्तीने सुंदरी से व्याह करने का शोचा ही था, किन्तु बादमें विवेकोदय होने से व्याह किया नहीं है, और सुंदरी ने मुनिपणा का स्वीकार किया है।

दिगम्बर—तीर्थंकरके माता–पिता खाते पीते है मगर निहार करते नहीं है।

जैन–खाने पीने वाला निहार न करे, यह बात कहाँ तक उचित है ? उसका समाधान केवली प्रकरण में हो चूका है। उसको पसीना, श्वासोश्वास, थूंकना, रोग, पेशाब और संतान वगेरह २ होते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीर्थंकर का जन्म तो जब होगा तब होगा मगर उनके माता पिता उनके आनेके बाद ही नहीं किन्तु अपने जन्म से ही आजीवन तक निहार ही न करे, यह कैसी विचित्र मान्यता है? अस्तु। ऐसी मान्यता तो सिर्फ सम्प्रदायमें ही विश्वास योग्य होती है, वह उतनी ही सीमावाली होती है।

दिगम्बर– श्वेताम्बर मानते हैं कि-तीर्थंकर भगवान् गर्भमें आये तब उनकी माता १४ स्वप्न देखते हैं –

१ गय २ वसह ३ सीह ४ अभिसेय–
५ दाम ६ससि ७ दिणयरं ८ झयं ९कुम्भं।
१० पउमसर ११ सागर १२ विमाण भवण
१३ रयणुच्चय १४ सिहिं च ॥१॥
(कल्पसूत्र)

तीन नारक और वैमानिक देवलोक से आया हुआ जीव तीर्थंकर हो सकता है। जैसा कि–

होज्जदु णिव्वुदि गमणं, चउत्थी खिदि णिगतस्स जीवस्स।
णियमा णित्थयरत्तं, णत्थि त्ति जिणेहिं पण्णत्तं ॥११८॥
तेण परं पुढवीसु, भयणिज्जा उवरिमा हु णेरइया।
णियमा अणंतर भवे, तित्थयरस्स उप्पत्ती ॥११९॥

पहेली, दूसरी व तिसरी नरकसे निकाला हुआ जीव तीर्थंकर बन सकता है, चौथी वगेरह नरक से निकला हुआ जीव तीर्थंकर होता नहीं है [११८-११९]

मनुष्य, तीर्यंच, भुवनपति, व्यंतर और ज्योतिष से आया हुआ जीव तीर्थंकर न होवे (गा. १२९, १३८) विमान ग्रैवेयक अनुदिशा के विमान और सर्वार्थसिद्ध विमानसे निकला हुआ जीव तीर्थंकर चक्रवर्ती और राम होवे (गा. १३७ से १४१)
(आ० वट्टेरक कृत मूलाचार, परिच्छेद १२)

इस प्रकार आगति के प्रश्न को मद्दे नजर रखकर श्वेताम्बर मानते है कि– भगवान् वैमानिक देवलोक से च्यवन पावे तो उनकी माता बारहवे स्वप्नमें "विमान" को

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देखती है और भगवान् नरकसे आकर गर्भमें रहे तो उनकी माता बारहवे स्वप्नमें "भवन" को देखती है । इस बातको सूचन करके लिये बारहवे स्वप्नमें विमान और भवन ये दो नाम· बताए जाते हैं फलस्वरूप तीर्थंकर की माता १४ स्वप्न देखते हैं, मगर यह श्वेताम्बर का भ्रम है । तीर्थंकर की माता तीर्थंकर के च्यवन में १६ स्वप्न देखती है। उक्त १४ स्वप्नों से अधिक सीहासन और मीनयुगल इन दो स्वप्न को भी देखती है ।

जैन–तीथकर की माताएं १४ स्वप्न देखें या १६, इस बारे में अनेक पहेलुसे निर्णय हो सकता है । जैसा कि–

(१) दिगम्बर कवि पुष्पदन्तजी ने अपभ्रंश भाषा के महापुराण की तिसरी संधीमें मारुदेवा के १६ स्वप्न में सिंहासन और नागभुवन ये दो स्वप्न अधिक बताये हैं ।

इनमें "नागभुवन" यह तो कल्पसूत्रोक्त नरक के भव को सूचित करनेवाला "भवन" ही है ।

अर्वाचीन दिगम्बर शास्त्र तो नागभुवन को स्वप्न मानते नहीं है । अतः उस स्वप्न को अलग न गिना जाय तो १५ स्वप्न रहते है । माने–दिगम्बर समाज कवि पुष्प–दंत के समय तक १५ ही स्वप्न मानती होगी और बादमें उसने १६ वे स्वप्न को स्थान दिया होगा । कुछ भी हो । मीनयुगल का स्वप्न बादमें बढा है यह निर्णित बात है ।

(२) तीर्थंकर की माता देवविमान को देखती है जब उसमें सींहासन को भी देखती है और सरोवर को देखती है जब उसमें मीनयुगल को भी देखती है । पुनः सिंहासन और मीनयुग्मको फिर भी देखे तब तो पुनर्दर्शन हो जाता है स्वप्न की महत्ता कम हो जाती है, और अव्यवस्था हो जाती है ।

(३) यूं तो सुपार्श्वनाथ भगवान की माता ने सांप का, नेमिनाथ भगवान की माता ने अरिष्टरत्नों का और पार्श्वनाथ–भगवान की माताने सांप का स्वप्न भी देखा था, यदि स्वप्नमें इनको भी गीने जाय तो न रहेंगे चौदह, न रहेंगे सोलह। फिर तो संख्याका बंध ही टूट जायगा। मगर वैसे २ स्वप्न से मुकरर संख्यामें फेरफार किया जाता नहीं है ।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वास्तव में १६ की संख्या भी उसी तरह ही बन गई है।

(४) पं. दोलतरामजीने आदिपुराण पर्व ४७ की वचनीका पृ-२४ में पं. सदासुखजीने रत्नकरंड श्रावकाचार भाषा वचनीका षोडशभावना विवेचन पृ० २४१ में; और पं० परमेष्टोदास न्यायतीर्थजी ने चर्चासागर समीक्षा पृ. २४१में, बताया है कि–

"भगवान् गुणपाल तीन कल्याणक के धारक हैं,

महाविदेह क्षेत्रमें तीर्थंकरों के कल्याणक पांच भी होय तीन भी होय और केवल निर्वाण दोय भी होय"।

इस दिगम्बरी मान्यता के अनुसार न च्यवन–कल्याणक नियत है न स्वप्नों के आनेका ही नीयत है। जब तो स्वप्न १४ हो तो भी क्या? और १६ होवे तो भी क्या? दिगम्बर समाज के लिये तो यह चर्चा ही निरर्थक है।

श्वेताम्बर समाज तीर्थंकर के ५ कल्याणकों को नियत रूपसे ही मानता है, १४ स्वप्नों को भी विना विसंवाद एकरूपसे ही मानता है। ईस हिसाब से श्वेताम्बर समाज सर्वथा सुव्यवस्थित है।

(५) स्वप्नों का समुच्चय फल देखा जाय तो, १६ स्वप्नों का फल १६ देवलोक के अग्रभागमें गमन, और १४ स्वप्नोंका फल १४ राजलोकके अग्रभागमें गमन हो सकता है। इस हिसाब से १४ स्वप्न ही समुचित है।

ये सब प्रमाण चौदह स्वप्नों के पक्षमें हैं।

दिगम्बर–दिगम्बर ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी लीखते हैं कि–कवि पुष्पदंत के महापुराण में भ० ऋषभदेव के १०१ पुत्र माने हैं।

जैन–दिगम्बर शास्त्र की रचना श्वेताम्बर शास्त्रो की अपेक्षा अर्वाचीन मानी जाती है, इस हालतमें दिगम्बर विद्वान और कुछ २ साम्प्रदायिक भेद लीख देवे वह तो संभवित है। किन्तु यहां १०१ पुत्र क्यों माने गये? वह समजमें आता नहीं है। अन्य दिगम्बर शास्त्र भगवान ऋषभदेव को १०० पुत्र थे वेसा ही मानते हैं।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि तीर्थंकर भगवान् दीक्षा लेनेके पहिले वार्षिक दान देते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—तीर्थंकर भगवान् कृपण होते नहीं है, दानी होते हैं। वे राज्यकालमें फुटकर दान देते रहते हैं दीक्षा लेने से पहिले परोपकारके लीये वार्षिकदान देते हैं, और सर्वज्ञ होनेके बाद धर्मोपदेश देते हैं दर्शन, ज्ञान व चारित्र का दान करते हैं।

दिगम्बर आदिनाथ पुराणमें भी भगवान के दीक्षा समय में भगवान की आज्ञासे भरतचक्रीने दिया हुआ दानका अधिकार हैं। यह वार्षिक दानका नामान्तर ही है।

दिगम्बर—आदिपुराण में उल्लेख है कि-भगवान् ऋषभदेवने नीलांजना देवीका नाच देख कर वैराग्य पाकर दीक्षा का स्वीकार किया। श्वेताम्बर वैसा मानते नहीं है।

जैन—जो ७२ कलाओं का, जिन में नृत्य कलाका भी समावेश होता है, आदि सृष्टा है। जो कर्मभूमि और धर्मभूमिका आदि निर्माता है उन ऋषभदेव के वैराग्य के लिये दूसरे निमित्त को मानना, यह विचित्र समस्या है।

तीर्थंकर भगवान् तीन ज्ञानवाले होते हैं अपने दीक्षा काल को ठीक जानते ही हैं और स्वयंबुद्ध होते हैं। उन को बाह्य निमित्त की एकान्त अपेक्षा रहती नहीं है। यद्यपि लोकान्तिक देव अपने आचार के अनुसार तीर्थंकर देव को "दीक्षा लेकर तीर्थ प्रवर्तन करो" इत्यादि विनति करते हैं किन्तु भगवान् तो अपने ज्ञानसे दीक्षाकालको देखकर ही दीक्षा लेते हैं।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-भगवान् ऋषभदेवने दीक्षा कालपर्यन्त देवानीतकल्पवृक्ष के फलोंका ही आहार किया था।

जैन—देवो भक्ति से कल्पवृक्षके फल लाते थे और भगवान् उन्हें खाते थे इसमें अजीव बात क्या है? इन्द्रने भी भगवान् को ईख देकर इक्ष्वाकुवंश स्थापित किया है। यहाँ देवभक्ति की ही प्रधानता है। दिगम्बर भी कहते हैं कि-भगवान महावीरने देवोपनोत भोग भोगे हैं। (नि० ७)

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-जब तीर्थंकर भगवान् दीक्षा लेते हैं तब इन्द्र उनके कंधे पर देवदुष्य-वस्त्र रख

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

देते हैं, जो वस्त्र आजीवन काल तक भी रहता है। दिगम्बर वैसे मानते नहीं है।

जैन—दिगम्बर संप्रदाय की नीव ही एक दिगम्बरत्व से गड़ी हुई है अतः दिगम्बर विद्वान दिगम्बर मुनि को ही मुनि मानते हैं फिर तीर्थंकर या केवली भगवान् को वे सवस्त्र कैसे मान सके ?। मगर एकान्त को छोडकर अनेकान्त दृष्टिसे शाचा जाय तो तीर्थंकर के लिये भी वस्त्र सिद्ध है।

मुनि और केवली सवस्त्र भी होते हैं, उसका विशेष समाधान पहिला "मुनि उपाधि अधिकार"में कर किया गया है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-भ० ऋषभदेवने इन्द्रकी विनति से ५ मुष्ठि लोच न करके ४ मुष्टि लोच किया।

जैन—ठीक बात है वास्तव में तीर्थंकर के केश की वृद्धि न होना यह अतिशय देवकृत है, तो इन्द्र की इच्छा से वे केश रक्खे जावे उसमें अनुचित क्या है ? और असंभवित भी क्या है ?। मथुरा के कंकालीटिलासे प्राप्त दो हजार वर्ष पूर्व की भ० ऋषभदेव की प्रतिमाओं के कंधे पर केश उत्कीर्ण है, अतः उनके ४ मुष्टि लोच की बात सप्रमाण है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते है कि भगवान् ऋषभदेव और महावीर स्वामी अनार्य देश में भी विचरे थे।

जैन—मनुष्यका जन्म और मृत्यु मनुष्य क्षेत्र में ही होते हैं, वैसे तीर्थंकरो के पांचो कल्याणक आर्यभूमि में ही होते हैं मगर उसका यह अर्थ नहीं है कि वे अपनी सीमासे बहार भी न जाय ? मनुष्य मानुष्योत्तर पर्वत से बहार भी जाता है वैसे तीर्थंकर आर्य देश के बाहिर भी विचरते हैं। साधारण तया आर्य ओर अनार्य ये परस्पर सापेक्ष नाम हैं, अतः आर्यखंड में आर्य और अनार्यो का समकालीन अस्तित्व भी संभवित है और इस हालत में वहां विहार होना भी समुचित है।

भगवान् शान्तिनाथ वगेरह भी दिग्विजय के निमित्त अनार्य देश में गये थे।

यह भी भूलना नहीं चाहिये कि दिगम्बर शास्त्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आर्यखंड सिवाय के सब खण्डो को भी अकर्मभूमि मानते हैं, इस हिसाब से सारा ही आर्यखण्ड कर्मभूमि-धर्मभूमि हो जाता है। देखिये पाठ–

भरहैरावयविदेहेसु विणीत सण्णिद मज्झिम खंडं मोत्तूण सेस पंचखंड विणिवासी मणुओ एत्थ अकम्मभूमिओ त्ति विवक्खिओ। तेसु धम्मकम्म पवुत्तीए असंभवेण तब्भावो ववत्तीदो।

"भरत ऐरवत और विदेहक्षेत्रो में "विनीत" नाम के मध्यमखंड (आर्य खण्ड) को छोड़कर शेष पांच खण्डो का विनिवासी (कदीमी वाशींदा) यहां 'अकर्मभूमिक' इस नाम से विवक्षित है, क्यों कि उन पांच खडों में धर्म कर्म की प्रवृत्तियां असंभव होने के कारण उस अकर्मक भावकी उत्पत्ति होती है"

(जयधवला टीका–अनेकान्त, व० २ कि० ३ पृ० १९९)

इस हालतमें आर्यखण्डके अनार्य देशोमें विश्वोपकारी जग-पूज्यके तपस्याकालीन विहारका एकान्त अभाव मानना वह ठीक नहीं है।

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि–तीर्थंकरभगवान् नग्न ही होते है किन्तु अतिशयके कारण वे नग्न दीख पडते नहीं है।

जैन—तीर्थंकरोको ३४ अतिशय होते हैं उनमें एसा कोई भी अतिशय नहीं है कि जो नग्नता को छीपाते हो।

वास्तविक बात यही है कि-तीर्थंकर भगवान् देवदुष्यवाले होते हैं अत एव नग्न दीख पडते नहीं है, तो संभव है कि दिगम्बर का वह अतिशय यह "देवदूष्य" ही है, जिसकी विद्यमानता में दोनों सम्प्रदायकी " तीर्थंकर भगवान् नग्न दीख पडते नहीं है" इस मान्यता का माकुल समाधान हो जाता है।

तीर्थंकर भगवान् वस्त्रधारी भी होते हैं, आहार लेते हैं, निहार करते हैं, तपस्या करते हैं, साक्षरी वानी बोलते हैं, विहार करते हैं, और उनके शरीरका देव अग्नि संस्कार करते हैं इत्यादि बाते पहिले सप्रमाण बताई गई है।

दिगम्बर— श्वेताम्बर मानते हैं कि–भगवान् ऋषभदेव का केवल

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

ज्ञान होने के बाद सबसे पहिले मरुदेवा माता हाथी के कंधे से केवलज्ञान पाकर मोक्षमें गई ! दिगम्बर ऐसा मानते नहीं है।

जैन—दिगम्बर समाज मरुदेवा की मुक्ति की एकान्त मना करता है। उसका यही कारण है कि—वह स्त्रीमुक्ति की एकान्त मना करता है मगर दिगम्बर शास्त्रोसे भी स्त्रीमुक्ति सिद्ध है, जो पहिले के प्रकरणो में सप्रमाण लीख दिया है।

दिगम्बर शास्त्र ५२५ धनुष्य वालेको मोक्ष मानते हैं (राज० पृ० ३६६ श्लो० ५५१)और स्त्रीमोक्ष भी मानते हैं। इस हिसावसे मरुदेवा माता का मोक्ष भी घटता है।

शेष रही गजासन की बात।

जैसा दिगम्बर शास्त्रमें मूर्छा नहीं होनेके कारण ही "त्रयः पाण्डवाः साभरणा मोक्षं गताः" माना गया है वैसे ही यहां मूर्छा नहीं होने के कारण ही गजसान से मोक्ष माना गया है।

दिगम्बर शास्त्र दरखत के अग्रभागसे भी सिद्धि बताते हैं (नंदी० ३१) वैसे ही यहां गजसान से सिद्धि समज लेनी चाहिये!

भूलना नहीं चाहिये कि केवलज्ञान या मोक्ष के लिये आसन या मुद्रा की कोई एकान्त मर्यादा है नहीं।

दिगम्बर—२४ तीर्थंकरो में श्रीवासुपूज्यजी, श्री मल्लिनाथजी, श्री नेमिनाथजी, श्रीपार्श्वनाथजी और श्रीमहावीर स्वामी ये ५ आजीवन "कुमार" माने "ब्रह्मचारी" थे। मगर श्वेताम्बर उन पांचो को "कुमार" माने "राजकुमार" युवराज मानते हैं और भ० मल्लिनाथ व भ० नेमनाथ को ही ब्रह्मचारी मानते हैं।

जैन—यहां कुमार शब्द के अर्थमें ही मतभेद है अतः पहिले "कुमार" शब्द की जांच कर लेनी चाहिये।

दिगम्बर—साधारणतया "कुमार" शब्द के अर्थ ये हैं—

(१) युवराजः कुमारो भर्तृदारकः।

(अभिधानचिन्तामणि कान्ड १ श्लोक १४६)

(२) युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारकः।

(अमरकोष वर्ग ७ श्लोक १२)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(३) कुमारवास–कुमाराणामराजभावेन वासे'

(अभिधान राजेन्द्र, पृ. ५८८)

(४) कुमारी–वनस्पति विशेष, कंवार पाठा।

(५) दिक्कुमारी–दिशाओंकी देवीयाँ, जो ब्रह्मचारिणी मानी जाती नहीं है

(६) कोमार, तनुतिगिच्छा, रसायणं, विस, भूद, खारतंतं च॥
सालंकियं च सल्लं, तिगंछदोसे दु अट्ठविहो॥३३॥
टीका–कौमारं बालवैद्यं

(आ० वट्टेकरकृत मूलाचार परि० ६) (आ० वसुनन्दी श्रमणकृत टीका)

(७) वहां आज भी "कुमार" उस व्यक्ति की संज्ञा है, जिस के पिता या बडेभाई जीवित हैं। उनकी मौजुदगी में, वह चाहे फिर तीनसौ साठ वर्षका बूढा ही क्यों न बन जावे, और उसके पांच सात सन्ताने भी हो जावे फिर भी वह 'कुमार' ही कहलाता रहेगा, राजपूताने के सारे क्षत्रिय वंश और वैश्यो के सम्पूर्ण कुल, इस बात की राजघोषणा कर रहे हैं, अरे 'कुमार' शब्द तो घरके बडे बूढे पुरुषोकी जीवित अवस्थामें संतान शब्द के अर्थका वाचक है. 'विवाहित' और 'अविवाहित' आदि अर्थों से इसका सम्बन्ध ही क्या?। भारतके सभी क्षत्रिय नरेशों तथा शेठ-शाहुकारों के घरो में, घरमें बाप या बडे भाईओं की मौजूदगीमें छोटे पुत्रों को आज 'कुमार साहब' कुंवर साहब' या 'कंवर साहब' कह कर पुकारते हैं।

(कल्पित कथा समीक्षाका प्रत्युत्तर पृ० १०६)

(८) कुमार–१ पांच वर्षकी अवस्था का बालक। २ पुत्र बेटा। ३ युवराज। ४ कार्तिकेय। ५ सिन्धुनद। ६ तोता सुग्गा, ७ खरासोना। ८ सनक सनन्दन सनत् और सुजात आदि कई ऋषि, जो सदा बालक ही रहते हैं। ९ 'युवावस्था या उस से पहेले की अवस्थावाला पुरुष। १० एकग्रह जिसका असर बालकों पर होता है।

(संक्षिप्त–हीन्दी–शब्दसागर पृ. १४४)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उक्त अर्थोंमें से प्रसंग के अनुकुल यहां दो ही अर्थ हैं। १ अविवाहित, २ युवराज, जो विवाहित भी हो सकता है।

दिगम्बर समाज प्रथम अर्थ को मान्य रखकर उन पांचो तीर्थंकरो को 'अविवाहित' मानते हैं और श्वेतांम्बर समाज दूसरे अर्थको अपनाकर पाचों तीर्थंकरो को 'युवराज' मानते हैं। अब इनमें कोनसा अर्थ ठीक है! उस का निर्णय करना चाहिये।

जैन—उक्त सब अर्थोंमें ब्रह्मचर्य सूचक कोई खास पाठ नहीं है, भगवान् महावीर तीस वर्ष तक घरमें रहे उनको उक्त अर्थो के अनुसार ब्रह्मचारी सिद्ध करना सर्वथा अशक्य ही है।

श्वेताम्बर आगम तीर्थंकर की वानी ही माने जाते हैं। उनमें उन तीर्थंकरों को "कुमार" माने 'युवराज' ही माने गये हैं। कई दिगम्बर शास्त्र भी वैसाही मानते हैं सीर्फ दिगम्बर पुराण-ग्रंथ उन ५ तीर्थंकरो को कुमार माने 'ब्रह्मचारी' ही मानते हैं।

किन्तु दिगम्बर पुराणो में तो कई बातो का आपसी मत भेद है। जैसा कि--

(१) दिगम्बरपद्मपुराण में लीखा है कि-वाली मुनि होकर मोक्ष में गया, दि० महापुराणमें लीखा है कि-बाली लक्ष्मण के हाथ से मारा गया, और मरकर नरक में गया।

(२) दिगम्बर हरिवंश पुराण में लीखा है कि वसुराजा का पिता अभिचन्द्र और माता वसुमती थी।

दिगम्बर पद्मपुराणमें लिखा है कि वसुराजा का पिता ययाति था, माता सुरकान्ता थी।

(३) महापुराण में लीखा है कि-रामका जन्मस्थान बनारस था, माता सुबाला थी। पद्मपुराण में लीखा है कि-रामकी जन्म भूमि अयोध्या था, माता कौशल्या थी।

(४) महापुराण में लीखा है कि-सीता, रावण की पुत्री थी। यहां भामण्डल का कोई जीक्र नही है। पद्मपुराण में लीखा है कि-सीता जनकराजा की पुत्री थी। भामण्डल उसका युगल जात भाई था, भामण्डल उससे व्याह करना चाहता था।

(५) महापुराणमें लीखा है कि-रामचंद्र अयोध्या का युवराज

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

था, अतः उसे कुमार भुक्ति में बनारस का राज्य मिला था। वह वनमें गया नहीं था किन्तु नारदजीकी करतूत से रावणने रामका ही रूप लेकर बनारस के जंगलसे ही सीताका हरण किया। वगेरह २।

पद्मपुराण में लीखा है कि-कैकई के कहने से राम, लक्ष्मण और सीता को वनवास मीला, भरत को अयोध्या का राज्य मीला। दंडकारण्य में खर-दूषण के पुत्र का वध, चन्द्रनखा ने की हुई शिकायत, खरदूषण से युद्ध, रावणने सीता का हरण किया, जटायुपक्षी का प्रयत्न इत्यादि प्रसंग बने। वगेरह।

(६) आराधना कथा कोष में लीखा है कि-गजसुकुमाल कृष्णजी का बेटा था, उसके शिरमें कील ठोकने के कारण उसकी मृत्यु हुई। हरिवंश पुराण में लीखा है कि-गजसुकुमाल कृष्णजी का भाई था, वह मोक्ष में गया। वगेरह।

(७) हरिवंशपुराण में लीखा है कि-कीचक मोक्षमें गया। पांडव पुराणमें लीखा है कि-कीचक मार दिया गया, वह मर कर के नर्कमें गया।

(८) हरिवंश पुराण संस्कृत में लीखा है कि-द्वीपायन मुनि मरकर अंतर्मुहूर्त में अग्निकुमार देव हुवा उसने द्वारिका को फूंक दी। हरिवंशपुराण दोलतराम कृत भाषा में लीखा है-द्विपायन ऋषिके बाई भुजासे पुतला निकला, उसने द्वारिका को भस्म कर दी।

(९) चंद्रगुप्त की जन्मभूमि. १६ स्वप्न आनेका स्थान, इत्यादि में बडा मत भेद है।

(१०) एकांगविद् आचार्यो की संख्या आदि में मत भेद हैं।

(११) जम्बूचरित्र में लीखा है कि-जम्बूस्वामी राजगृह की पहाडी पर मोक्ष पधारें कीसी २ ने लीखा है कि-जम्बूस्वामी मथुरामें मोक्ष गये।

(१२) हरिवंश पुराण में लीखा है कि-मधुकीटभ मुनि हो कर मोक्षमें गया।

अन्यपुराण में लीखा है कि-मधुकीटभ मरकर नरक में गया।

(१३) उत्तरपुराण, नेमिनिर्वाणकाव्य, हांदी नेमिपुराण,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्वयंभूस्तोत्र का मराठी कोष्टक वगेरह में लीखा है कि-भगवान् नेमिनाथ का जन्म, द्वारिके के "शौरिपुर मुहुल्ला" में हुंआ।

कोइ २ दिगम्बर ग्रन्थ बताते हैं कि-भगवान् नेमिनाथ का जन्म शौरिपुर में हुआ।

(१४) हरिवंश पुराण में लीखा है कि-करण दुर्योधन वगेरह मुनि होकर मरकर स्वर्गमें गये।

पांडवपुराण में लीखा है हि-दुर्योधन वगेरह महाभारतमें मारे गये।

(१५) दिगम्बर शास्त्रो म भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण समय के लीये बडा भारी मतभेद है। जैसा कि शक संवत् पूर्वे ६०५ वर्ष ४६१ वर्ष ७०४ वर्ष ९५९५ वर्ष और १४९७२ वर्ष में भमवान् महावीर स्वामीका निर्वाण हुआ वगैरह।

(ता. १० । ३ । १९३८ का जैनध्वज)

इन २ विरोधों को मद्दे नजर रखकर इस नतीजे पर पहूंचना अनिवार्य है कि-श्वेताम्बर की मान्यता सत्य है।

दिगम्बर शास्त्र भी उन पांचो तीर्थंकर के लीये "कुमार" शब्द का अर्थ अविवाहित नहीं किन्तु "युवराज" ही करते हैं। अतः मतभेदका अवकाश रहता नहीं है।

दिगम्बर—आप दिगम्बर शास्त्रो के प्रमाण दीजिये !।

जैन—दिगम्बर शास्त्र म लीखा है कि-ये पांचो तीर्थंकर कुमार थे माने विना राज्यप्राप्ति हुए मुनि बने। देखिये पाठ—

(१) वासुपूज्यस्तथा मल्लिर्नेमिः पार्श्वो ऽथ सन्मतिः।
कुमाराः पश्च निष्क्रान्ताः पृथिवीपतयः परे।

माने—वासुपूज्य, मल्लीनाथ, नेमनाथ पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी ये पांच तीर्थंकर राजा बने विना ही मुनि बने, और शेष उन्नीस तीर्थंकर पृथिवीपति माने राजा बनकर बादमें ही मुनि बने।

(पं. चंपालालजी कृत चर्चासागर, चर्चा ९३, पृष्ठ ९२)

यहां 'पृथिवीपतयः' लीखकर स्पष्ट कर दिया है कि वे पांच सीर्फ "राजकुमार" ही थे, माने पृथ्वीपति नहीं हुए थे।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्वेताम्बर शास्त्र भी ऐसा ही मानते है—

वीरं अरिट्ठनेमिं पासं मल्लिं च वासुपुज्जं च।
ए ए मूत्तूण जिणे, अवसेसा आसि रायाणो ॥२२१॥
वीरो अरिट्ठनेमि पासो मल्ली अ वासुपुज्जो अ।
पढमवए पव्वइया, सेसा पुण पच्छिमवयंमि ॥२२६॥

(विशेषावश्यक भाष्यवाली, आवश्यक निर्युक्ति)

(२) तिहुयण पहाण सामिं, कुमारकाले वि तविय तव चरणं।
पसुपुज्जसुयं मल्लिं चरमतियं संथुवे णिच्चं ॥

(स्वामी कीर्तिकेयानुपेक्षा, व चर्चा-९१)

जो तीनो भुवनमें प्रधान है, जिन्हों ने राजकुमार दशामें ही मुनिपना स्वीकारा है, उन वासुपूज्य मल्लिनाथ और अंतिम तीन तीर्थंकरो की में नित्य स्तुति करता हुं।

(३) भुक्त्वा कुमारकाले त्रिंशद्वर्षाण्यनन्तगुणराशिः।
अमरोपनीत भोगान् सहसाभिनिबोधितो ऽन्येद्युः ॥७॥

भगवान् महावीर स्वामीने राजकुमार दशामें तीस वर्ष तक देवोसे प्राप्त भोगोपभोगका उपभोग किया और बादमें किसी दिन सहसा वैराग्य पाया.

(आ पूज्यपाद कृत निर्वाण भक्तिः श्लोक, ७ पृ. ११३)

(४) आचार्य जिनसेन कृत हरिवंश पुराण अ० श्लोक ६,७,८ में भगवान् महावीर स्वामीका विवाह प्रसंग है।

(बंगाल-एसियाटिक-सोसायटी की पुस्तकालय का हरिवंश पुराण, पीटर्सन की चौथी रिपोर्ट पृ. १६८, प्रो. हीरालालजी दिगम्बर जैन का सन्देह और स्वीकार लेख, और कल्पित कथा समीक्षा प्रत्युत्तर पृ. ११९)

(५) दिगम्बर धर्मशास्त्र इस बातको स्वीकार नहीं करते, कि-भगवान् महावीरने विवाह किया था। वे उनको बाल ब्रह्मचारी मानते हैं। पर इस बातकी पुष्टि के लिये उनके पास कोई आगम सिद्ध प्रमाण नहीं है। हमारे चौवीस तीर्थंकरों में चाहे जिस तीर्थंकर को देखिये (एक दो को छोडकर) आप गृहस्थ ही पायंगे। ऋषभनाथ स्वामी के तो कई पुत्र थे। इस के अतिरिक्त हमारे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पास इस बातका कोई सबल प्रमाण भी नहीं कि जिस के द्वारा हम महावीर को ब्रह्मचारी सिद्ध कर सकें। भगवान् महावीर के जीवन सम्बन्धी ग्रन्थो में "कल्पसूत्र" अपेक्षाकृत अधिक पुराना है। अतः उसके कथन का प्रमाणभूत होना अधिक सम्भव है इसके सिवाय और एक ऐसा कारण है जिससे उनके विवाह का होना सम्भवनीय हो सकता है।"

यह बात निर्विवाद है कि भगवान् महावीर अपने माता-पिताके बहुत ही प्रिय पुत्र थे।

वे स्वयं भी माता-पिता और भाई पर अगाध श्रद्धा रखते थे यहाँ तक कि उन्होने अपने भाई के कथन से दीक्षा सम्बन्धी उच्च भावनाओं को दो वर्ष के लिये मुल्तवी कर दिया। ऐसी हालत में क्या माता-पिता की इच्छा उनका विवाह कर देने की न हुई होगी? क्या तीस वर्ष की अवस्था तक उन्होंने अपने प्राणप्रिय कुमार को विना सह धर्मिणी के रहने दिया होगा ?। जिस कालमें विना बहूका मुंह देखे सास की सद्गति ही नहीं बतलाई गई है। उस कालकी सासुएँ और जिसमें भी महावीर के समान प्रतिभाशाली पुत्र की माता का विना बहूके रहना कमसे कम हमारा दृष्टि में तो बिल्कुल अस्वाभाविक है, इसके अतिरिक्त यह भी प्रायः असम्भव ही मालूम होता है कि महावीरने इस बातके लिए अपने माता-पिता को दुःखित किया हो, ? ये सब ऐसी शङ्कायें हैं जिनका समाधान कठिन है ऐसी हालत में यदि हम मान लें कि भ० महावीरने विवाह किया था तो कोई अनुचित न होगा।

(भगवाने महावीर पृ० ११३, ११४)

सारांश—श्वेताम्बर दिगम्बर इन दोनों के शास्त्र से सप्रमाण पाया जाता है कि-वासुपूज्य मल्लीनाथ नेमिनाथ पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी ये पांचे तीर्थंकर 'राजकुमार' थे, राजा नहीं बने थे, उन्होंने राजकुमार दशामें ही दीक्षा का स्वीकार किया।

श्वेताम्बर शास्त्र युवराज या राजकुमारों को "कुमार" शब्द से और अविवाहितो का अलगरूप से परिचय देते हैं, और बताते हैं, कि—

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

२४ तीर्थंकरो में १९ राजा थे ५ राजकुमार थे, २२ विवाहित थे २ मल्लिनाथ और नेमिनाथ आजीवन ब्रह्मचारी थे।

यह विश्लेषण सप्रमाण है विश्वस्य है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-१९ वे मल्लीनाथ भगवान् स्त्री तीर्थंकर थे।

जैन—वे इस बातको आश्चर्यघटना रूप मानते हैं।

दिगम्बर—दिगम्बर पंडित हेमराजजी लीखते हैं-कि भगवान् मुनिसुव्रतस्वामी के गणधर घुड़ा था, ऐसा श्वेताम्बर मानते हैं।

जैन—यह जूठ बात है, श्वेताम्बर ऐसा मानते ही नहीं है। उनके गणधर मल्लीकुमार वगेरह मनुष्य ही थे।

इसीही प्रकार भगवान् मल्लीनाथके शरीका वर्ण भगवान् नेमिनाथजीका छद्मस्थदीक्षाकाल इत्यादि विषयोंपर श्वेताम्बर और दिगम्बरो में कुछ २ मतभेद पाया जाता है, जो वास्तवमें उनके साहित्य की प्राचीनता और अर्वाचीनता के कारण ही है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर शास्त्र भगवान् महावीर के २७ भव बताते हैं, मगर वह बात ठीक नहीं है।

जैन—यह निर्विवाद है कि श्वेताम्बर आगम साहित्य समृद्ध है, प्राचीन है, मौलिक है, खानदान है। दिगम्बर साहित्य अल्प है पश्चात् कालीन है पराश्रित है इसका निर्माण श्वेताम्बर साहित्य के आधार पर हुआ है और हो रहा है। देखिए—

(१) एक दिगम्बर विद्वान साफ २ लीखते हैं कि-"इसमें संदेह नहीं कि श्री महावीर भगवान् के ३० वर्ष के विहारका विस्तारपूर्वक वर्णन दिगम्बर शास्त्रा में नहीं मिलता है। यदि श्वेताम्बरो के शास्त्रो में मिलता हो तो संग्रह करनेकी जरूरत है। केवल यह बात ध्यान में रखने की होगी कि वह महावीर चर्या ऐसी न तैयार हो जो सर्वज्ञ वीतरागत्व विशेषणों को खंडन करके उनको केवल एक तपस्वी महात्मा के रूपमें प्रमाणित करे। अरिहंत के स्वरूप को स्थिर रखते हुए उनके उपदेशो का संग्रह किसी भी साहित्यसे करनेमें हानि नहीं है"

(दि० जैनमित्र व० १८ अं. ४० पृ० ६४१ को लेख—
श्री भगवान् महावीर की वाणी साक्षरीथी क्या?)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उक्त लेख का आशय यह है कि–श्वेताम्बर महावीर चरित्र पर दिगम्बर पने का मुलम्मा चढाकर दिगम्बरीय महावीर चरित्र तैय्यार करो, श्वेताम्बर आगम साहित्यको दिगम्बरत्व के ढांचे में डालकर दिगम्बरीय महावीरउपदेश के रूप में जाहिर करो। इत्यादि॥

(२) दिगम्बर विद्वान पं. नथुराम प्रेमीजीने दिगम्बर साहित्य के निर्माताओं को मुलम्मा चढाने की पद्धतिका जो कुछ परिचय दीया है उसे पढने से भी अपने को दिगम्बर साहित्य की कमी का ठीक ख्याल मीलता है। वे लीखते हैं कि––

"दशवीं शताब्दी के पहिले का कोई भी उल्लेख अभी तक मुझे इस सम्बन्ध में नहीं मीला, मेरा विश्वास है कि दिगम्बर संप्रदाय में जो बड़े बड़े विद्वान् ग्रंथ कर्त्ता हुए हैं प्राय: वे किसी मठ या गद्दी के पट्टधर नहीं थे। परन्तु जिन लोगोनें गुर्वावली या पट्टावली बनाई हैं उनके मस्तक में यह बात भरी हुई थी कि जितने भी आचार्य या ग्रंथकर्ता होते हैं वे किसी न किसी गद्दी के अधिकारी होते हैं, इसलीये उन्होंने पूर्ववर्ती सभी विद्वानों की इसी भ्रमात्मक विचार के अनुसार खतौनी कर डाली है और उन्हें पट्टधर बना डाला है।

(गुजराती तत्वार्थसूत्रकी प्रस्तावना)

(३) दिगम्बर शास्त्र के प्रकांड अभ्यासी श्रीयुत् लक्ष्मण रघुनाथ भीडे नग्न सत्य जाहिर करते हैं कि–"दिगम्बरोए ब्रह्मचारी क्षुल्लक एलक अने दिगम्बर एवी चार प्रतिमाओ गोठवी चार आश्रमोनुं पण जेम अनुकरण कर्युं तेम श्वेताम्बरोए कर्युं नथी"

"कहेवानी मतलब ए छे के वैदिकोना चतुर्वर्णाश्रमनी जेटली असर दिगम्बरो पर थएली देखाय छे तेटली श्वेताम्बरो पर थएली देखाती नथी, एनुं कारण जिनागमोनो लोप मानी प्रभाविक आचार्यो फेरफार करवामां फावी जाय एवी दशा श्वेताम्बरोए नहीं थवा दीधी एज छे। सत् शास्त्रने श्वेताम्बरो सारी रीते वलगी शक्या तेथी तेओ सुदेवने वफादार रही शक्या अने सद्गुरुओने जाळवी शक्या। आ त्रयी शुद्ध रहेवाथी श्वेताम्बरोनुं समकित शुद्ध रह्युं अने तेओ बीजानी माठी असर पडवाथी बची शक्या।

(जैन पु० ४१ अं. ३ पृ०३७ ता. १८–१–१९४२ का
जिन शासननो द्विवर्णाश्रमी सनातन धर्म; लेख)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(४) दि० पं० चम्पालालजी और दि० पं० लालारामजी शास्त्री लीखते हैं कि--

"वर्तमानकाल में जो ग्रंथ हैं सो सब मूलरूप इस पंचमकालके होनेवाले आचार्यों के बनाए हैं"

(चर्चा सागर चर्चा. २५०, पृ० ५०३)

इत्यादि २ प्रमाणो से स्पष्ट है कि-दिगम्बरीय साहित्य श्वेताम्बरीय साहित्य का अनुजीवी साहित्य है, और कुछ २ कल्पना प्रधान भी है।

प्रत्यक्ष प्रमाण है कि-महावोर चरित्र के सबसे प्राचीन ग्रंथ श्री सुधर्मास्वामी कृत आचारांग सूत्र श्रीभद्रबाहुस्वामी कृत कल्पसूत्र और आवश्यक निर्युक्ति ही हैं सब दिगम्बरीय महावीर चरित्र उनके आधार पर बने हैं। फिर भी इन में उपर के लेख के अनुसार बहोत कमी हैं। बाबू कामताप्रसादजी जैनने हाल में ही महावीर चरित्र का नया आविष्कार किया है, जिस में-कलिकाल सर्वज्ञ आ० श्री हेमचन्द्रसूरि आदि के महावीर चरित्र से भगवान् महावीर स्वामी का छद्मस्थ विहार लेकर तद्दन नये रूपमें दाखल कर दिया है।

इस हालत में भगवान् महावीर स्वामी के चरित्र के लीये श्वेताम्बर साहित्य अधिक प्रमाणिक है यहि निर्विवाद सिद्ध हो जाता है।

इसी प्रकार श्वेताम्बर दिगम्बर के ओर २ मान्यता भेद है, वे भी साहित्य की प्राचीनता और अर्वाचीनता के कारण ही है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि—भगवान् महावीर स्वामी का गर्भापहार हुआ था।

जैन-वे इसको आश्चर्य घटना भी मानते हैं।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि--भगवान् महावीर स्वामीने गर्भ में ही अपने माता-पिता के स्वर्गगमन होने के बाद दीक्षा लेनेका अभिग्रह किया था।

जैन---तीर्थंकर तीन ज्ञानवाले होते हैं और वे ज्ञानदृष्ट भावि भाव को अनुसरते हैं। भगवान् महावीर स्वामीने अपना दीक्षा

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

काल को ज्ञानसे देखकर यह अभिग्रह किया था। जनता इस से मातृभक्ति का पाठ शीख सकती है। यही कारण है कि—लोकोत्तर पुरुष का चरित्र लोकोत्तर ही माना जाता है।

तीन ज्ञानवाले भगवान् ऋषभदेव का गौचरी निमित्त कइ महिने तक भ्रमण करना यह भी इसी ही कोटीका प्रसंग है।

महाभारत में अभिमन्यु के चक्रव्यूह ज्ञानका वर्णन है। इत्यादि प्रमाणो से तय पाया जाता है कि—गर्भ में कीसी साधारण जीव को भी अधिक ज्ञानविकास हो जाता है। जब लोकोत्तर पुरुष के लीये तो पूछना ही क्या?

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं कि—भगवान् महावीर स्वामीने जन्माभिषेक के समय इन्द्र के संशय को दूर करने के लीये मेरुपर्वतको अंगुठासे दबाया और कंपायमान किया। मगर यह बात संभवित नही है अतः दिगम्बर विद्वान ऐसा मानते नहीं है।

जैन—तीर्थंकरो के कल्याणक उत्सवमें इन्द्रका शाश्वत इन्द्रासन भी कंपायमान होता है तो फिर तीर्थंकर की ही प्रवृत्तिसे मेरुपर्वत चलायमान हो तो उसमें आश्चर्य घटना क्या है? दिगम्बर मान्य शास्त्र में भी मेरुकंपन का आम स्वीकार किया गया है। ईतना ही नहीं, किन्तु "महावीर" नाम प्राप्त करनेका कारण भी वही माना गया है। देखिये पाठ—

(१) पादाङ्गुष्ठेन यो मेरु- मनायासेन कम्पयन्।
लेभे नाम महावीर, इति नाकालयाधिपात्॥

(आ० रविषेण पद्मपुराण पर्व २, श्लो. ७६)

(२) रावणने भी बालि मुनिसे वैर विचार कर कैलास पर्वत को उठाया था। उस समय श्री बालि मुनिने वहां के जिनबिंब तथा जिनमन्दीरों की रक्षा के लिये अपने पैरका अंगुठा दबाकर कैलास को स्थीर रखना चाहा था उस समय रावण कैलास के नीचे दब गया था, इत्यादि वर्णन पद्मपुराण में लीखा है। फिर भला भ० श्री महावीर स्वामी के द्वारा मेरुपर्वत के कम्पित होने में क्या संदेह है?

(पं, चम्पालालजी कृत चर्चासागर, चर्चा २ पृ. ६)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर–श्वेताम्बर मानते हैं कि–सिद्धार्थराजाने भगवान् महावीर स्वामी को पढने के निमित्त मदरसा में बेठाये मगर उन्होंने वहां जाकर उसी समय पंडित के संशयो का समाधान किया, और जनताको उनके ज्ञान का परिचय मिल गया। दिगम्बर मानते हैं कि यह बात बनी नहीं है, तीर्थंकर को मदरसा में पढने को भेजे जाय यह बात असंभवित है।

जैन—माता-पिता अपनी फर्ज मानकर या व्यामोह से पुत्र का लालन–पालन, शोभावृद्धि, गुण बढाने के लीये शिक्षापाठ-प्रदान, विवाहोत्सव वगेरह करते हैं। वैसे सिद्धार्थराजाने भी भगवान् महावीर को मदरसा में भेजे। तीर्थंकर भगवान् भी गंभीर होते हैं अतः वे अपने मुख से यूं नहीं कहते हैं कि–मैं ज्ञानी हूं मुजे मदरसा में मत भेजो, इत्यादि।

बात भी ठीक है—जैसा भगवान् नेमिनाथजी का विवाह का प्रसंग है वैसा यह लेखशाला का प्रसंग है। दिगम्बर मत से तो तीन ज्ञानवाले भगवान् ऋषभदेव भी गोचरी का अंतराय होने पर भी छै महिने तक गौचरी के लिये फिरे थे, यह क्यों?।

जब लेखशाला का प्रसंग तो यहां माता–पिता के अधीन है, जो होना सर्वथा संभवित ही है।

दिगम्बर–श्वेताम्बर मानते हैं कि–भगवान् महावीर स्वामी का विवाह "समर वीर" राजा की पुत्री "यशोदा" से हुआ था, उनको उससे "प्रियदर्शना" नामक एक कन्या भी हुई जिसका विवाह भगवान् महावीर स्वामीने अपना भानजा "जमाली" नामक राजपुत्र के साथ कर दिया। उसको भी "शेषवती" नामक कन्या हुई, बादमें राजपुत्र जमालीने भगवान की पास मुनिपद का स्वीकार किया। वगेरह वगेरह।

दिगम्बर शास्त्र इन बातों को मानते नहीं है, वे तो साफर कहते हैं कि भगवान् महावीर आजीवन ब्रह्मचारी थे।

जैन—भगवान् महावीर स्वामीने विवाह किया था, यह बात तो दिगम्बर शास्त्रो से भी सिद्ध है, जिस के प्रमाण ऊपर बता दिये गये है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जमाली भी महान् मुनि थे, मगर बाद में उसीने संघ भेद करके अपना नया संप्रदाय चलाया था, इस प्रकार वह भी ऐतिहासिक व्यक्ति है, जिसका इन्कार हो सकता नहीं है। जमाली निह्नव था, वैसे ९ नव निह्नव हुए हैं। मगर दिगम्बरशास्त्र अर्वाचीन हैं इस कारणसे उसका हाल बता सकते नहीं है। यातो श्वेताम्बरों के हिसाब से दिगम्बर भी निह्नव हैं, अतः दिगम्बर विद्वानोने निह्नवो के इतिहास को ही उड़ा दिया और भगवान् महावीर स्वामी के विवाह प्रसंग को भी हटा दिया है। कुछ भी हो किन्तु जमालीका प्रसंग कल्पित नहीं है, और भगवान् महावीर स्वामी के विवाह की घटना भी कल्पित नहीं है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि—भगवान् महावीरस्वामीने अपना आधा देवदूष्य एक विप्र को दान कर दिया और बाद में उनका शेष रहा हुआ आधा वस्त्र भी गीर गया। जब वह गीरा तब भगवानने उसकी और गौर किया था वगेरह २। मगर यहां भगवान का वस्त्र ओर देखना असंभवित है।

जैन—भगवान् ने उस वस्त्र को देखा था। उस के कारण ये बताये जाते हैं।

(१) अपनी शिष्य सन्तति में मूर्छा कीतनी होगी, उस को जाणना।

(२) भावि संघ में कंटक बहुलता केसी होगी, उस को जाणना।

(३) छद्मस्थावस्था,

(४) क्षपकश्रेणी में भी संज्वलन लोभ का संभव।

इन कारणो से वस्त्र को देखना संभवित है। फिर भी यह भूलना नहीं चाहिये कि—लोकोत्तर पुरुष का चरित्र लोकोत्तर ही होता है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि—केवली भगवान् महावीर स्वामीने छींक खाया था।

जैन—जंभाई और छींक ये नीरोगता के लक्षण माने जाते हैं। ये युगलिक को भी होते हैं।

तीर्थंकर भगवान् का शरीर औदारिक है तो उनको छींक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आवे वह भी अनिवार्य है। तीर्थंकर भगवान् आहार निहार करते हैं वैसे छींक भी करे।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मानते हैं कि-गोशालाने केवली तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी पर तेजोलेश्या फेंकी थी और उपसर्ग किया था, इस से भगवान् को छै महिने तक खूनका दर्द रहा था।

जैन—वे इस को आश्चर्य घटनारूप ही मानते हैं।

दिगम्बर—भगवान् महावीर स्वामीने उस दर्द के लीये औषध के रूपमें जो कुछ लिया था, उसके लीये बड़ा मतभेद है।

उसका वर्णन श्री भगवती सूत्र के १५ वे शतक में है जिसका सार इस प्रकार है—

भगवान् महावीर स्वामी मेंढिक ग्राम के शालकोष्ठ उद्यान में समोसरे। उस समय भगवान् के शरीरमें तेजोलेश्या की उष्मासे उबले हुए पित्तज्वर का जोर था, खून के दस्त हो रहे थे, रोग काफी बढ़ गया था। इसीसे अन्यदर्शनी कहते थे कि-भगवान् महावीर का छै मास में छद्मस्थ दशामें ही मरण हो जायगा। उस समय भगवान के अनन्य रागी 'सींह' नामक अणगार मालुकावनमें तप तपते थे, उसने इस लोकोक्ति का पत्ता लगने से और 'अन्यदर्शनीओं की यह जूठ वात भी सच्ची हो जायगी' इस ख्याल से दुःखपूर्ण करुण रुदन किया, भगवान् महावीरने उस समय सींह मुनिको बुलाकर कहा कि-हे सिंह? तूं दुःख मत कर! मेरी मृत्यु छै मास में नहीं होगी किन्तु मैं १६ वर्ष पर्यन्त तीर्थंकर दशामें जीवन्त रहूंगा।

फिर भी तुझे इस व्याधि से दुःख होता है तो एक काम कर, कि-इस मेंढिक ग्राम में रेवती नामक गाथा पत्नी है, उसके वहां जा। उसने मेरे निमित्त दो कवोय शरीर तैयार कर रक्खे हैं उनको मत लाना, किन्तु उसके वहां मार्जार कृत कुक्कड़ मंसए है, उनको ले आना। सींह मुनिजी भगवान् की इस आज्ञासे आनन्दित होता हुआ रेवतीके वहां गया, और उस औषध को ले आया।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

उस औषध का निरागभाव से आहार लेने से भगवान् को भी रोग की शान्ति हुई। वगेरह वगेरह।

इस पाठमें जो १ दुवे कवोय सरीरा २ मज्जारकड़ए और ३ कुक्कुड़ मंसए शब्द हैं उनके लिये विसंवाद है। क्यों कि साधारण-तया उन निरपेक्ष शब्दो का स्थूल अर्थ यही निकलता है कि-भगवान् महावीर स्वामीने मांसाहार किया।

जैन-इस विषय में गौरता से विचार करना चाहिये। किन्तु उस के पहिले ओर एक बात का सफाई कर देना चाहिये कि-'भगवान् महावीर के मुख से २५०० वर्ष पहिले मागधी भाषामें उच्चरित हुए इन शब्दो को या उनके अर्थ या भावार्थ को अनेक संस्कारो से ओतप्रोत ऐसी प्रचलित भाषा के अनुकुल बना लेना', यह भी कुछ विचारणीय समस्या है।

अतः निम्न बातों को भी शोच लेना आवश्यक है

(१) जिनागम की रचना। और अर्थ शैली
(२) प्राकृत-संस्कृत भाषाके अनेकार्थ शब्द।
(३) प्रचलित अनेकार्थ शब्द।

जीनका ब्योरा इस प्रकार है।

(१) जिनागम की रचना और अर्थ शैली के लिये प्रमाण मिलता है कि—

इह चार्थतोऽनुयोगो द्विधा, अपृथक्त्वाऽनुयोगः पृथक्त्वाऽनुयोगश्च। तत्राऽपृथक्त्वाऽनुयोगो, यत्रैकस्मिन्नेव सूत्रे सर्वे एव चरण-करणादयः प्ररूप्यन्ते अनन्तगम पर्यायार्थकत्वात् सूत्रस्य। पृथक्त्वाऽनुयोगश्च-यत्र क्वचित् सूत्रे चरणकरणमेव, क्वचिन्पुनर्धर्मकथेव वेत्यादि। अनयोश्च वक्तव्यता-

जावंति अज्जवइरा अज्जपुहुत्त कालियानुओगस्स।
तेणारेण पुहुत्तं कालिय सुय दिट्ठिवाए य ॥७६२॥

(श्रीहरिभद्रसूरिकृत दशवैकालिकसूत्र टीका)

अर्थात्-आर्यवज्रस्वामी तक जिनागम के अपृथक्त्व माने चार चार अनुयोग थे-गमा पर्याय और अर्थ अनन्त निकलते थे, सामान्य विशेष मुख्य गौण और उत्सर्ग अपवाद से सापेक्ष अनेक

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अर्थ होते थे, उनके बाद आर्य रक्षितसूरि से जिनागमका पृथक्त्व अनुयोग हुआ, माने-धर्मकथा या चरणकरण ऐसा एकैक ही अर्थ रहा।

आवश्यक निर्युक्ति गा० ७६२-७६३ में भी यही सूचन है।

तात्पर्य यह है कि-एकैक अनुयोगवाला अर्थ ही शेष रहनेके कारण किसी २ स्थानमें अर्थभ्रम दीख पडे, तो वह भी संभवितहै।

इस अर्थभ्रमको दूर करनेके लीये अपनेको उस कालकी अर्थशैली तक पहुंच जाना चाहिये और ग्रन्थस्रष्टा के असली आशय को प्राप्त करना चाहिये।

इस हालत में "कवोय" वगेरह का सहसा प्रचलित सादा एवं ऐकान्तिक अर्थ कर दीया जाय तो उन ग्रन्थस्रष्टा व साहित्य से द्रोह किया ही माना जायगा।

(२) प्राकृत और संस्कृत भाषामें वनस्पतियोंके कई ऐसे नाम हैं कि जो आम तोरसे विभिन्न प्राणिओंके भी परिचायक हैं। जैसा कि-

बिल्ली (गा० १९) एरावण (२१) गयमारिणी (२२) पंचंगुलि (२६) गोवाली (२९) बिल्ली (३७) मंडुक्की (३८) लोहिणी, अस्सकण्णि, सीहकन्नी सिउंढि मुसुंढी (४३) विराली :(४४) चंडी (४६) भंगी (४७)

(पन्नवणा सूत्र पद १ सूत्र-२३, २४)

अस्सकण्णी, सीहकण्णी, सीउंढी, मूसंढी।

(जीवाभिगम सूत्र प्रति० १ सू० २१ पृ० २७)

ऐरावण-लकूचफल, मंडुकी-(गु०) कोली, रावण-तंदुकफल, पतंग-(गु०) महुडा, तापसप्रिया-अंगूर द्राख, कच्छप-नंदित्रीणि दरखत, गोजिह्वा-गोभी, मांसल-तरबूज, बिम्बी-कंडूरीसाग, चतुष्पदी-भींडा। (जै० स० व० ४ अं० ७)

मार्जारि-कस्तूरी, मृगनाभि-मुश्क, हस्ति-तगर (पृ० २८), अंडा-आंबला (पृ० १०६), मर्कटी वानरी-कौंच (३४३) वनशूकरी-मुंडी (४११) कुकडवेल-गुजराती औषधि (४५६) लालमुर्गा-हीन्दी औषधि (५०१) चतुष्पद-भींडी (८८९) मांसफल-तरबूज (पृ०९०३)

(शालिग्राम निघंटु भूषण-६)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मार्जार-पित्तज्वरनाशक औषधि ।

(शब्द सिन्धु कोष पृ० ८१७)

रंभा-केलका पेड़, मरकटतंतु(मकडी)-अमरवेल ।

(शब्द कोष)

राम-चिरायता	लक्ष्मी-कालीमीर्च(अष्टाभिधान ,,)
लक्ष्मण-प्रसरकटाली,जडी ।	दास-हल्दी ,,
सीता-मिश्री	पार्वती-देशी हल्दी ,,
ब्रह्मा-पलाशपापडा	विभीषण-वरकुल मूल ,,
विष्णु-पीपल	रावण-इन्द्रायण तुहरा ,,
शिवा-हरड	इन्द्रजीत-इन्द्रजौ ,,
अर्जुन-अर्जुनछाल	महामुनि-अगस्तछाल ,,
पद्मनाभ-लकडीजाति	चन्द्र-बांवची ,,
कृष्णा-गजपीपल	सूर्य-आक ,,
	रमा-शीतलमीर्च ,,

भावप्रकाश निघण्टु में प्राणिवाचक और प्राणि नाम सूचक अनेक वनस्पति बताई हैं । जिनमें से कतिपय ये हैं—

१ हरितक्यादि वर्गमें-हरीतकी, जीवन्ती, अस्थिमती, पूतना (६ से ११) वैदेही, पिप्पली (५३) गजपिप्पली (६७) चित्रको, व्यालः (६९) अजमोदा, खराश्वा च मायूरो (७७) वचा, गोलोमा (१०१) वंशरोचना, वैष्णवी (११७) ऋषभो वृषभो धीरो विषाणीन्द्राक्ष (१२५) अश्वगन्धा (१४३-४५) ऋद्धि वृद्धि वाराही (१४३-१४५) कटवी, अशोका, मत्स्यशकला, चक्रांगी, शकुलादनी, मत्स्यपित्ता (१५४) इन्द्रयवं, क्वचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्तदभिधायकं (१६०) नाकुली (१६८) मयूरविद्ला, केशी (१७०) कांगुनी, पारापतपदी, (१७४) शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी, अजशृङ्गी (१८१) ब्राह्मणी खरशाकः (१८५) शृङ्गी (२१४) मातुलानी मादनी विजया जया (२३२) स्वर्जिकाक्षारः कापोतः (२५२)

२ कर्पूरादिवर्गमें-पतंगं (१८, १९) जटायुः कौशिकः (३२) नागः (६९) गोरोचना, गौरी (७९) जटामांसी, तपस्विनी (८९) प्रियंगु, विश्वसेनांगना (१०१) रेणुका राजपुत्री च नन्दिनी कपिला द्विजा पाण्डुपुत्री कौन्ती (१०४) काकपुच्छं (१०७) कुक्कुरं, रोमशुकं (१०९) निशाचरो, धनहरः, कितवो (१११) ब्राह्मणी देवी, मरुन्माला (१२५) कपोतचरणा, नटी (१२९)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

३ गडूच्यादिवर्गमें—जीवंती (७) नागिनी (१०) जया, जयन्ती (२४) सिंहपुच्छी (३४) सिंही (३६) व्याघ्री (३८) गोक्षुरः अश्वदंष्ट्रा (४४-४५) जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया (५०) हयपुच्छिका (५५) व्याघ्रपुच्छः (६१) सिंहतुण्डः वज्री (७५) मातुलः (८७) सिंहिका, सिंहास्यो वाजिदन्तः (८९-९०) विष्णुकान्ता अपराजिता (१२३) कर्कटी, वायसी, करंजा [१२५] काकादनी (१२८) कपिकच्छूः मर्कटी, लाङ्गुली, (१३०-३१) मांसरोहिणी (१३३) मत्स्यनिषूदन (१३५) लक्ष्मणा (१४७) काकायु (१४८) गोलोमी (१४९) मत्स्याक्षी, शकुलादनी (१७४) वाराही, क्रौष्ट्री (१७६ से १७८) नारायणी (१८२) अश्वगन्धा, हयाह्वया, वाराहकर्णी (१८७) वाराहांगी (१९६) जयपाल (२००) ऐन्द्री (२०१) मुण्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना महाश्रवणिका तपस्विनी (२१४-१६) मर्कटी (२१९) कोकिलाक्षस्तु काकेक्षुः (२१४) भिक्षुः (२२५) अस्थि शृङ्खला (२२६) कुमारी गृहकन्या चकन्या घृतकुमारीका (२३२) कृष्णबालः कुमारी राजबला (२३८) श्यामा गोपी गोपवधू गोपी गोपकन्या (२४०-४१) देवी गोकर्णी (२४८-४९) काका वायसी (२५०) काकनासा तु काकांगी काकतुण्डफला च सा (२५२) काकजंघा पारापतपदी दासी काका (२५४) रामदूतिका (२५६) हंसपादी हंसपदी (२६०) द्विजप्रिया (२६१) वन्दा (२६५) मोहिनी रेवती (२६६) मत्स्याक्षी वाल्हीकी मत्स्यगन्धा मत्स्यादनी (२७०) सर्पाक्षी (२७१) शिवा (२८०) मण्डूकपर्णी, मण्डूकी (२८३) कन्या (२९१) मत्स्यादनी, मत्स्यगंधा, लांगली (२९९) गोजीह्वा (३००) सुदर्शना (३१२) आखुकर्णी (३१३) मयूरशिखा (३१५)

४ पुष्पवर्ग में—पद्मिनी (७) पद्मा (१५) महाकुमारी (२२) नैपाली (२३) गणिका (२८) पाशुपत, वक (३३) कुब्जक (३६) माधवी (४०) नट (४७) सहचर दासी (५०-५१) प्रतिविष्णु (५४) बन्धुजीव (५६) मुनिपुष्प, मुनिद्रुम (५९) गौरी (६१) फणी (६४) मुनिपुत्र तपोधन कुलपुत्र (६६) बर्बरी (६८)

५ फलवर्ग में—कामांग (१) काम राजपुत्र (२२) रम्भा (३१) दन्तशठ (६०, १३४, १४०) वानप्रस्थ (९४) गोस्तनी (११०)

६ वटादिवर्ग में—जटी (११) अश्वकर्ण (१९, २०) अजकर्ण (२१) अर्जुन वीर (२६, २७) गायत्री यज्ञियः (३०, ३१) पुत्रजीव

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(३९, ४०) कच्छप (४४) याज्ञिक (४८) कुमारक (६२) लक्ष्मी (६८) नेमि (७१)

८—शाकवर्गमें शफरी (२४) कुक्कुटः, शिखी, (३०) गोजिह्वा (३९) वाराही (१०७)

अनेकार्थवर्गमें-अजशृंगी, मेषशृंगी कर्कटशृंगी च। ब्राह्मी-ब्राह्मणी, भार्ङ्गी स्पृक्का च। अपराजिता-विष्णुकान्ता, शालपर्णी च पारापतपदी-ज्योतिष्मती काकजंघा च। गोलोमी-श्वेतदुर्वा वचा च। पद्मा-पद्मचारिणी, भार्ङ्गी च। श्यामा-सारिवा प्रियंगुश्च। ऐन्द्री-इन्द्रवारुणी, इन्द्राणी च। चर्मकषा-शातला, मांसरोहिणी च। रुहा-दूर्वा, मांसरोहिणी च। सिंही-बृहती वासा च। नागिनी -तांबुली, नागपुष्पी च। नटः श्योनाकः अशोकश्च। कुमारी-घृत-कुमारिका शतपत्री च। राजपुत्रिका-रेणुका जाती च। चंद्रहासा-गडूची लक्ष्मणा च॥

मर्कटी—कपिकच्छूः अपामार्गः करंजी च।
कृष्णा—पिप्पली, कालाजाजी, नीली च।
मंडूकपर्णं—स्योनाकः मंजिष्ठा, ब्रह्ममण्डूकी च।
जीवंती—गडूची शाकभेदः वृन्दा च।
वरदा—अश्वगंधा, सुवर्चला वाराही च।

लक्ष्मीः—ऋद्धिः वृद्धिः शमी च। वीरः-ककुभः वीरणम् काकोली च शरश्च। मयूरः-अपामार्गः अजमोदा तुत्थं च।

रक्तसारः—पतंगः आदि। बदरा-वाराही आदि। सुवहा-नाकुली आदि। देवी-स्पृक्का मूर्वा कर्कोटी च। लाङ्गली-कलिहारी जलपिप्पली नारिकेलश्च विशल्या च॥

चन्द्रिका-मेथी, चन्द्रशूरः श्वेतकण्टकारी च।
अक्षशब्दः स्मृतोष्टासु॥१॥
काकाख्यः काकमाची च काकोली काकणन्तिका।
काकजंघा काकनासा काकोदुम्बरिकापि च॥२॥
सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः।
सर्पद्विरदमेषेषु सीसके नागकेसरे
नागवल्यां नागदन्त्यां नागशब्दश्च युज्यते॥३॥
रसो नवसु वर्तते॥४॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पारिभाषिक शब्दमालामें—

चंद्रलेखा-बकुची,	इश्वरम्-पित्तल.	अश्वकर्ण-इसबगोल,
फणी-श्वेतचन्दन,	पातालनृप-सीसा.	लक्ष्मी-लोहा
हरि-गुगल,	पुरुष-गुगल,	माद्री-अतीस,
नागार्जुनी-दुद्धी,	बहुपुत्रा-यवासा,	राक्षसी-राई,
शतसुता-शतावर,	मुकुन्द-कुंदरू,	कुमारी-घीगुवार,
महाबला-सहदेई,	शकारि-कचनार,	रक्तबीज-मूंगफली
मुंज-सरकंडा,	लांगली-कलिहारी,	तरुण-एरंड,
चंडालिनी-लहसुन,	उरग-सीसा,	कृष्णबीज-कालादाना,

ताम्रकूट-तमाखू।

(बम्बई पुस्तक एजेन्सी-कलकत्तासे प्रकाशित साहित्यशास्त्री पं० राम· तेजपाण्डयेयकृत टीप्पणीयुक्त, पं. भावमिश्रकृत भावप्रकाशनिघण्टुः
प्रथमावृत्ति वि. सं. १९९२।)

(३) आज भी कई प्रचलित शब्द ऐसे हैं कि-जिनका अर्थ, भाषाभेदादिके कारण प्राणी और वनस्पति ये दोनों होते हैं। जैसा कि—

शब्द	प्राणी-देशमें	वनस्पति-देशमें
कुकडी	मुरघी-गुजरातमें	भुट्टे, पंजाबमें
गलगल	गुट्टारपक्षी —	बीजौरा,
चील	चीलपक्षी, यू.पी. में	चीलकी भाजी
गील्होड़ी	गीलहरी,	शाग,
कवेला		सफेदकोला,पेंठा (जि०मेरठ)
पोपटा	बीभत्सअङ्ग, मालवामें	हराचना, गुजरातमें
लज्जालु	स्त्री	छोडकी जाति, गुजरातमें

इस घटनासे सम्बन्ध रखनेवाली निम्न बातें भी विचारपथमें ले लेनी चाहिये।

(१) इस औषधको लानेकी आज्ञा देनेवाले सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान श्री महावीर हैं। और लानेवाले है पांच महाव्रतधारक महा तपस्वी सिंहमुनिजी? जो मानसिक, वाचिक और शारीरिक हिंसाके कट्टर विरोधी है। जो अहिंसाके महान् उपदेष्टा है और स्वयं पालक भी हैं। यदि उपदेष्टा कीसी भी सिद्धान्त की प्ररू-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पणा करे किन्तु उसे अपने आचरणमें उतारे नहीं तो उस कोरा सिद्धांत की असर जनता पर होती नहीं है। गौतमबुद्धने भी अहिंसा का सिद्धान्त तो प्रकाशा था किन्तु खूदने मांसाहार किया, फलतः आज तक बौद्धधर्ममें मांसाहार जायज है। भगवान् महावीर स्वामीने अहिंसा का सन्देश दीया साथोसाथ उसे अपने जीवनमें ओतप्रोत कर दिया और सर्वरीत्या अहिंसाका पालन किया, फलतः आजतक जैनधर्ममें मांसाहार त्याज्य माना जाता है, इतना ही नहीं किन्तु कोई भी विचारक मनुष्य अहिंसा यानी दया कानाम लेने मात्र से आजभी "यह जैनधर्म प्रधान वस्तु है" ऐसा बोल उठता है। यह वस्तु भगवान् महावीर के अहिंसक जीवन की पुरेपुरी ताईद करती है।

भगवान् महावीर की वाणीमें जिनागमो में मांसाहार की सख्त ही मना है, जिसके कई पाठ इस प्रकार है—

(१) से भिक्खू वा० जाव समाणे सेजं पुण जाणेज्ञा मंसाइयं वा मच्छाइयं वा मंसखलं वा मच्छखलं वा नो अभिसंधारिज्ज गमणाए।

(आचारांगसूत्र, निशिथसूत्र)

(२) अमज्जमंसासिणो।

(सूत्रकृतांगसूत्र अ० १)

ये यावि भूजन्ति तहप्पगारं, सेवन्ति ते पावमजाणमाणा।
मणं न एयं कुसलं करन्ती, वायावि एसा बुइयाउ मिच्छा।

(सूत्रकृतांग सूत्र श्रुत० २. अ० ६. गा० ३८)

(३) चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति, तंजहा महारंभयाए महापरिग्गहयाए पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं।

(-श्रीस्थानांग सूत्र स्थान--४)

(४) महारंभयाए महापरिग्गहियाए कुणिमाहारेणं पंचेन्दियवहेणं नेरइयाउयकम्मासरीराप्पयोगनामाए कम्मस्स उदएणं नेरइयाउयकम्मासरीरे जाव पयोगबन्धे।

(श्रीभगवतीजी सूत्र श० ८ उ० ९ सू०)

( ) चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति णेरइ-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

साए कम्मं पकरेत्ता णेरइएसु उववजंति, तंजहा-महारंभयाए महा-परिग्गहयाए पंचिंदियवहेणं कुणिमाहारेणं।

(श्री उववाइ सूत्र)

( ) भुंजमाणे सुरं मंसं, परिवुडे परंदमे ॥ ॥
अयकक्करभोई य, तुंदिल्ले चियलोहिए।
आउयं नरए कंखे, जहां एसं व एलए ॥७॥

(उत्तराध्ययनसूत्र अ० ७ गा० ७)

हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे।
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेयमेयंति मन्नई ॥९॥

(उत्तराध्ययनसूत्र अ० ५ गा० ९)

तुहं पियाइं मंसाइं, खंडाइं सोल्लगाणि य।
खाईओ विसमंसाइं, अग्गिवण्णइ ऽणेगसो ॥६७॥

(उत्तराध्ययनसूत्र अ० १९ गा० ६७)

अमज्जमंसासि अमच्छरीआ, अभिक्खणं निव्विगइं गया अ।
अभिक्खणं काउलग्गकारी, सज्झायजोगे पयओ हविज्जा ॥

(श्रीदशवैकालिकसूत्र चू० २ गा० ७)

( ) भेसज्जं पियमंसं देई, अणुमन्नई जो जस्स।
सो तस्स मल्लग्गो, वच्चइ नरयं ण संदेहो ॥ ॥
( ) दुग्गंधं बीभत्थं इन्द्रियमलसंभवं असुइयं च।
खइएण नरयपडणं विवज्जणिज्जं अओ मंसं ॥ ॥
( ) सद्यः संमूर्च्छिता नन्त-जन्तु संतान दूषितम्।
नरकाध्वनि पाथेयं, कोऽश्नीयात् पिशितं सुधीः ? ॥ ॥
आमासु अ पक्कासु अ विपच्चमाणासु मंसपेसीसु।
सययं चिय उववाओ भणिओ उ निगोयजीवाणं ॥

(योगशास्त्र, प्रकाश ३ श्लो० मूल व टीका)

इत्यादि पाठो से भगवान् महावीर स्वामी के आदर्श रूप अहिंसक जीवन का और अहिंसा के उपदेश का पुरा परिचय मिल जाता है।

ऐसे अहिंसा के प्रजापति को मांसाहारी मानना-कहना या लीखना, यह मन का जीभका और कलमका ही दोष है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(२) सींहमुनि उस औषध को कसाई के घरसे या यज्ञस्थान से नहीं लाये थे, एक परम जैनी के घर से लाये थे, जिसका नाम है रेवती।

जैनागम से उस समयकी दो रेवतीका जीक्र पाया जाता है।

एक रेवती थी, राजगृही के महाशतक की स्त्री। जिसका वर्णन मीलता है कि—

पाठ—तएणं सा रेवइ गाहावइणी अंतोसत्तरस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूआ अट्टदुहट्टवसट्टा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुएच्चुए नरए चउरासीई वासह ठिइएसु नेरइएसु नेरइएत्ताए उववण्णा।

(श्रीउपासकदशांगसूत्र)

यह मरकर नारकीमें गई है, सींह मुनि इसके घरसे औषध नहीं लाये थे।

दूसरी रेवती थी, मेंढिक ग्रामकी व्रतधारिणी जैन उपासिका। जिसका वर्णन मिलता है कि—

पाठ- समणस्स भगवओ महावीरस्स सुलसा रेवइ पामुक्खाणं समणोवासियाणं तिन्नीसयसाहस्सीओ अट्ठारस सहस्सा उक्कोसिया समणोवासियाणं संपया हुत्था।

(श्री कल्पसूत्र वीरचरित्र)

पाठ-तएणं तीए रेवतीए गाहावइणीए तेणं दव्वसुद्धेणं जाव दाणेणं सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए णिबद्धे, जहा विजयस्स, जाव जम्मं जीवियफले रेवती गाहावइणीए।

(श्रीभगवतीजी सूत्र श० १५)

सींह मुनि इस मेंढिक ग्रामवाली रेवती के घरसे उक्त औषध को लाये थे, इस रेवती ने भी उक्त औषध को देकर देव आयुष्यका बंध किया और तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया।

दिगम्बर विद्वान् भी इस रेवती के इस औषधदानकी तारिफ करते है और तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करने का कारण यही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दान था ऐसा स्पष्ट एकरार करते हैं। देखिये—

पाठ—रेवती श्राविकया श्रीवीरस्य औषधदानं दत्तम्। तेनौषधिदानफलेन तीर्थंकरनामकर्मोपार्जितमत एव औषधिदानमपि दातव्यम्।

(वि० सम्क्यत्व कौमुदी, पृ•६५)

जो परम जैनी है द्वादशव्रतधारिणी है मरकर देवलोक में जाती है और दानसे ही तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन करती है, वह रेवती मांसाहार करे या उस तीर्थंकर नाम कर्म के कारणभूत दान में मांस का दान करे, यह तो पागल सी ही कल्पना है।

(२) जीस रोग के लीये उक्त औषध लाया गया, वह रोग था 'पित्तज्ज्वर परिगय सरीरे दाह वक्कंतिए' माने—पित्तज्वर और दाहका। जिसमें अरुचि ज्वलन और खूनके दस्त होते रहते हैं।

उसको शांत करने के लीये कोला बीजौरा वगेरह तरी देनेवाले फल, उनका मुरबा, पेंठा, कवेला, पारावतफल, चतुष्पत्री भाजी, खटाईवाली भाजी, वगरह प्रशस्य माने जाते हैं, और उस रोगमें मांस की सख्त परहेज की जाती है। वैद्यग्रन्थो में साफ २ उल्लेख है कि—

स्निग्धं उष्णं गुरु रक्तपित्तजनकं वातहरं च।

मांस उष्ण है भारी है रक्तपित्त को बढानेवाला है अतः इस रोग में वह सर्वथा त्याज्य है।

इस रोग में कोला अच्छा है और बीजौरा भी अच्छा है

(कयदेवनिघंटु, सुश्रुत संहिता)

अब तो निश्चित है कि-वह औषध मांस नहीं था किन्तु तरी देनेवाला कोई फल और उसका मुरब्बा था।

इन सब बातों को मद्दे नजर रखते हुए उन शब्दो का अर्थ करना चाहिये।

दिगम्बर—उक्त विषय का मूलपाठ इस प्रकार है—

पाठ—तत्थणं रेवतीए गाहावइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुड मंसए तमा-हराहि एएणं अट्ठो।

(श्रीभगवतीजी सूत्र शतक–१५)

जैन–इस पाठके विचारणीय शब्द ये हैं—

(१) दुवे (२) कवोय (३) सरीरा (४) उवक्खडिया (५) नो अट्ठो (६) अन्ने (७) पारियासिए (८) मज्जार (९) कडए (१०) कुक्कुड (११) मंसए। जीनका विवरण इस प्रकार है।

(१) दुवे, शब्द पर विचार—

"दुवे" यह शब्द "कवोय" की नहीं, किन्तु "कवोयसरीरा" की संख्या बताता है, माने दो कवोय नहीं किन्तु कवोय के दो मुरब्बे ऐसे अर्थ का द्योतक है।

यदि कवोय का अर्थ "पक्षिविशेष" लीया जाय तो यहां दुवे और सरीरा इन शब्दो का समन्वय हो सकता नहीं है।

साफ बात है कि सारा कबूतर पकाया जाता नहीं है और अंगोपांग अलग २ करके पकाया जाय तो दो-शरीर ऐसी संख्या रहती नहीं है। माने दुवे और सरीरा इन दोनों में से एक शब्द निष्फल हो जाता है।

इस के अलावा पक्षी के लीये तो "दूवे कवोया" ही सीधा शब्द है, जिस को छोडकर यहां दुवे और शरीरा शब्दो का प्रयोग किया गया है जो इरादापूर्वक कवोय का अर्थ कबुतर करनेसे इनकार कर रहा है।

यदि कवोय का अर्थ 'वनस्पति विशेष' "लीया जाय तो यहां दुवे और शरीरा इन दोनों शब्दो का ठीक समन्वय हो जाता है। बात भी ठीक है कि-कवोय फलका मुरब्बा बना रखा हो तो वे फल सम्पूर्ण और दो वगेरह संख्या से सूचित भी किये जाते हैं। एवं फल-मुरबा के लीये "दुवे कवोय सरीरा" ऐसा प्रयोग भी सार्थक हो जाता है।

इस हालत में मानना ही पड़ेगा कि यहां कवोय शब्द जान-वर-पक्षिके लीये नहीं, किन्तु फल के लीये प्रयोगित किया गया है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दुवे शब्द से यह समस्या हल हो जाती है, अतः यहां 'दुवे' शब्द बडा कींमती शब्द है।

(२) "कवोय" शब्दपरविचार—

"कवोय" यह एक कीस्मकी खाद्य वनस्पति है। जो सारी की सारी उपस्कृत हो सकती है, जो वहोत दिनों तक रह सकती है और जो खाने से गरमी रक्तविकार पित्तज्वर और पेचीश वगेरह रोगो को शमन करती है।

जिसका संस्कृत पर्याय "कपोत" होता है।

कपोत और कपोत से बने हुए शब्दो के अर्थ निम्नप्रकार भिन्न २ होते हैं—

कपोत–एक किस्मकी वनस्पति (सुश्रुतसंहिता)

कपोत–पारापतः कलरवः कपोतः कमेडा कबूतर

कपोत–पारीसपोपर (वैद्यक शब्द सिंधु)

कपोत–कूष्मांड, सफेद कुम्हेडा, भुराकोला

कपोतीवृत्ति–सादा जीवन निर्वाह

कापोती–कृष्णकापोती, श्वेतकापोती, वनस्पति (सुश्रुत०)

कपोतक–सज्जीखार (जै० स० ४३)
कपोतचरणा–नालुका
कपोतपुट–आठ०
कपोतखाणा–नलुका
कपोतबंका, ब्राह्मी, सूर्यफुलवल्ली
कपोतवर्णा–लायची, नालुका
(निघंटुरत्नाकर)

कपोतवेगा–ब्राह्मी
कपोतसार–सुरख सुरमा
कपोतांघ्रि–नलिका
कपोतांजन–हरा सुरमा
कपोतांडोपमफल–नींबुभेद
कपोतिका–मूलाकोला,
(जै० स० ४३)

पारावते तु साराम्लो, रक्तमालः परावतः।
आखेतः सारफलो, महापारावतो महान् ॥१३९॥
कपोताण्ड तुल्यफलो ॥१४०॥

(अभिधानसंग्रह निघंटु)

कापोत–सज्जीखार (भाव०प्र०नि०), पारापतपदी–काङ्गुनी,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कपोतचरणा-नलीका, पारापतपदी-काकजंघा [भाव०]।

इन शब्द और अर्थों से पत्ता लग जाता है कि-कपोत शब्द 'वनस्पती' में ही कितना व्यापक है।

कपोत का सीधा अर्थ-एक कीस्मकी वनस्पति, पारीस पीपल, सफेद कुम्हडा (पेंठा) और कबूतर है।

जिनका वर्णन वैद्यक ग्रंथो में निम्न प्रकार है।

(१) पारापत गुण दोष-

पारापतं सुमधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत्।

(सुश्रुत संहिता)

(२) पारिसपीपल, गजदंड के गुण दोष—

पारिशो दुर्जरः स्निग्धः, कृमिशुक्रकफप्रदः ॥५॥
फले ऽम्लो मधुरो मूलो, कषायः स्वादु मज्जकः ॥६॥

(भावप्रकाश वटादि वर्ग)

(३) कोला, कोंहडा, पेठा, खबहा, काशीफल के गुण दोष-

पित्तघ्नं तेषु कुष्मांडं बालं मध्यं कफापहम्।
शुक्लं लघूष्णं सक्षारं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥२१३॥
सर्वदोषहरं हृद्यं, पथ्यं चेतोविकारिणाम् ॥२१४॥

पेंठा उष्ण दीपक वस्तिशोधक और सर्व दोष हर है

(सुश्रुत अ० ४६ फलवर्ग)

लघुकुष्माण्डकं रूक्षं मधुरं ग्राहि शीतलम्।
दोषलं रक्तपित्तघ्नं मलस्तम्भकरं परम् ॥ (   )

छोटाकोला-ग्राही, शीतल, रक्तपित्तनाशक और मलरोधक है।

कूष्माण्डं शीतलं वृष्यं स्वादु पाकरसं गुरु।
हृद्यं रूक्षं रसस्यन्दि श्लेष्मलं वातपित्तजित् ॥
कूष्माण्डशाकं गुरुसन्निपातज्वरामशोकानिलदाहहारि ॥

कोला-शीतल पित्तनाशक ज्वर आम दाह को शान्त करने वाला है।

(कयदेव निघंटु)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कूष्माण्डं स्यात् पुष्पफलं पीतपुष्पं बृहत्फलम् ॥५३॥
कूष्माडं बृहणं वृष्यं गुरुपितास्रवातनुत् ।
बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥५४॥
वृद्धं नाति हिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु ।
बस्तिशुद्धिकरं चेतो रोगहृत्सर्वदोषजित् ॥५५॥
कूष्माण्डी तु भृशं लघ्वी, कर्कारुरपि कीर्त्तिता ।
कर्कारु ग्राहिणी शीता, रक्तपित्तहरी गुरुः ॥५६॥
पक्का तिक्ता भिजननी सक्षारा कफवातनूत् ॥५७॥

कोला-पित्त रक्त और वायु दोषको हरता है । छोटा कोला पित्तनाशक शीतल और कफजनक है। बडा कोला उष्ण मीठा दीपक बस्तिशुद्धिकारक हृदयरोग का नाशक और सर्व दोषों का नाशक है । छोटा कोला ग्राहक शीतल रक्तपित्त दोषनाशक और पक्का हो तो अग्निवर्धक है ।

(भावप्रकाश निघण्टु शाकवर्ग)

(४) मांस के गुण-दोष-

मांसं-स्निग्धं उष्णं गुरु रक्तपित्तजनक वातहरं च ॥
सर्वं मांसं वातविध्वंसि वृष्यं ॥

मांस खूनकी बिमारी और पित्त विकार को बढाने वाला है।

अब भगवान् महावीर स्वामीके दाह रोग के जरिये शोचा जाय तो निर्विवाद सिद्ध है कि-यहां १ कपोत जानवर का मांस सर्वथा प्रतिकुल है, २ पारापत वनस्पति मध्यम हैं ३ पारिस भी मध्यम है, और ४ कोलाफल ही अधिक उपयोगी है ।

साथ साथ में यह भी सिद्ध है रेवती श्राविकाने जो "दूवे कवोय सरीरा" रक्खे थे, वे जानवर वनस्पति या पारिशफल नहीं किन्तु कोलाफल के मुरब्बे ही थे।

भगवतीसूत्र के प्राचीन चूर्णीकार और टीकाकारोने भी उक्त-पाठ का अर्थ "कूष्मांड" फल ही लीया है । जैसा कि—

कपोतकः पक्षिविशेषः तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात् ते कपोते-

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कूष्माडे, ह्रस्वे कपोते कपोतके ते च ते शरीरे वनस्पतिजीवदेहत्वात् कपोतशरीरे। अथवा कपोतकशरीरे इव धूसरवर्णसाधर्म्यादेव कपोतकशरीरे-कूष्मांडफले एव। ते उपस्कृते-संस्कृते। तेहिं नो अट्ठोत्ति बहुपापत्वात्।

माने-रंगकी समता के कारण कूष्माण्ड फल ही कपोत कहे जाते है। रेवती श्राविकाने उनको संस्कार देकर रख छोडे थे।

(आ० श्रीअभयदेवसूरीकृत भग० टीका पृ० ६९१)

(आ० श्रीदानशेखरसूरिकृत भग० टीका पृ०)

कूष्मांड फल का मुरबा दाह वगेरह रोग को शान्त करता है, यह बात आज भी ज्यों की त्यों सही मानी जाती है। आज भी आगरा वगेरह प्रदेश में गरमी की मोसम में कूष्मांड का मुरबा-पेंठा वगेरहका अधिकांश इस्तिमाल किया जाता है। मेरठ जिल्लामें भी सफेद कुंम्हडा जिसका दूसरा नाम कवेला हैं उसके पेंठे बहोत खाये जाते हैं।

सारांश-कूष्मांडका मुरबा, पेंठा, पाक वगेरह गरमी को शान्त करनेवाले हैं। और रेवती श्राविकाने भी भगवान् महावीरस्वामी के दाह रोग की शान्ति के लीये दुवेकवोयसरीरा माने "कूष्मांड फल का मुरबा" बनाकर रक्खाथा।

यहां कवोय शब्द कूष्मांड फलका ही द्योतक है।

(३) "सरीरा" शब्द पर बिचार—

"सरीरा" यह शब्द कवोय से निष्पन्न पुल्लिंगवाले द्रव्य का द्योतक है।

यदि यहां "सरिराणि" शब्द प्रयोग होता तो उसका अर्थ पक्षिका सरीर भी करना पड़ता, क्योंकि-नपुंसक शरीर शब्द ही शरीर या मुरदा के अर्थ में है। किन्तु शास्त्रनिर्माताको वह यहां अभीष्ट नहीं था, अत एव उन्होंने यहां नपुंसक "सरिराणि" प्रयोग लिया नहीं है।

शास्त्रकार ने यहां पुल्लिंग में "सरीरा" शब्दप्रयोग किया है

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अतः उसका अर्थ मुरबा और पाक ही है। पुल्लिग प्रयोग होने के कारण ही इतना अर्थभेद हो जाता है; बादमें आनेवाला पुलिंग-वाला "अन्ने" शब्द भी इस मत को पुष्ट करता है।

दुसरी बात यह है कि-मांसके लीये सीधे जातिवाचक शब्द ही बोलेजाते हैं, किन्तु उन के साथ सरीर शब्द लगाया जाता नहीं है। विपाकसूत्रमें मांसाहार का वर्णन है मगर कीसी स्थान में जातिवाचक नाम के साथ शरीर शब्द नहीं है। हां वनस्पति के साथ में "काय" शब्द मीलता है, माने वनस्पति काय-वनस्पति शरीर ऐसा प्रयोग होता है, वास्तव में सरीरा यह शब्द वनस्पति के साथ ठीक संगति पाता है

प्रस्तुत पाठ में कवोय के साथ जो सरीरा शब्द है वह विशेष्य के रूपमें ही है। इसी से भी निर्णीत बात है कि यहां सरीरा शब्द मुरबा व पाक के अर्थमें ही है।

तीसरा यह भी विचारणीय बात है कि-"कपोयसरीरा" के पूर्व "दुवे" शब्द देकर उनकी संख्या बताई है, मांस हो तो टूकडा होना चाहिये मगर यहां टूकडे बताये गये नहीं है इस हिसाब से भी यह बात मुरवा के पक्ष में पड़ती है।

सारांश-यहां "सरीरा" शब्द मुरबा के लीये और "दुवे कवोयसरीरा" शब्द दो कूष्मांड के मुरबा के लीये लीखा गया है

(४) "उवक्खडिया" शब्द पर विचार—

"उवक्खड़िया" यह शब्द पुंल्लिङ्गमें है, संस्कारका सूचक है।

उपासकदशांग और विपाकसूत्र वगेरह जिनागमों में मांस के लीये 'भज्जिए' 'तलिए' वगेरह शब्दप्रयोग है "उवक्खड़िया" प्रयोग नहीं है और श्रीभगवतीसूत्र आदि में प्रशस्त भोजनके लीये ही "उवक्खड़िया" शब्द प्रयोग है। माने-मांस के संस्कारमें "उवक्खडिया" प्रयोग किया जाता नहीं है।

अतः प्रस्तुत स्थान में "उवक्खड़िया" का प्रयोग हुआ है वह भी "कवोयसरीरा" से कपोत-मांस की नहीं किन्तु कूष्मांड पेंठा पाक की ही ताईद करता है।

(५) "नो अट्ठो" शब्दपर विचार—

"नो अट्ठो" यह शब्द निषेध के लीये है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रेवती श्राविकाने कूष्मांड पाक भगवान् महावीर स्वामी के निमित्त बना रक्खा था, किन्तु आधाकर्मीक-दोषयुक्त होने के कारण ही भगवान् ने उसे लाने की मना कर दी ।

जहां, निमित्त दोषवाला, आहार लेने का भी निषेध किया गया है; वहां मांसाहार लेनेका मानना, यह तो दुःसाहस ही है ।

(६) "अन्ने" शब्द पर विचार—

"अन्ने" यह शब्द "कुक्कुड-मंसए" का सर्वनाम है, उसका अर्थ होता है-दुसरे ।

यह शब्द पुल्लिग में है, एवं "कपोयसरीरा" और "कुक्कुड-मंसए" ये दोनों शब्द भी पुंल्लिग में है । पुंल्लिग होने के कारण वे वनस्पति विशेष ही है ऐसी गवाही 'अन्ने' शब्द देता है ।

(७) "पारियासिए" शब्द पर विचार—

"पारियासिये" यह बीजोरा पाकका विशेषण हैं, उसका अर्थ होता है, अधिक पुराणा ।

मांस असांचयिक बिगई है. बासी (पुराणा) मांस तो रोग को अधिक बढाता है. और एकदिन की बासी चीज के लीये 'पर्यासिए' नहीं, किन्तु 'पज्जुसिए' शब्द का प्रयोग किया जाता है, इस हालत में यदि, यहां किसी भी प्रकारका मांस होता तो यथानुकूल "पज्जुसिए" शब्द प्रयोग होता, किन्तु यहां वह शब्द प्रयोग न होने के कारण "परियासिए" से सूचित वस्तु मांस नहीं है, यह निर्विवाद बात है ॥

यहां अत्थि शब्द दिया है मगर साथ में 'उवक्खडिए या भज्जिए' शब्द नहीं है, अतः वह वस्तु मांस नहीं है, किन्तु बहूत काल रहेनेवाली कोई वस्तु है। मांने-कीसी भी प्रकार का "पाक" है ।

बृहत्कल्पसूत्र उ० ५ वगैरह स्थानो में अधिक काल तक रहनेवाले घी तेल वगैरह के सम्बन्ध में "पारियासिए" प्रयोग किया गया है । इस हिसाब से यहां भी पुराणा "बीजौरा पाक" के लीये "पारियासिए" प्रयोग है वह युक्तियुक्त है ।

(८) "मज्जार" शब्द पर विचार-

"मज्जार" यह एक कीस्मकी द्रव्य को वासना भावना याने

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

पुट देने की चीज है, जिसकी भावना गरमी वगैरह रोगो को शान्त करने में उपकारक है।

'मज्जार' का संस्कृत पर्याय "मार्जार" होता है।

मार्जार और मार्जार से बने हुए कतिपय शब्दो के अर्थ निम्न प्रकार हैं—

मार्जार–अब्भसह–बोयाण–हरितग–तंडुलेज्जग–तण–वत्थुल–चोरग 'मज्जार' पोइ–चिल्लीया। एक किस्मकी वनस्पति, भाजी।

(भगवती सूत्र श० २१)

मार्जार–वत्थुल–पोरग 'मज्जार' पोइवल्लीय पालका, एक किस्मकी वनस्पति॥

(पन्नवणा–सूत्त पद १ हरित–विभाग)

मार्जार–विरालिकाऽभिधानो वनस्पतिविशेषः। बिडालिका नामनी वनस्पति॥

(भगवती श० १५ टीका)

बिडालिका–एक किस्मकी औषधी.

(आचारांग सूत्र सू० ४५ पृ० ३४८)

बिडालिका–एक किस्मकी औषधी.

(दशवैकालिक सूत्र अ० ५ उ० २ गा० १८)

बिडालिका–वृक्षपर्णी

(क० स० श्री हेमचंद्रसूरि कृत निघंटु संग्रह)

बिडालिका–स्त्री भूमिकूष्मांडे, पेंठा, भोंयकोला.

(वैद्यक शब्द सिंधु)

विराली–एक किस्मकी बेल.

(पन्नवणा सूत्र वल्ली पद. १. गा० ४४)

बिडाली–स्त्री भूमि कूष्मांडे, पेंठा, भुंयकोला.

(शब्दार्थ–चिंतामणि कोष)

मार्जार–रक्तचित्रक.

मार्जार–वायुविशेष.

विल्ली–वनस्पति विशेष.

(प्रज्ञा० प० १ गा० १९–३७)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मार्जार-मार्जारः स्यात् खट्वांश-बिडालयोः। खट्टी चीज.

(क० स० श्री हेमचन्द्रसूरि कृत हैमी अनेकार्थ-नाममाला)
(वैद्यक शब्द-सिन्धु, जैनधर्म प्र० ५४/१२/ पृ० ४२७)

मार्जार-इगुद्यां तापस तरु मार्जार। इंदुगीका दरखत, जिस के तेल से बीजौरा हिमज वगेरह भुंजे जाते है

(हैमीनिघंटु संग्रह)

मार्जार-बिडाल ।
मार्जारी, मार्जारिका, मार्जारांधमुख्या-कस्तुरी
मार्जार गंधा, मार्जारगन्धिका,-एक किस्मका हिरन

(श्री जैन सत्यप्रकाश व० ४ अं० ७ क० ४३)

ये शब्द और इनके अर्थ "मार्जार" शब्द वनस्पति वर्ग में कितना व्यापक है इसका ठीक परिचय देते हैं।

अब भगवान् महावीर स्वामी के दाहरोग की अपेक्षा शोचा जाय तो मानना पडेगा कि-यहां बिडाल का तो कोई काम नहीं है, किन्तु मार्जार वनस्पति और खट्वांश ही उपकारक है। अतः उक्त रोग पर इनकी भावनावाला औषध ही दीया गया था।

बात भी ठीक है कि-दाह रोगमें खटाई वगेरह उपकारक हैं।

उक्त रोग में मार्जार नामका वायु भी सामील था, उसकी शान्ति के लीये जो संस्कार दिया जाय वह भी "मार्जारकृत" माना जाता है। इसी तरह यहां माजारका अर्थ "वायु" भी है। भगवती सूत्र के प्राचीन टीकाकारोने उक्त शब्द का वायु और वनस्पति अर्थ ही बताया है। जैसा कि—

मार्जारो वायुविशेषः तदुपशमाय कृतम्-संस्कृतं-मार्जार-कृतम्॥ अपरे त्वाहुः-मार्जारो बिडालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषः तेन कृतं भावितं यद् तत्।

(आ० श्री अभयदेवसूरि कृत भग० टीका पत्र-)
(आ० श्रीदानशेखरसूरि कृत भग० टीका पत्र—)

माने-मार्जारवायुकों दबाने के लीये जो औषध संस्कार दिया जाय वह "मार्जारकृत" माना जाता है। और मार्जार माने बिडालीका नामक वनस्पति से जो संस्कारित किया वह भी "मार्जारकृत" माना जाता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

सारांश-यहां 'मार्जार' शब्द वनस्पति का द्योतक है।

(९) "कड़ए" शब्द पर विचार—

"कड़ए" यह शब्द पुंल्लिग में है, संस्कार सूचक है, मार्जार शब्द से जुड़ा हुआ है और मंसएका विशेषण है। इसका संस्कृत पर्याय "कृतकः" है।

यदि यहां हड़ए हए वहिए वगेरह प्रयोग होता तो उस का 'बीडालने मारा हुआ' ऐसा अर्थ भी हो पाता, किन्तु यहां कड़ए प्रयोग है जिस का 'माजार से वासित भावित याने संस्कारित' यह अर्थ ही होता है।

इसके अलावा बीडाल कुकड़ा को मारे और छोड़देवे, ऐसी अछूत चीजों को शेठानी उठा लेवे, इस रोगमें वही ठीक माना जाय, इत्यादि कल्पना ही यहाँ अप्रासंगिक है।

'मांसए' और 'कड़ए'का पुल्लिग प्रयोग भी मांस अर्थ के खिलाफ में जाता है, और इस कल्पना को निष्फल बना देता है।

औषध विज्ञान में दूसरे से संस्कारित वस्तुओं के लीए दधिकृत राजीकृत मार्जारकृत इत्यादि प्रयोग होते हैं जिनका अर्थ-दहिंसे संस्कारित राईसे संस्कारित और बिडालिका औषधिसे संस्कारित वगेरह होता है।

सारांश—यहां कडए का अर्थ संस्कारित और 'मार्जार कड़ए' का अर्थ 'मार्जार वनस्पति की भावना वाला' होता है।

(१०) "कुक्कुड़" शब्द पर विचार—

"कुक्कुड़" यह एक किस्म की खाद्य 'वनस्पति' है। जो बहुत दिनों तक रह सकती है और जिसके खाने से गरमी रक्त-दोष पित्तज्वर और पेचीश इत्यादि रोग शान्त होते हैं।

जिसका संस्कृत पर्याय "कुक्कुट" होता है।

"कुक्कुट" और कुक्कुट से बने हुए कतिपय शब्दो के अर्थ निम्न प्रकार है।

कुक्कुट—श्रीवारकः शितिवरो वितन्तुः कुक्कुटः शितिः।

अर्थात्—श्रीवारक, चतुष्पत्री। (हैमोनिघंटु संग्रह)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

कुक्कुटी—कुक्कुटी पूरणी रक्तकुसुमा घुणवल्लभी।
अर्थ—पूरणी वनस्पति (हैमानिघंटु संग्रह)

कुक्कुट—शितिवारः सितिवरः स्वस्तिकः सुनिषण्णकः। २९
श्रीवारकः सूचिपत्रः, पर्णकः कुक्कुटः शिखी।
चाङ्गेरीसदृशः पत्रैश्चतुर्दल ईतीरितः ॥३०॥
शाको जलान्विते देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते।

अर्थ—चउपत्तिया भाजी-वनस्पति
(भावप्रकाश निघण्टु शाकवर्ग, शालिग्राम निघण्टु भूषण शाकवर्ग)

कुक्कुट-कुक्कुटः शाल्मलिवृक्षे- (वैद्यक शब्दसिन्धु)
कुक्कुट-बीजोरा, (भगवतीसूत्र टीका)

मधुकुक्कुटी-स्त्री मातुलुंगवृक्षे, बीजोरा,
(वैद्यकशब्द सिन्धु टीका)

सत्यभामा और भामा ये एकार्थवाले नाम हैं, वैसे ही मधु-कुक्कुट और कुक्कुट ये भी एकार्थवाले नाम हैं।

कुक्कुट—घास की उल्का, आग की चीनगारी, शूद्र और निषादण की वर्णसंकर प्रजा
(जै० स० प्र० व० ४ अं० ७ क्र० ४३)

कुक्कुट—१ कोषंडे, २ कुरडु, ३ सांवरी। इसके अलावा कुक्कुटपादप, कुक्कुटपादी, कुक्कुटपुट, कुक्कुटपेरक, कुक्कुट-मंजरी, कुक्कुटमर्दका, कुक्कुटमस्तक, कुक्कुटशिख, कुक्कुटा, कुक्कुटांड, कुक्कुटाभकुक्कुटी, कुक्कुटोरग वगेरह वैद्यक शब्द हैं।
(निघण्टुरत्नाकर, जै० स० प्र० क्र० ४३)

कुक्कुट-मुरघा, वनमुरघा।

इन शब्दों और अर्थों से पत्ता चलता है कि-'कुक्कुट' शब्द वनस्पति में बहुत व्यापक है।

वैद्यकग्रन्थो में कुक्कुट वनस्पति माने "चउपत्तिया भाजी" और "बीजोरा" के गुण दोष निम्न प्रकार मीलते है।

(१) चउपत्तिया भाजी के गुणदोष—

सुनिषण्णो हिमो ग्राही, मोह दोष त्रयापहा॥३१॥

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रूक्ष दीपनः ॥
वृष्यो रुच्यो ज्वरश्वासमेहकुष्ठभ्रम प्रणुत् ॥३२॥

सुनिषण्ण ठंडा ग्राहक त्रिदोषनाशक दाहशामक सुपाच्य दीपक ज्वरशामक है।

–(भावमिश्र कृत भावप्रकाश निघण्टु, शाकवर्ग)

पारापत फलगुण–दाहनाशक ज्वरनाशक तथा शीतल।

चौपत्तीया भाजी–दाहनाशक ज्वरहर शीतल तथा मलशोधक (दस्त बंध करनेवाली) खटाश–भाजीनां शाक दहीं नाखीने खाटां करवानो रिवाज जाणीतो छे. एटले खटाशनी जग्याए दहीं लइए तो झाडाना रोगमां अत्यंत फायदा कारक छे, आवी रीते आ चीजो प्रभु महावीर स्वामीना रोगनी दृष्टिए उपयोगी छे.

–(महो० काशीविश्वनाथ प्रह्लादजी व्यास, साहित्याचार्य काव्यसाहित्यविशारद मीमांसा शास्त्री, एल. ए. एम्. लिखित शास्त्रीय खुलासो, जैनधर्म प्रकाश पु० ५४ अं० १२ पृ० ४२७)

(२) बीजौरा के गुणदोष—

श्वास कासा ऽरुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥१४८॥
लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥
त्वक् तिक्ता दुर्जरा तस्य, वातकृमिकफापहा ॥१४९॥
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं, मांसं मारुतपित्तजित् ॥
मेध्यं शूलानिलछर्दि–कफारोचकनाशकम् ॥१५०॥
दीपनं लघु संग्राहि, गुल्मार्शोघ्नं तु केसरम् ॥
शूलानिलविबन्धेषु, रसस्तस्योपदिश्यते ॥१५१॥
अरुचौ च विशेषेण, मन्दे ऽग्नौ कफ मारुते ॥

बीजौरा–तृष्णा शामक, कण्ठ शोधक, दीपक है। बीजौरा का मांस (गुदा) शीत वायुहर पित्तहर है, वगेरह वगेरह।

–(सुश्रुतसंहिता)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

त्वक् तिक्तकटुका स्निग्धा, मातुलुंगस्य वातजित् ॥
बृहणं मधुरं मांसं, वातपित्तहरं गुरु ॥

बीजौरा का मांस (गुदा) पुष्टिकारक मधुर वातहर और पित्तहर है, वगेरह। —(वाग्भट्ट)

बीजपुरो मातुलुंगो रुचकः फलपूरकः ॥
बीजपुरफलं स्वादु, रसे ऽम्लं दीपनं लघु ॥१३१॥

रक्तपित्तहरं कण्ठ- जीव्हा हृदय शोधनम् ॥
श्वास कासा ऽरुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम् ॥१३२॥

बीजपुरो ऽपरः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी ॥
मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥१३३॥

रक्तपित्त क्षय श्वास कास हिक्का भ्रमा ऽपहा ॥१३४॥

बीजौरा—रक्तपित्तदोषका नाशक कण्ठ जीभ व हृदयका शोधक श्वास कास व अरुचिका विनाशक और तृष्णाहर है।

मधुर बीजौरा—शीतल रक्तपित्तनाशक है, वगेरह।

(भावप्रकाश निघण्टु फलवर्ग)

(३) स्मरणमें रहे कि-मुरघाका मांस उष्णवीर्य है। माने-दाह वगेरहको वढानेवाला है।

(सुश्रुत संहिता)

अब भ० महावीर स्वामी के दाह वगेरह रोग की अपेक्षा शौचा जाय तो निर्विवाद सिद्ध है कि-यहां मुरघा सर्वथा प्रतिकूल है चउपन्निया भाजी और बीजौरा ही उपकारक है।

नतीजा यह है कि-रेवती श्राविकाके घरमें जो 'कुक्कुड़-मांसक' था वह 'बीजोरा पाक' था।

भगवतीसूत्र के प्राचीन चूर्णीकार और टीकाकारोने उक्त शब्द से बीजौरापाक ही लीया है। जैसा कि--

मार्जारो वायुविशेषस्तदुपशमनाय कृतम्—संस्कृतम्—मार्जारकृतम् ॥ अपरे त्वाहुः—मार्जारो बिडालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषः

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तेन कृतं भावितं यत् तत् तथा किं तदित्याह 'कुक्कुटमांसकं' बीजपूरकं कटाहं आहराहित्ति निरवद्यत्वात्। पत्तगं मोएति पात्रकं पीठरकविशेषं मुंचति, सिक्के उपरिक्तं सत् तस्मादवतारयतीत्यर्थः।

(आ० श्रीअभयदेवसूरि कृत भग० टीका)

(आ० श्रीदानशेखरसूरि कृत भग० टीका)

माने—'बीजोरा पाक'ही कुक्कुटमांसक कहा जाता है वह रेवती श्राविका के वहां तैयार था!

आज भी दाह वगैरह की शान्ति के लीये बीजोरा अकसीर माना जाता है।

सारांश-यहां कुक्कुड़ शब्द बीजौरा का और 'कुक्कुड़मांसक' बीजौरा पाक का ही द्योतक है।

(११) "मंसए" शब्द पर विचार—

"मंसए" यह शब्द बीजौरा से निष्पन्न, पुल्लिंगवाची 'द्रव्य'का द्योतक है।

जिसका संस्कृत पर्याय "मांसकः" होता है

मांस, और मांस से बने हुए कतिपय शब्दो के अर्थ निम्न प्रकार हैं।

मांस (न०)—गुदा, फलगर्भ, फांक

मांस (न०)—मांस, गर्भ,

मांसक (पु०)—पाक, गुदा,

मांसफला (स्त्री०)-मांसमिव कोमलं फलं यस्याः। वार्तक्याम् बैंगन, भाटा।

(शब्दस्तोम महानिधि)

जटामांसी (स्त्री०)—जटामांसी, भूतजटा, बालछड वनस्पति,

(भावप्रकाश निघण्टु कर्पुरादि वर्ग श्लो० ८९)

रक्तबीज—मूंगफली, (भावप्रकाश पारिभाषिक शब्दमाला)

इन अर्थो से सिद्ध है कि-मांस शब्द मांस का द्योतक है और फल के गर्भ का भी द्योतक है, किन्तु मांसकः शब्द तो पाकका ही द्योतक है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

अब भ० महावीर स्वामी के दाह ज्वर आदि के लीये शोचा जाय तो वहां मांसक का अर्थ पाक ही समुचित है। देखो—

(१) स्निग्धं उष्णं गुरु रक्तपित्तजनकं वातहरं च मांसं॥

सर्वं मांसं वातविध्वंसि वृष्यं॥

मुरघा का मांस उष्णवीर्य है।

इत्यादि वैद्यक वचनो से यहां मांस सर्वथा प्रतिकुल ही माना जाता है

(२) प्राचीन काल में फलगर्भ और बीज के लीये मांस और अस्थि शब्द का विशेष प्रयोग किया जाता था, जिनागम और वैद्यक ग्रन्थो में ऐसे अनेक प्रयोग उपलब्ध हैं। जैसा कि—

बिण्टं स–मंसकडाहं एयाइं हवंति एगजीवस्स॥९१॥

टीका–'वृन्तं समंसकडाहं'ति–समांसं सगिरं तथा कटाह एतानि त्रीणि एकस्य जीवस्य भवन्ति–एकजीवात्मकानि एतानि त्रीणि भवन्तीत्यर्थः॥

(–श्री पन्नवणासूत्र पद १. सूत्र २५, पृ० ३६, ३७)

से किं तं रुक्खा? रुक्खा दुविहा पन्नता, तं जहा–एगट्ठिया य बहुबीयगा य। से किं तं एगट्ठिया? एगट्ठिया अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा–

निंबं ब जंबु कोसंब, साल अंकोल पीलु सेलू य।
सल्लइ मोयइ मालुय, बउल पलासे करंजे य॥१२॥
पुत्तंजीवय ऽरिट्ठे, बिभेलए हरिड़ए य भिल्लाए।
उंबेभरिया खीरिणि, बोधव्वे धायइ पियाले॥१३॥
पुइय निंब करंजे, सुण्हा तह सीसवा य असणे य।
पुण्णाग णाग रुक्खे, सिरिवण्णी तहा असोगे य॥१४॥

जेयावण्णे तहप्पगारा। एएसि णं मूला वि असंखिज्ज जीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि पत्ता पत्तेयजीविया, पुप्फा अणेगजीविया फला एगट्ठिया॥से त्तं एगट्ठिया॥

(पन्नवणा सूत्र पद–१ सूत्र–२३ पृ० ३१ जीवाभिगम सूत्र प्रति० १, सूत्र २० पृ० २६)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"त्वक्" तिक्ता दूर्जरा तस्य वातकृमिकफापहा।
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं "मांसं" मारुतपित्तजित् ॥

(सुश्रुत संहिता)

"त्वक्" तिक्तकटुका स्निग्धा मातुलुंगस्य वातजित्।
बृहणं मधुरं "मांसं" वातपित्त-हरं गुरु ॥

(सुश्रुत संहिता)

पूतना स्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसला मृता ॥८॥

(भावप्रकाशनिघण्टु, हरितक्यादिवर्ग)

मांसफला—बैंगन (शब्द स्तोत्र महा निधि)

एवं 'मांस' का प्रधान अर्थ 'फलगर्भ' भी है।

(३) "नपुंसकलिङ्ग वाला ही मांस शब्द मांसवाचक है किन्तु पुल्लिंगी मांसशब्द मांसवाचक नहीं है। यहां तो मांसक शब्द पुल्लिंग में ही है। कोई भी भाषा शास्त्री यहां भ्रमित अर्थ न कर बैठे, इस के लीये स्पष्टतया यह पुंल्लिग प्रयोग किया गया है, फिर कोई यहां मांस अर्थ करने लगे तो वह उसकी मनमानी है।

वास्तव में पुंल्लिग होनेके कारण यहां मांसका अर्थ मांस नहीं किन्तु 'पाक' ही होता है।

भगवती सूत्र के प्राचीन चूर्णीकार और टीकाकारोने भी "कुक्कुटमांसकं-बीजपुरकं कटाहं" लीखकर मांस का अर्थ 'पाक' ही लिया है।

सारांश—यहां 'मंसए' शब्द 'बीजौरा पाक'का द्योतक है।

उक्त मुकम्मील पाठ पर विचार—

यह सारा पाठ दाहज्वर के वनस्पति-औषध का द्योतक है। मूलपाठ इस प्रकार है—

तत्थणं रेवतीए गाहावइणिए मम अट्ठाए दुवे कवोयसरीरा उवक्खड़िया, तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जार कड़ए कुक्कुड़मंसए, तमाहराहि एएणं अट्ठो।

सर्वतो मुखी बुद्धिसे शोचा जाय तो इस समुच्चय पाठका अर्थ निम्न प्रकार ही है—

वहां रेवती गाथापत्नीने मेरे निमित्त दो पेंठे बना रक्खे हैं,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वे कामके नहीं है। किन्तु उस के वहां दूसरा विशेषपुराणा और विराली वनस्पति की भावनावाला बीजौरा पाक है उस को ले आ, वह कामका है ॥

सारांश—इस पाठ में प्राणीवाचक नाम वाली औषधिका ही स्वरूप वर्णन है। उसे लेनेसे ही भगवानका दाह शान्त हुआ था।

दिगम्बर–पं० कामता प्रसादजी दिगम्बर विद्वान् बताते हैं कि–भ० महावीर स्वामीका निर्वाण विक्रम से ४८८ साल पहिले हुआ है, अतः प्रचलीत 'वीर निर्वाण संवत्'में १८ वर्ष बढाने से वास्तविक वी०नि०सं० आता है, वीरनिर्वाण संवत् वही सच्चा है।

जैन–भगवान् महावीर स्वामीका निर्वाण विक्रम पूर्व ४७० में हुआ है, यह मत इतिहास सिद्ध माना जाता है। इस में १७ वर्ष बढाने से तो 'गोशाल संवत्' हो जाता है, क्योंकि भगवान महावीरस्वामी से करीबन १६॥ साल पूर्व मंखलीपुत्र गोशाल की मृत्यु हुई है, और असल में उसी को ही संतान आजका दिगम्बर सम्प्रदाय है अतः दिगम्बर साहित्य में गोशाल संवत ही कहीं 'वीर संवत्' मानलीया गया हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वास्तव में तो प्रचलीत 'वीर निर्वाण संवत्' सच्चा है कई दिगम्बर ग्रंथ भी इस मान्यता की ही ताईद करते हैं।

दिगम्बर–भ० महावीर का निर्वाण कार्तिककृष्णा१४ की रातके अंतभागमें हुआ है ऐसा दिगम्बर मानते हैं, जो ठीक जचता है।

जैन–भगवान् महावीरस्वामिका निर्वाण कार्तिक कृष्णा अमावसकी रातमें हुआ है, श्वेताम्बर ऐसा मानते हैं, दिगम्बर 'निर्वाण भक्ति श्लोक–१७' में वही बताया गया है और सिद्धक्षेत्र 'पावापुरीजी' में वही माना जाता है। किन्तु पावापुरी तीर्थ शुरूसे ही श्वेताम्बरो के अधीन है अतः हो सकता है कि–दिगम्बर समाजने चतुर्दशीको निर्वाण मनानेका वहांके लीए शुरु किया होगा और बादमें ओर २ ग्राम वालेने भी १४ को 'छोटी दिवाली' बोलकर निर्वाण मानना जारी कर दिया होगा, मगर वह सच्चा नहीं है। कुछ भी हो। भगवान् महावीर स्वामीका 'निर्वाण' का०कृ० अमावसको ही हुआ है, और वही सप्रमाण माना जाता है।

दिगम्बर–तीर्थंकर पद पाने के 'दर्शन विशुद्धि' वगेरह '१६ कारण' हैं, किन्तु श्वे०'२० स्थानक' बताते हैं, वो ठीक नहीं है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—जैसे २२ तीर्थंकरों के शासन के ४ महाव्रत और १ व २४ वे तीर्थंकरके ५ महाव्रत में वास्तविक फर्क नहीं है, वैसे इन १६ कारण और २० स्थानकमें भी कोई वास्तविक फर्क नहीं हैं, परस्पर समन्वय किया जाय तो दोनों में अभेदता ही पायी जाती है। उन सबका परमार्थ यह एक ही है कि—

जो होवे मुज शक्ति इसी, सवि जीव करुं शासन रसी।
शुचिरस ढलते तिहां बांधता, तीर्थंकर नाम निकाचता ॥१॥

दिगम्बर—दिगगम्बर मानते हैं कि सभीतीर्थंकरके ५ कल्याणक होते हैं, मगर कीसीर तीर्थंकरके ३या२ कल्याणक भी होते हैं।

(पं दोलतरामजी कृत आदिपुराण प० ४७ की वचनीका पृ० २४१ पं० सदासुखजीकृत रत्नकरंडश्रावकाचार भाषावचनीका षोडशभावना विवेचन पृ०२४१ पं० परमेष्ठीदास न्यायतीर्थ कृत चर्चासागर समीक्षा पृ० २४९)

जैन—जब ५ कल्याणक भी अनियत हैं। यदि ५ कल्याणक ही अनियत हैं तब तो तीर्थंकर पद पानेके कारण स्वप्न इन्द्र इन्द्रका वाहन और अतिशय वगेरह भी अनियत हो जाते हैं। इस हालतमें तो कारण १६ है या २०, स्वप्न १६ हैं या १४, इन्द्र १०० आते हैं या ६४, इन्द्रका वाहन ऐरावण है या पालक, जन्म के अतिशय १० है या ७ इत्यादि चर्चा ही बेकार हो जाती है।

आश्चर्य की बात है कि-तीर्थंकर तो होवे मगर उनके च्यवन आदिका पत्ता भी न चले, देव-देवीयों जन्मोत्सव भी न करे, एवं कई कल्याण भी न मनाये जायँ, इसे तो विवेकी दिगम्बर भी शायद ही सत्य मान सकते हैं।

दिगम्बर शास्त्र तो महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकर व उन की संख्या को नीयत रूपमें ही जाहिर करते हैं। जैसा कि—

तित्थ ऽद्ध सयलचक्की, सट्ठिसयं पुह वरेण अवरेण।
वीसं वीसं सयले, खेत्ते सत्तरिसयं वरदो ॥६८१॥

(नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ति कृत त्रिलोकसार)

(सिध्धांत सार, चर्चा समीक्षा पृ० ८१)

महानुभाव ? तीर्थंकरपदका तो तीसरे भवसे ही नीयत हो जाता है, उनके ५ कल्याणक अवश्य होते हैं व अवश्य मनाये जाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आश्चर्य अधिकार:

दिगम्बर–अब जो अवसर्पिणीकाल चल रहा है वह ज्यादा खराब है, अतः यह " हुंड अवसर्पिणी " काल माना जाता है और ईसीमें कई 'अघटन घटनाएँ' बनी हैं। उसके लीये लीखा है कि–

उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य–संख्यातेषु गतेष्वपि।
हुंडावसर्पिणी कालः, इहायाति न चान्यथा ॥७३॥
उपसर्गा जिनेन्द्राणां, मानभंगश्च चक्रिणाम्।
कुदेव–मठ–मूर्त्याद्याः, कुशास्त्राणि अनेकशः ॥७६॥
(सिद्धांत प्रदीप)

माने असंख्यात सर्पिणीकाल से जो एक सी व्यवस्था चली आती है, उसमें कभी कुछ नैमितिक फरक पडता है और कोई विभिन्न किन्तु होणहार और शक्य बात बन जाती है उसे "अघट–घटना" कहते हैं। इसीका ही दूसरा नाम 'आश्चर्य' याने 'अच्छेरा' है।
(सिद्धान्तसार त्रैलोक्य प्रज्ञप्ति पार्श्वनाथ पुराण हीन्दी)

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों अपने २ हिसाब से अलग २ आश्चर्य मानते हैं, और एक दूसरे के आश्चर्य को सर्व साधारण घटना या कल्पना के रूपमें जाहिर करते हैं। मुझे तो इस विषय में दिगम्बर अधिक सच्चे हो, ऐसा प्रतीत होता है।

जैन–आप प्रथम दिगम्बर के ओर बाद में श्वेताम्बर के सब आश्चर्यों को अलग २ करके शोचिये, कि इस विषय में भी सत्यासत्य का निर्णय हो जाय।

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि (१) सब तीर्थंकरों का जन्म 'अयोध्या नगरमें ही होना चाहिये किन्तु शीतलनाथजी नेमनाथजी वर्धमान स्वामी वगेरह तीर्थंकरोने भद्दिलपुर द्वारिका कुंडपुर वगेरह शहरोमें जन्म लीया, यह प्रथम आश्चर्य है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन–तीर्थंकर भगवान् आर्यभूमि में जन्म पावे यह तो ठीक बात है, किन्तु आगे बढ़करके अमुक स्थानमें ही जन्म पावे ऐसा छोटा डायरा मान लेना वही वास्तव में आश्चर्य है। यदि अयोध्या नगर में ही तीर्थंकरो का जन्म होना चाहिए यह अनादि नियम होता तो वहाँ ही चारो कल्याणक होने के कारण उस नगरका वास्तविक नाम 'कल्याणक नगर' ही होता, या वह नगर 'शाश्वत' ही होता और चक्रवर्ती वासुदेव आदि के लीये भी वही जन्म-भूमि रहता ॥१॥

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि-(२) तीर्थंकरों को संतान हो तो 'पुत्र' ही होना चाहिये पुत्री नहीं होनी चाहिये। किन्तु भगवान् ऋषभदेव को ब्राह्मी सुंदरी ये पुत्रीयाँ हुईं, वह दूसरा आश्चर्य है।

जैन–तीर्थंकर चक्रवर्ती होकर बादमें भी तीर्थंकर हो सकते हैं, इस हालतमें उन चक्री-तीर्थंकरोको दिगम्बर हिसाब से १६००० रानीयाँ होती हैं, यह कैसे माना जाय कि इन सब को कोई भी पुत्री नहीं होती है? क्या इन सबकी ऐसी ही तगदीर बनी होगी?। वास्तव में स्त्रीमोक्ष के खिलाफ में स्त्री जातिकी लघुता बताने के लीये ही यह घटना 'अघट' बन गई है ॥२॥

दिगम्बर–पुत्री की शादी करते समय पिता दामादको नमस्कार करता है, वही परिस्थीति तीर्थंकर की भी होवे, अतः तीर्थंकरके पुत्री होना उचित नहीं है।

जैन–श्वसुरजी दामादको नमें यह नियम न अनादि है, न शास्त्रोक्त है, न जैन विवाहविधि कथित है, न व्यापक है, और न सर्वत्र प्रचलित है।

कभी कीसी समाज में ऐसा व्यवहार चलता भी हो तो उसके आधार पर तीर्थंकरके लीये भी दामादको नमने का करार दे देना, यह तो एक बचाव मात्र है। भूलना नहीं चाहिये कि कई समाज में तो ससुरजी व सासुजी पिता व माता के समान माने जाते हैं।

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि (३) तीर्थंकर भगवान् को छद्मस्थ दशामें अपना अवधिज्ञान प्रकाशित करना नहीं चाहिये। किन्तु भगवान् ऋषभदेव ने वैसा किया, वह तिसरा आश्चर्य है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन–तीर्थंकर ये लोकोत्तर पुरुष हैं, वे नफा नुकसान को शोचकर सब काम को करते हैं, परोपकार बुद्धिसे आवश्यकताके अनुसार गृहस्थपने में नीति की शिक्षा देते हैं, वार्षिक दान देते हैं और सर्वज्ञ होने के बाद धर्मोपदेश देते हैं दर्शन ज्ञान व चारित्र का दान करते हैं, इत्यादि सब काम करते हैं। फिर वे उपकार के लीहाज से अवधिज्ञान को प्रकाशे तो उसमें आश्चर्य ही क्या है? ॥३॥

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि-(४) तीर्थंकर भगवान् को उपसर्ग होना नहीं चाहिये, किन्तु भगवान् पार्श्वनाथ को छद्मस्थ दशामें कमठद्वारा उपसर्ग हुआ, यह चौथा आश्चर्य है।

जैन–तीर्थंकरों को जन्म से होनेवाले १० अतिशयोमें ऐसा कोई अतिशय नहीं है कि जिसके द्वारा उपसर्ग का अभाव मान लीया जाय।

इसके विरुद्धमें दिगम्बर शास्त्र केवलज्ञान होनेके पश्चात् ही तीर्थंकरको ',(१५) उपसर्गाभाव" अतिशय उत्पन्न होनेका बताते हैं, इससे भी 'सर्वज्ञ होनेसे पहिले तीर्थंकर भगवान् को उपसर्ग हो सके,' यह बात स्वयं सिद्ध हो जाती है।

इसके अलावा "एकादश जिने" सूत्र से तो केवली भगवान् को भी "वध" परिषह विगेरह का होना स्वाभाविक है, तो फिर छद्मस्थ तीर्थंकर को उपसर्ग नहीं होना चाहिये यह कैसे माना जाय?। उपसर्ग भी कर्मक्षय का साधन है। वास्तव में केवली को भी उपसर्ग हो सकता है और तीर्थंकर को भी उपसर्ग हो सकता है।

हां; यह संभवित है कि "जो क्रोडो देवो से पूजित हैं और जीन का नाम लेने मात्रसे ही भक्तो के उपसर्ग दूर हो जाते हैं ऐसे केवली-तीर्थंकरको उपसर्ग नहीं होना चाहिये."। फिर भी इनको उपसर्ग होवे तो, उस घटना को आश्चर्य में सामील कर देना चाहिये ॥४॥

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि-(५) सब तीर्थंकरों का मोक्ष 'सम्मेतशिखर पहाड' परसे ही होना चाहिये किन्तु श्री ऋषभदेव भगवान् वगेरह ४ तीर्थंकरोमे अष्टापद पर्वत वगेरह ४ विभीन्न स्थानों से मोक्षगमन क़िया, यह पांचवाँ आश्चर्य है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—सब तीर्थंकर भगवान 'सम्मेतशिखर' से ही मोक्ष पावे, यह अनादि नियम होता तो उस पहाड़का वास्तविक नाम ही "जिनमुक्तिगिरि" होना चाहिये था। इतना ही क्यों! सिद्धशिला में भी उसके उपरका भाग 'जिनेन्द्रसिद्धशिला" ख्यात होना चाहिये था, मगर ऐसा कुछ है नहीं अतः तीर्थंकरोका अमुक सीमीत स्थान से ही मोक्ष मान लेना, वास्तव में वही आश्चर्य है ॥५॥

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि–(६) चक्रवर्तिओं का 'मानभंग' नहीं होना चाहिये, किन्तु भरतचक्रवर्तिका बाहुबली के द्वारा 'मानभंग' हुआ, वह छट्ठा आश्चर्य है।

जैन—चक्रवर्ति जन्म से चक्रवर्ति होता नहीं है, मगर अभिषेक होनेके बाद ही वह चक्रवर्ति माना जाता है। अगर अभिषेक होने के बाद चक्रवर्ति का मानभंग होवे तो वहां आश्चर्य का अवकाश भी है, किन्तु उसके पहिले भावि-चक्रवर्ति को कुछ भी सहना पड़े या शत्रुओ से लड़ना पडे तो उसमें आश्चर्य किस बातका?।

दूसरे २ शलाका पुरुषो के भी वैसे ही दृष्टान्त मीलते हैं। देखिए—

भगवान् पार्श्वनाथ को सर्वज्ञ होने से पहिले उपसर्ग हुआ।

ब्रह्मदत्त को चक्रवर्त्ति होनेसे पहिले अपने जीवको बचानेके लीये भागना पडा।

कृष्णवासुदेव को वासुदेव होने से पहिले जरासंघ के भय से मथुरा छोड़कर द्वारिका जाना पड़ा।

कृष्णवासुदेव को भगवान् नेमिनाथ से हार माननी पड़ी, माने मानभंग हुआ।

राज्य छोड़कर नीकले हुए चक्रवर्त्ति मुनि को परिषह और उपसर्ग भी होते हैं। चक्रवर्ति तो मरकर नरक में भी जाता है।

सारांश—चक्रवर्ति होने से पहिले भरत का चक्रवर्ती पद और मानभंग मानना ही फजूल है ॥६॥

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि- (७) वासुदेव की मृत्यु भाई के हाथ से होनी नहीं चाहिये, किन्तु 'जरतकुमार'के हाथसे वासुदेवजी की मृत्यु हुई, यह सातवां आश्चर्य है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—इस असार संसार में पुत्र पिता को, पिता पुत्र को, पति पत्नी को, पत्नी पति को, माता पुत्र को और भाई भाई को मारते हैं, पूर्व कर्म के कारण ऐसा बनता है, तो इसमें आश्चर्य भी क्या है ?। राज कुटुम्बो में तो भाईको भाई ही मारे यह तो सहज बात मानी जाती है। यह भी माना जाता है कि 'जिसको कोई न पहोंचे उसको पेट पहोंचे' माने-दूसरेसे अजेय व्यक्तिकी समता उसका भाई या पुत्र ही कर सकता है। भरत चक्रवर्तिके सामने गुड़ा टेकने वाला बाहुबलजी भी उसका भाई ही था, यह आम बात है।

फिर भी इनका मामला तो दूसरा ही है। पूर्वकर्म के कारण वासुदेव की मृत्यु भाई के हाथ से होनेवाली थी, जराकुमारने भी इस कातिल पापसे बचने के लीये पुरी कोशिश की वनमें वास भी किया, किन्तु होनहार मीटती नहीं है। जराकुमारने हरिण के भ्रमसे बाण मारा, और उसी ही बाण प्रहारसे वासुदेव की मृत्यु हुई। यहां न द्वेष था न युद्ध हुआ मगर भावी भाव बलवान है; आयुःकर्म के समाप्त होने पर मृत्यु हुई है किन्तु उस मृत्यु का निमित्तकारण 'जराकुमार'ही है।

दिगम्बर—६३ शलाका पुरुष को उत्तम देह के हिसाब से 'अनपवर्त्य' आयुष्य होता है, वे दूसरे के हाथसे कैसे मरे ?।

जैन—अनपवर्त्य आयुवाले जीव आयु के पुरे होने से पहिले मरते नहीं है, वे आयु के पुरे होने पर ही मरते हैं। मगर भूलना नहीं चाहिये कि उनकी मृत्यु जिस २ निमित्त से होनेवाली है उस २ निमित्त से ही होती है। शलाका पुरुष भी इस चूंगल से पर नहीं है। दृष्टान्त भी मीलते हैं कि-सुभूम चक्रवर्त्ती पानीसे मरा, सब प्रतिवासुदेव वासुदेव के शस्त्रप्रहारसे ही मरे, इत्यादि २।

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि-२४ तीर्थंकर १२ चक्रवर्ती ९ वासुदेव ९ प्रतिवासुदेव और ९-बलदेव ये ६३ 'शलाकापुरुष' हैं। और ६३ शलाकापुरुष ९ नारद ११ रुद्र २४ कामदेव १४ कुलकर २४ जिनेन्द्रपिता और २४ जिनमाता ये १६९ 'पुण्य पुरुष' कहलाते हैं।

(पं० मूलचन्द्रजी संगृहीत जैन सिद्धान्त संग्रह पृ० १९)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यहां (८) ६३ जीव ही ६३ शलाका पुरुष होना चाहिये, किन्तु शान्तिनाथ कुंथुनाथ व अरनाथ अंतिम भवमें चक्रवर्ति हुए और तीर्थंकर भी हुए, श्री महावीर स्वामी एक भवमें वासुदेव बने और अंतिम भवमें तीर्थंकर भी बने, इस प्रकार ५९ जीव ६३ शलाका पुरुष हुए, यह आठवां आश्चर्य है।

जैन–एक जीव एक भव में या अनेक भव में अनेक पद्वीयों को प्राप्त करे, उसकी मना तो है नहीं। दिगम्बर शास्त्रो में श्री शांतिनाथ कुंथुनाथ और अरनाथजी 'चक्रवर्ति' और 'तीर्थंकर'ही नहीं किन्तु 'कामदेव'भी माने गये हैं। इस हालत में जीवो की संख्या कम रहे यह स्वाभाविक है।

तीर्थंकर के लीये यह भी कोई कानून नहीं है कि–वे ब्रह्मचारी ही हो या गृहस्थी हो, एवं कुमार ही हो, राजा ही हो, या चक्रवर्त्ति ही हो। अत एव वे चक्रवर्त्ति होकर भी तीर्थंकर हो सकते हैं।

धर्म चक्रवर्ति होनेवाला पुरुष राष्ट्रपति भी हो सके, यह तो सहज बात है। फिर तो ६३ जीव ही ६३ शलाका पुरुष बनें यह ना मुमकीन ख्याल है।

दिगम्बर–दिगम्बर मानते हैं कि–(९) नारद और रुद्र नहीं होना चाहिये, किन्तु ९ नारद और ११ रुद्र हुए। यह नोवां आश्चर्य है।

जैन–दिगम्बर समाज एक तरफ तो १६९ पुण्य पुरुषो में ९ नारद और ११ रुद्रको पुण्य पुरुष बताते हैं और दूसरी तरफ उनको अघटन घटना में करार दे देती है। यह क्यों ?

पुण्य पुरुष का होना बजा माना जाता है फिर भी उसे बेजा मानना और उस पर आश्चर्य की महोर लगाना, यह तो दूना आश्चर्य है ॥९॥

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि (१०) जैन धर्मका लोपक व मुनि भिक्षा पर भी कर (टेक्स) डालनेवाले कल्की न होना चाहिये, किन्तु हजार२ वर्ष पर ११ 'कल्की'व ठीक बीच२ में ११ 'उपकल्की' होंगे (त्रिलोक सार गा० ८५० से ८५७) यह दसवाँ आश्चर्य है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन—धर्म अधर्मका युगल माना जाता है, जगत् में अनेकान्त दर्शन होता है तब एकांत दर्शन भी होते हैं, जैनधर्म होता है तब इतर धर्म भी होते हैं। अजैन राजा बलवान होकर जैनधर्म पर आक्रमण करे यह भी शक्य बात है, चौथे आरे में ही नमूचिने कितना उत्पात मचाया था? तो पांचवे आरे में कोई जैनेतर राजा जैन धर्म पर आक्रमण करे इसमें आश्चर्य किस बातका है?।

मगर ठीक पांचसौ२ वर्ष बीतने पर क्रमशः कलंकी व अर्धकलंकी होते ही रहे, यह बात भी ठीक नहीं है। आज पर्यंत वीर निर्वाणसे २४६९ वर्ष समाप्त हो गये, किन्तु पांचसो २ वर्षके हिसाबसे कल्की व उपकल्की पाये जाते नहीं हैं।

यहां इतना ही मानना ठीक है कि-प्रसंग२ पर जैनधर्मके द्वेषी राजा होते रहेंगे कोई जैनधर्म को कम नुकसान तो कोई अधिक नुकसान पहुंचावेगा। और कोई जैनधर्म का महान द्वेषी कल्की भी होगा। किन्तु ११ कल्की और ११ उपकल्की होंगे यह बात प्रमाणिक नहीं है। इस हालतमें यह आश्चर्य भी निराधार हो जाता है।

भूलना नहीं चाहिये कि-वीर शासन २१००० वर्ष तक चलेगा, उसमें कुछ २ चढ़ती पड़ती होती रहेगी किन्तु सर्वथा धर्मविच्छेद नहीं होगा ॥१०॥

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि-२४ तीर्थंकरोंके अंतर कालमें जैनधर्मका विच्छेद होना नहीं चाहिये किन्तु भगवान् सुविधिनाथजी से लेकर भगवान् शान्तिनाथजी तक तीर्थंकरोंके बीचले २ कालमें जैनधर्मका 'विच्छेद' हुआ। यह आश्चर्य है।

(त्रिलोकसार गा० ८१४)

जैन—तीर्थंकरोंके बाद उनके शासनमें ज्ञान व चारित्र घटते जाते हैं, इसी प्रकार घटते२ विच्छेद भी हो जाय तो उसमें आश्चर्य भी क्या है?।

दिगम्बर मतमें तो एक ही तीर्थंकर के शासन में भी अनेक धर्म विच्छेद और पुनर्विधान माने गये हैं। फिर उसका तो भीन्न२ तीर्थंकरो के शासन में होनेवाले 'धर्मविच्छेद' का शोचना ही बेजा है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैसा कि—

१ आचार्य कुंदकुंदस्वामी श्रीसीमंधर तीर्थंकरको अरज करते हैं।

श्वेतवासधराः स्वामिन्, स्वमतस्थापने रताः।
मिथ्यात्वपोषकाः मान–माया–मात्सर्यसंभृताः ॥२४७॥
जैनग्रन्था न दृष्यन्ते ॥२४८॥

माने—आज जो जिन—आगम विद्यमान हैं वे श्वेताम्बरके ही पोषक हैं, दिगम्बर के पोषक कोई भी जैन शास्त्र विद्यमान नहीं है (२४६ से २४८)।

सिद्धान्तान् प्रकटीचक्रे, पुनः सोऽपि यतीश्वरः ॥३४४॥
आचार्य कुन्दकुन्दस्वामिने नये सिद्धान्त जाहिर किये। पृ० ७९।

इत्यादि सकलान् ग्रन्थान्, चेलकान्त सुधर्मभाक्।
करिष्यति प्रभावार्थं, जिनधर्मस्य धर्मधीः ॥३५२॥

वस्त्रका विरोध करनेवाले और सद्धर्मको भजनेवाले आचार्य कुन्दकुन्दस्वामीजी, दिगम्बर जैन धर्मकी प्रभावनाके लीये उन्हीं सर्वग्रन्थों का निर्माण करेगा। (३५२, पृ० ८०)

स्वामीजी को ७०० साधु हुए, उन्होंने गीरनार तीर्थ की यात्रा की और श्वेताम्बर शुक्लाचार्य से शास्त्रार्थ किया।×(३५७से४३८)

यह शास्त्रार्थ वि० सं० १३६ में श्वेताम्बरो से हुआथा।

(श्लोक १४७ से १७९)

सीमंधर जिनेन्द्रस्य, दर्शकः संयताग्रणीः।
नाम्ना श्रीकुंदकुंदो वै जिनधर्म प्रकाशकः ॥६९०॥

आ० कुंदकुंदने जैनधर्म प्रकाशित किया (६९०)

× इस शास्त्रार्थ में आचार्य कुन्दकुन्दको जय नहीं प्राप्त हुआ था—

यहविध बहु विवाद हुओ पण कोई न हारे।
पद्मनंदी राय तदा पण एम विचारे॥
शास्त्रवाद नहीं यहां तो मंत्रवाद सुखकारे...... ॥५॥
नेमि जिनेश्वर तणी यक्षिणी गोमुख राणी ॥६॥

(सं. १६३० का० शु० १३ रविवार को कारंजा के श्रीचंद्रप्रभु मंदिरमें दिगम्बर विद्यासागर कृत रास, सूर्यप्रकाश पृ. ८१ से ८४ फूटनोट)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

(आ. नेमिचंद्र सिद्धांतचक्रवर्ति के 'अनागत-प्रकाश' के आधार पर विद्वद्वर नेमिचंद्र कृत और ब्र० ज्ञानचंदजी महाराज संपादित 'सूर्यप्रकाश')

२—"तिस समय श्वेताम्बर आम्नाय विशेष होय रही थी। दिगम्बर आम्नायमें कुछ कुछ विक्षेप पड गया था।"

"४७० की सालमें वारानगरमें श्रीकुंदकुंद मुनिराज थे।"

"वे विदेह क्षेत्रमें जाय पहुंचे"

"ग्रन्थोके नाम ये हैं—मतांतर निर्णय ८४०००, सर्व शास्त्र ८२००० कर्मप्रकाश ७२०००, न्यायप्रकाश ६२०००, ऐसे चार ग्रन्थ लेकर भगवानसुं आज्ञा मागी"।

"लाखो प्राणियोंने श्वेताम्बर धर्म छुड़ाय दिगम्बर किये। धर्ममार्ग प्रवर्त्ताया"॥

"कुन्कुन्दस्वामीके संघमें ५९४ मुनियोकी संख्या हो गई"।

माने—आचार्य कुन्दकुन्द ने धर्ममार्ग बताया।

(एलक पन्नालालजी दिगम्बर जैन सरस्वती भूवन–बम्बईका गुटका, सूर्यप्रकाश श्लो० १५२ की फूटनोट पृ० ४१ से ४७)

३ तेन मण्डपदुर्गे श्रीवसन्तकीर्त्ति स्वामिना चर्यादिवेलायां तट्टी सादरादिकेन शरीरमाच्छाद्य चर्यादिकं कृत्वा पुनस्तन्मुञ्चन्तीत्युपदेशः कृतः।

इस समयसे दिगम्बर मुनिधर्मका विच्छेद हुआ और भट्टारकों का प्रारम्भ हुआ।

(दर्शनप्राभृत गा० २४ की श्रुतसागरी टीका पृ० २१)

बादमें आचार्य शान्तिसागरसूरिजीने दिगम्बर मुनि मार्गका पुनर्विधान किया है।

४ तेरहपंथी मानते हैं कि—

पञ्चमकाले किल मुनयो न वर्तन्ते।

इस पांचवे आरेमें दिगम्बर मुनि है नहीं।

(दर्शनप्राभृत गा० २ की श्रुतसागरी टीका)

जिनवाणी का विच्छेद होने पर चारो संघ की कोई किंमत नहीं है एवं मुनिधर्म का विच्छेद होने पर भी और२ संघ की कोई किंमत नहीं है। वास्तवमें इसीका नाम ही 'धर्मविच्छेद'

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

है और वह दिगम्बर धर्म में सहज ही होता रहता है। अस्तु। कुछ भी हो। ऐसी घटना कोई अघटन घटना नहीं है॥

दिगम्बर—दिगम्बर मानते हैं कि—उस धर्म विच्छेद के समय 'ब्राह्मण कुलकी उत्पत्ति' हुई। वह भी आश्चर्य है।

जैन—यहां ब्राह्मण कुलकी उत्पत्ति यह कोई अजीब बात नहीं है किन्तु वे ब्राह्मण गृहस्थी हो गये अविरति रहे असंयति रहे फिर भी धर्मगुरु बन बैठे और अपनी पूजा कराने लगे यह अजीब बात है।

माने—"असंयति पूजा" ही यहां आश्चर्य घटना है।

दिगम्बर–इस असंयति पूजा के जरिए तो सब भट्टारकजी कविवर बनारसीदासजी श्वेताम्बर कडुआशाह लोंकाशाह * श्रीमद् रायचंदजी व कानजीस्वामी वगैरह नये मतवाले भी आश्चर्य में शामील हो जावेंगे।

जैन–भूलना नहीं चाहिये कि गृहस्थ होने पर भी धर्मगुरु बन बैठे श्रमणधर्म की कमजोरी का लाभ उठावे और जैनधर्म के प्रधान २ उसुलो से खिलाफ चले, इत्यादि परिस्थिति में ही 'असंयति पूजा'की घटना मानी जा सकती है॥

दिगम्बर–दिगम्बर माननीय विद्वान् श्रीयुत 'गोपालदासजी' बरैया, मुरैनावाले लिखते हैं कि—

---

* दिगम्बर आचार्य श्रुतसागरजी तत्कालीन लोंकागच्छ का परिचय देते हैं कि—

अथवा कलौ पंचमकाले कलुषाः कश्मलिनः शौचधर्मरहिताः वर्णान् लोपयित्वा यत्र तत्र भिक्षाग्राहिणः मांसभक्षिगृहेष्वपि प्रासुकमन्नादिकं गृह्णन्तः कलिकलुषास्ते च ते पापाः पापमूर्त्तयः श्वेम्बराभासाः लोकायकाऽपरनामानो लौंका म्लेच्छश्मशानास्पदेष्वपि भोजनादिकं कुर्वाणा स्तद्धर्मरहिताः कलिकलुषपापरहिताः श्री मूलसंघे परमदिगम्बरा मोक्षं प्राप्नुवन्ति, लौंकास्तु नरकादौ पतन्ति, देवगुरुशास्त्रपूजादि विलोपकत्वादित्यर्थः।

(दर्शनप्राभृत गा० ६ की टीका पृ० ६)

लौंकास्तु पापिष्ठा मिथ्यादृष्टयो जिनस्तवनपूजनप्रतिबन्धकत्वात् तेषां संभाषणं न कर्त्तव्यं तत्संभाषणे महापापमुत्पद्यते। तथा चोक्तं कालिदासेन कविना–"निवार्यतामालि ?०" तेन जिनमुनिनिन्दका लौंका परिहर्त्तव्याः।

(भावप्राभृत गा० १४१ की टीका पृ० २८७)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

"वर्त्तमान में कहीं कहीं एकसो वीश वर्षसे भी अधिक आयु सुनने में आती है, सो हुंडावसर्पिणी के निमित्तसे है। इस हुंडा-काल में कई बातें विशेष होती हैं। जैसे–चक्रवर्ति का अपमान, तीर्थंकर के पुत्रीका जन्म और शलाका पुरुषों की संख्यामें हानि।"

(जैन जागरफी भा० १ पृष्ठ १६)

माने–यह भी एक आश्चर्य घटना है।

जैन–महानुभाव! जो जो अटल नियम है इसमें विशेषता होने से 'अघटन घटना' मानी जाती है। किन्तु ऐसी २ साधारण बातो में अघटन घटना नहीं मानी जाती है।

इसके अलावा जिसके जीमें आया वह कीसीको भी अघटन घटना का करार दे देवे, वह भी कीसी भी सम्प्रदाय को जेबा नहीं है। वास्तव में प्राचीन शास्त्र निर्माता जिसे आश्चर्य रूप बता गये हैं उसे ही आश्चर्य मानना चाहिये।

दिगम्बर–दिगम्बर शास्त्र में भी १० आश्चर्य बताये हैं, किन्तु जहां तर्क का उत्तर नहीं पाया जाता हैं इसे भी हम आश्चर्य में दाखिल कर देते हैं, इस हिसाव से उपर की बात आश्चर्य में शामील हो जाती हैं।

जैन–इस प्रकार तो ओर २ भी अनेक बातें दिगम्बर मत में आश्चर्यरूप मानी जायगी। जैसा कि—

१ किंग एडवर्ड कॉलेज–अमरावती के प्रो. श्रीयुत हीरा-लालजी (दिगम्बर–जैन) लिखते हैं कि–दिगम्बर जैन ग्रंथोके अनु-सार भद्रबाहु का आचार्यपद वी. नि. सं. १३३ से १६२ तक २९ वर्ष रहा, प्रचलित वी. नि. संवत के अनुसार इस्वी पूर्व ३९४ से ३६५ तक पडता है, तथा इतिहासानुसार चंद्रगुप्त मौर्यका राज्य इस्वी पूर्व ३२१ से २९८ तक माना जाता है, इस प्रकार भद्रबाहु और चंद्रगुप्त के कालमें ६७ वर्षोंका अन्तर पडता है।

(माणिकचंद्र जैन ग्रंथमाला–बंबइ का जैन शिलालेख संग्रह, पृ० ६३, ६४, ६६)

दिगम्बर विद्वानो के मतसे आ. भद्रबाहुस्वामी व सम्राट् चंद्रगुप्त समकालीन नहीं है, पर भी दिगम्बर समाज में ये दोनों एककालीन माने जाते हैं। वह भी आश्चर्य है।

२ वीरनिर्वाण संवत् ६८३ में अंग ज्ञान का विच्छेद हुआ है अतः बाद में कोई अंगज्ञानी नहीं होना चाहिये, तो भी बाद के

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

आचार्य धरसेनजी पूर्वधर माने जाते हैं। वह आश्चर्य हैं।

इत्यादि २ अनेक बातें खड़ी हो जायगी। अतः मनमानी बातों को आश्चर्य में सामील करना नहीं चाहिये।

मानना पड़ता है कि—

आश्चर्य की मान्यता प्राचीन है, और १० की संख्या भी प्राचीन है, इन दोनों बातें और अपने संप्रदाय की रक्षाको सामने रखकर ही दिगम्बर शास्त्र निर्माताओने उक्त आश्चर्य व्यवस्थित किये हैं। क्योंकि इनमें कई तो नाम मात्र ही आश्चर्य हैं और कई निराधार हैं। जो वस्तु ऊपर दी हुई विचारणा से स्पष्ट हो जाती है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर मान्य आश्चर्य भी ऐसे ही होंगे?।

जैन—उनकी भी परीक्षा कर लेनी चाहिये। आप उसे भी अलग २ करके बोलो।

दिगम्बर—श्वेताम्बर कहते हैं कि-(१) उत्कृष्ट अवगाहनावाले १०८ जीव एक साथ एक समय में सिद्ध नहीं हो सकते हैं, किन्तु १ भगवान् ऋषभदेवजी, उनके भरत सिवाय के ९९ पुत्र, और ८ पौत्र एवं १०८ उत्कृष्ट अवगाहना वाले मुनिजी एक समय में ही सिद्ध बने। यह प्रथम 'अट्ठसय सिद्ध' आश्चर्य है।

जैन—१ समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ जीव मोक्ष पा सकते नहीं हैं, मगर इन्होंने मोक्ष पाया, अत एव यह 'अघट घटना' है।

दिगम्बर—इसमें आश्चर्य किस बात का? दिगम्बर शास्त्र तो १ समय में १०८ का मोक्ष बताते हैं। देखिए पाठ—

अवगाहनं द्विविधं, उत्कृष्टजघन्यभेदात्। तत्र उत्कृष्टं पंचधनुःशतानि पंचविंशत्युत्तराणि, जघन्यमर्द्धचतुर्था रत्नयः देशोनाः।

(तत्वार्थ राजवर्तिक पृ० ३६६ श्लोकवर्तिक पृ० ५११)

एकसमये कति सिध्यन्ति? जघन्येनैकः उत्कर्षेणा ऽष्टशतमिति संख्या ऽवगन्तव्या।

(तत्वार्थ राजवर्तिक पृ० ५३६)

माने उत्कृष्ट अवगाहना ५२५ धनुष्य की और जघन्य अवगाहना कुछ कम ३॥ रत्नी की है, और १ समय में जघन्य से १ व उत्कृष्ट से १०८ जीव मोक्ष में जाते हैं।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसी प्रकार श्वेताम्बर शास्त्रों में भी उत्कृष्ट अवगाहना ५०० धनुष्य से अधिक मानी गई है (तत्वार्थ भाष्य पृ० ५२) और १ समय में १०८ का मोक्ष बताया है, अतः यहां अघट घटना को अवकाश ही नहीं है।

जैन—जैसे क्षपकश्रेणी वाले पुरुष स्त्री और नपुंसककी संख्या में फर्क माना जाता है (धवला टीका पु० ३ पृ० ४१६ से ४२२) वैसे मोक्ष को पाने वाले उत्कृष्ट मध्यम और जघन्य अवगाहना के जीवो की संख्या में भी फर्क माना जाता है। श्वेताम्बर शास्त्र एक समय में १०८ जीवों का मोक्ष बताते हैं यह सीर्फ मध्यम अवगाहना वाले पुरुषो के लीये है, न कि उत्कृष्ट व जघन्य अवगाहना वाले जीवो के लीये, वे १ समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ जीवोके मोक्ष की साफ मना करते हैं। यह बात अवगाहना की तरतमता के कारण ठीक भी है। इस हिसाब के जरिए १ समय में उत्कृष्ट अवगाहना वाले १०८ का मोक्ष होना, आश्चर्यरूप माना जाता है।

दिगम्बर—भगवान् और उनके पुत्र-पौत्रों की उम्र में फर्क है तो फिर उन सब की अवगाहना में भी फर्क होगा।

जैन—उत्कृष्ट अवगाहना तो साधारणतया जवानीं में ही हो जाती है। देखिए, दिगम्बर आ. श्रुतसागरजी साफ लीखते हैं कि-

यः किल षोडषे वर्षे सप्तहस्तपरिमाणशरीरो भविष्यति 'स गर्भाष्टमे वर्षे अर्धचतुर्था रत्निप्रमाणो भवति'। तस्य च मुक्ति र्भवति मध्ये नाना भेदावगाहनेन सिद्धि र्भवति।

याने ७ हाथ की अवगाहना के हिसावसे १६ वे वर्ष में ७ हाथ और ८ वे वर्षमें ३॥ रत्नी अवगाहना होती है उसकी मुक्ति होती है।

(तत्वार्थसूत्र, अ० १०, सूत्र ९, टीका)

उस समय भगवान् ऋषभदेव और बाहुबली की उम्र में करीबन् ६ लाख पूर्व का फरक था। ऐसे ओरों २ की उम्रमें भी फरक था। किन्तु अवगाहनामें फर्क नहीं था वे सब जवान थे या वृद्ध थे, कोई भी बालक नहीं थे। अतः वे उत्कृष्ट अवगाहना

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वाले ही थे। कल्पनाके जरिये मान लो कि-किसी एक दो की अवगाहना में कुछ फर्क भी हो, किन्तु चोथे आरे के मध्यकालके योग्य मध्यम अवगाहनावाले तो वे नहीं थे अतः वे पुरी अव-गाहनावाले माने जाते हैं। इस तरह उत्कृष्ट अवगाहना होने के कारण ही यह 'आश्चर्य' माना जाता है।

दिगम्बर–श्वेताम्बर कहते हैं कि-(२) श्री सुविधिनाथ के तीर्थकालमें 'असंयति ब्राह्मणो की पूजा' जारी हुई। वह दूसरा "असंयतपूजा" आश्चर्य है।

जैन–इसे तो प्रकारांतसे दिगम्बर शास्त्र भी आश्चर्य मानते है। अतः यह ठीक आश्चर्य ही है।

दिगम्बर–श्वेताम्बर कहते हैं कि (३) भोग भूमि हरिवर्ष क्षेत्र का 'युगल' भरतक्षेत्रमें लाया जाय, वह मरके नरक में जाय और उसकी 'अयुगलिक' संतान परंपरा चले ऐसा बनता नहीं हैं किन्तु भगवान् शीतलनाथजी के तीर्थकालमें ऐसा प्रसंग बना और उससे "हरिवंश" चला है। वह तिसरा "हरिवंशोत्पत्ति" आश्चर्य है।

जैन–हरिवर्ष वगेरह भोगभूमि का युगलिक भरत का वासीन्दा बने और उसका कर्म भूमिज वंश चले इस बातकी तो श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों मना करते हैं। फिर भी यह हुआ, अतः वह 'अघट घटना' ही है।

दिगम्बर–दिगम्बर हरिवंश पुराण में भी हरिवंश की उत्पत्ति बताई है, जो यह है—

"१० वे श्री शीतलनाथ भगवान के तीर्थ में कौशाम्बी में सुमुख राजा था वहां एक शेठ रहता था उसको खुबसुरत शेठानी थी। राजाने एक दिन वसन्तोत्सव में शेठानी को देखा, और वह उस पर मोहित हुआ, शेठानी भी राजा पर मोहित हो गई, राजाकी इच्छानुसार बुद्धिमान मंत्री शेठानी को समझाकर राजमहेल में ले आया। वहां राजा और शेठानीजी प्रेमसे भेटे, संभोग किया और राजाने शेठानी को 'पटरानी' बनाई। ईन दोनोंने दिगम्बर मुनि को दान दिया और उसके द्वारा बहोत पुण्य उपा-र्जित किया। एक दिन बीजली गीरने से ये दोनों एक साथ

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

मर गये, और मुनि दान के प्रभाव से दुसरे भव में विद्याधरोंके पुत्र-पुत्री बने। वहां भी इन दोनों का एक दूसरे से ब्याह हुआ और राजा रानी बनकर आनन्द सुख भोगने लगे।

इधर कौशाम्बी का शेठजी शेठानी के वियोग से तड़पता रहा और आखीर में दिगम्बर मुनि बन गया, वह मरकर देव बना और अनेक देवांगना से भोग भोगने लगा। उसने एक दिन अवधि-ज्ञान से विद्याधर के वैभव में राजा और शेठानी को देखा, देखते ही उसे गुस्सा आया। उसने पूर्वभवके वैरका बदला लेने के लीये इन विद्याधरों को धमकाकर उठाकर भरतार्ध के चंपा नगर में ला पटके। और यहां के राजा-रानी बनाये। इनको हरि नामका लड़का हुआ, जिसकी संतान-परंपरा चली, वही 'हरिवंश' है।"

यह हरिवंशपुराण में कहा हुआ "हरिवंश" का इतिहास है। मगर इसे आश्चर्य माना नहीं है।

जैन-श्वेताम्बर और दिगम्बर में साहित्य निर्माण के भेद के कारण इस कथा में भी भेद पड़ गया है। श्वेताम्बर शास्त्र में हरिवंश की उत्पत्ति इस प्रकार है।—

"एक राजाने कीसी शालापति की खूबसूरत पत्नी वनमाला को उठाकर अपने अंतःपुर में रख ली, शालापति पत्नी के वियोग से पागल बन गया, एक दिन उसे देखकर राजा और वनमाला 'हमने यह बड़ा भारी पाप किया है' ऐसा पश्चाताप करने लगे और उसी समय ये बीजली से मरकर हरिवर्ष क्षेत्र में युगलिक रूप में उत्पन्न हुए।

इधर शालापति भी इनकी मृत्यु देखकर 'इन पापीओं को पाप का फल मिला' एसा शोच ते ही अच्छा हो गया और साधु बनकर मरकर व्यंतर हुआ। वह इन्हें अवधिज्ञान से देखकर विचार करने लगा कि-अरे ये पूर्वभव में सुखी थे, हाल युगलिक रूप से सुखी है और मरकर देव ही होवेंगे वहां भी सुखी होवेंगे मगर ये मेरे पूर्वभवके शत्रु हैं अतः इनको दुःखी ओर दुर्गति के भागी बनाना चाहिये। ऐसा शोचकर व्यन्तरने अपनी शक्ति से इनको छोटे शरीरवाले बनाकर यहां ला रक्खे, राज्य दिया और सातों कुव्यसन शिखलाये। ये भी पाप में मस्त रह कर मर गये और नरकमें गये। इनकी संतान परंपरा चली, वही 'हरिवंश' हैं।"

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

यदि विद्याधर से वंश चलता तो इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं थी क्यों कि भूचर और विद्याधरो का सम्बन्ध तो होता ही रहता है इतना ही क्यों ? दिगम्बर शास्त्र तो जम्बूद्वीप और धातकी खंड में भी आपसी वैवाहिक सम्बन्ध मानते हैं, वहां काल देहमान और आयुष्य आदि की समता होने के कारण आश्चर्य को अवकाश नहीं है। मगर यहां तो मामला ही दूसरा है, भोगभूमि और कर्मभूमि का ही भेद है, साथ साथ में आरा अवगाहना और आयुष्य का भी फर्क है। इस फर्क को हटा देना यही तो 'अघटन घटना' है।

यह घटना भी सच्ची है। इस में साम्प्रदायिक पुष्टि की कोई बात नहीं है कि-ऐसी कल्पित घटना खडी करनी पडे और इसे आश्चर्य का मुलम्मा भी चड़ाना पड़े।

दिगम्बर–देव करामत तो अजीव होती ही है। अत: देवके द्वारा बने हुए कार्य को कल्पना मानना निरर्थक है मगर यह तो बताओ कि इस में आश्चर्य क्या है ?।

जैन–इस घटना में युगलिकों को यहां ले आना, उनके शरीर को छोटा कर देना, अनपवर्त्य आयुष्य को भी घटा देना युगलिकों का नरक में जाना और उनसे 'कर्म भूमिज वंश' चलाना ये सब आश्चर्य है। "हरिवंश कुलोत्पत्ति" शब्द से ये. सब आश्चर्य लीये जाते हैं।

दिगम्बर–श्वेताम्बर कहते हैं कि-(४) स्त्री केवलीनी होकर मोक्षमें जा सकती है सिर्फ तीर्थंकरी बनता नहीं है, किन्तु मिथिला नगरी के कुंभ राजा की पुत्री मल्लीकुमारी मनःपर्यव ज्ञानी व केवलीनी होकर और १९ वे तीर्थंकर बनकर मोक्ष में गई और उसका शासन चला। यह चौथा "स्त्री तीर्थ" आश्चर्य है।

जैन–"पज्जत्ते विय" (गो० कर्म० गा० ३००) व "मणुसिणि ए" (गा० ३०१) से स्पष्ट है कि पुरुष को कभी स्त्रीवेद का उदय होता नहीं है एवं स्त्री को कभी पुरुषवेद का उदय होता नहीं है, और "थी-पुरिस०" (गो० कर्म्म० गा० ३८८) व "अवगयवेदे मणुसिणी०" (गो० जीव० ७१४) से निश्चित है कि स्त्री मोक्ष में जाती है, किन्तु तीर्थंकरी बनती नहीं है, इत्यादि तो

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर भी मानते हैं। फिर भी 'मल्लीकुमारी' तीर्थंकरी हुई अतः वह 'अघट घटना' है।

दिगम्बर—क्या दिगम्बर शास्त्र भी स्त्रीके तीर्थंकर पद की साफ २ मना करते हैं?

जैन—हां जी, दिगम्बर शास्त्र भी साधारणतया स्त्रीको "तीर्थंकर नामकर्म" का उदय मानते नही हैं। देखिए प्रमाण—

मणुसिणिए त्थी सहिदा, तित्थयरा हार पुरिस–संढूणा।

मनुषीणी को तीर्थंकर, आहारक द्वय, पुरुषवेद और नपुंसक वेदका कभी भी उदय होता नहीं है।

सारांश—पर्याप्त मनुषीणी को कभी भी १–अपर्याप्त नामकर्म का उदय नहीं है, २–तेरहवे गुणस्थान में जाने पर तीर्थंकर नाम प्रकृति का उदय नहीं है। ३–४–प्रमत्तसंयत गुणस्थान में जाने पर भी आहार द्विक का उदय नहीं है। ५–नौंवे गुणस्थान तक पुरुष वेद का उदय नहीं और ६–नौंवे गुणस्थान तक नपुंसक वेद का उदय नहीं है। पर्याप्त स्त्रीको इन ६ प्रकृति को छोड़कर शेष ९६ प्रकृति का उदय होता है।

(दिगम्बर आचार्य नेमिचन्दजी कृत गोम्मटसार कर्मकांड गा० ३०१)

साफ निरूपण है कि स्त्री मोक्ष में जाय मगर तीर्थंकर न बने।

दिगम्बर—दिगम्बर इसे इस रूपमें क्यों मानते नहीं है?।

जैन—उन्होने दिगम्बरत्व को पुष्ट करनेके लीये वस्त्र की मना की, साथ साथ में स्त्री मोक्षकी भी मना की। इस परिस्थिति में वे 'तीर्थंकरी'को व इस आश्चर्य को तो माने ही कैसे?। फिर भी गोम्मटसारमें उपरोक्त वस्तु सुरक्षित है यह भी खुशीकी बात है।

दिगम्बर—तीर्थंकरीके स्त्री अंगोपांग दीख पड़ते होंगे।

जैन—वास्तव में तीर्थंकरी सवस्त्र ही होती हैं फिर भी जैसे नग्न तीर्थंकर की नग्नता दीख पड़ती नहीं है वैसे तीर्थंकरीके अंगोपांग भी दीख पड़ते नहीं है।

दिगम्बर—यदि मल्लिनाथजी तीर्थंकरी थे, तो आपके लीये

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

स्त्रीलिंगका ही प्रयोग करना चाहियें था, किन्तु वैसा हुआ नहीं है, कई श्वेताम्बर शास्त्रमें भी आपके लोये "कर्मद्रून्मूलने हस्ति-मल्लं मल्लीमभिष्टुमः" इत्यादि पुंल्लिग में प्रयोग किये गये है, यह क्यों ?

जैन–किस लिंग का प्रयोग करना? यह व्याकरण का विषय है। व्याकरण तो स्वलिंग का पक्ष करते हैं और लिंग व्यभिचार को भी सम्मति देते हैं, 'कलत्रं गृहिणी गृहं' इत्यादि अनेक नजीरे मौजूद हैं। दिगम्बर आगमशास्त्र भी इस बात की स्वीकृति देते हैं, जैसा कि—

लिंग व्यभिचारस्तावदुच्यते,
स्त्रीलिंगे पुल्लिंगाभिधानं तारकास्वातिरिति।

"स्वाति तारा" यहां स्त्रीलिंग का पुलिंग में प्रयोग किया गया है।

(दि० षट्खंडागम–धवलशास्त्र पृ० ६४)

इसी ही प्रकार "मल्लीनाथ तीर्थंकर" का भी पुल्लिग में प्रयोग किया जाता है।

दूसरी बात यह है कि व्यवहार में सामान्यतया बहुसंख्या को प्रधानता दी जाती है, जैसा कि—

स्त्रीसभा—यहाँ २–४ पुरुष व बालकों की उपस्थिति होने पर भी स्त्रीओंकी विशेषता होने के कारण यह शब्दप्रयोग किया जाता है।

पंचांगुली—यहां अंगूठा पुलिंग है किन्तु आंगुली ४ होने के कारण यह शब्दप्रयोग भी प्रमाणिक माना जाता है।

रेल्वे गाडी—यह स्त्रीलिंग शब्द है, फिर उसमें पंजाबमेल फ्रन्टीयरमेल वगेरह पुल्लींग नामों का भी समावेश हो जाता है।

हाथी का स्वप्न—माता त्रिशला रानीने १४ स्वप्नों में प्रथम 'सिंह'को हो देखा था, किन्तु उनके चरित्रमें प्रथम 'हाथी' के स्वप्न का वर्णन किया गया है। कारण यही है कि–२२ तीर्थंकरोकी माताओंने प्रथम स्वप्न में 'हाथी'को देखा था, इसी प्रकार सर्वत्र बहु संख्या की प्रधानता दी जाती है।

इसी प्रकार यहां २३ तीर्थंकर है और १ तीर्थंकरी है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

तीर्थंकर की हेसियत से वे २४ एकसे हैं अतः उनका पुल्लिग शब्दप्रयोग किया जाता है। जो ठीक भी है। ऐसा करनेसे ग्रन्थ कर्त्ताओ को बड़ी सुभीता रहती है, बात तो यह है कि-वे न पुरुषवेदी हैं न स्त्रीवेदी हैं न नपुंसकवेदी हैं, और सबके जीव शब्द तो पुल्लिग ही है अतः इनका पुल्लिग से परिचय देना अधिक उचित जान पड़ता है। फिर भी कोई भूतसंज्ञा के जरिए तीर्थंकरीके लिये स्त्रीलिंग का शब्दप्रयोग करे तो वह भी अनुचित तो है नही।

दिगम्बर आचार्य भी भूतसंज्ञासे स्त्रीप्रयोगका स्वीकार करते हैं। देखिये—

अवगयवेदे मणुसिणि सण्णा, भूतगदिमासेज्ज ॥७१४॥

अवेदी बनने के बाद भूतसंज्ञा के जरिये उसे मनुषिणी कही जाय।

(गोमटसार, जीवकांड गा॰ ७१४)

वास्तवमें मल्लीनाथ तीर्थंकर का पुल्लिंग स्त्रीलिंग इन दोनोंसे प्रयोग किया जाना उचित है, व्यवहार सापेक्ष है।

दिगम्बर—क्या १ से अधिक 'तीर्थंकरी' भी हो सकती है?

जैन—हां! श्री पन्नवणाजी में '२ तीर्थंकरी'का भी उल्लेख है।

दिगम्बर—चौत्तीश अतीशयों में ऐसा एक भी अतिशय नहीं है कि जो स्त्री तीर्थंकरकी मना करे। माने-३४ अतिशयोंके जरिए 'तीर्थंकरी' होना ना मुमकीन बात नहीं है

जैन—याद रहे कि-मल्लीनाथ भगवान् 'स्त्रीवेद'में हुए, वही 'आश्चर्य' माना जाता है।

दिगम्बर—श्वेताम्बर कहते हैं कि-(५) वासुदेव अपने क्षेत्रसे बहार दूसरे क्षेत्रमें दूसरे द्वीप में जाता नहीं और दूसरे वासुदेव से मीलता नहीं है। किन्तु 'कृष्ण वासुदेव' द्रौपदी को लाने के लीये दो लाख प्रमाण लवण समुद्र को पार करके धातकीखण्डके भरतक्षेत्र की 'अपर कंका'में गये, पद्मोत्तर को नरसिंहरूप से जित कर द्रौपदी को लेकर वापिस आये, उन्होंने वापिस आते आते शंख बजाया, जिसको सून कर वहांके 'कपिल वासुदेव'ने भी

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

समुद्र के किनारे आकर शंख बजाया, इस प्रकार दोनों के शंख-शब्द मीले। वह पाँचवा "अपरकंका गमन" आश्चर्य है।

जैन-तीर्थंकर चक्रवर्ति बलदेव व वासुदेव दूसरे क्षेत्र में जावे और क्रमशः दूसरे तीर्थंकर आदिसे मीले इत्यादि बात की दिगम्बर भी मना करते हैं, फिर कृष्ण वासुदेव धातकी खंड में गये वह 'अघट घटना' है ही।

दिगम्बर-समुद्र के जलको हटाना, उसमें तो कोई आश्चर्य है नहीं, दिगम्बर शास्त्र में इस विषय की और भी नजीरें मीलती हैं। देखिए—

(१) गंगादेवीने भरत चक्रवर्ती का सत्कार किया, और भरत चक्रवर्तीने रथ द्वारा समुद्रके जलमार्ग में गमन किया।

(२) देवने समुद्र को हटा कर कृष्ण के लीये द्वारिका नगरी बसाई।

दिगम्बरी पद्मपुराण में तो वाली के पातालगमन तक का उल्लेख है तो फिर धातकी खंड में जाना कोई विशेष बात नहीं है।

द्रौपदीका हरण और उसे वापिस लाना, और कीसी राजाका पराजय करना उसमें भी कोई आश्चर्य नहीं है।

जैन-यहाँ वासुदेव का ही दूसरे वासुदेव के क्षेत्र में जाना, और दो वासुदेवो का शरीर से नहीं किन्तु शंख शब्द से मीलना वही आश्चर्य माना जाता है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर कहते हैं कि (६) तीर्थंकर उग्रकुल भोगकुल राजन्यकुल इक्ष्वाकुकुल क्षत्रियकुल या हरिवंश में गर्भरूप से आते हैं और जन्म लेते हैं। किन्तु भ० महावीर स्वामी ऋषभदत्त ब्राह्मण की पत्नी देवानंदा ब्राह्मणी की कोंख में गर्भरूपसे आये, इन्द्रके देवने उनका सिद्धार्थ राजा को त्रिशला रानी की कोंख में परावर्तन किया, और भ० महावीर स्वामीने त्रिशला रानीं की कोंख से जन्म पाया। वह छट्टा 'गर्भापहार' आश्चर्य है।

जैन-तीर्थंकरो का अयोध्या में राजकुल से ही जन्म, सम्मेदशिखर से ही मोक्ष इत्यादि कुछ कुछ नियम दिगम्बर भी मानते हैं, स्थान की मान्यता तो साधारण है किन्तु उच्चगोत्र

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होना तो खास बात है। अतः भ० महावीर स्वामी ब्राह्मण के कुल में आये वह "अघट घटना' है ही। दिगम्बर शास्त्र कई वर्ष के बाद रचे गये अतः उनमें इस आश्चर्य का जीक्र नहीं है।

दिगम्बर—ऐसा क्यों बना?

जैन—भगवान् महावीर स्वामीने मरीचि के भव में भरत राजा के वांदने पर तीनों उत्तम पदवीयों के निमित्त कुलका अभिमान किया था, और नीचगोत्र कर्म को बांधा था। देवानंदा ब्राह्मणी के कुल में जन्म लेने का कारण यही कर्म है।

इसी कर्म के उदयसे भ० महावीर स्वामीने कई भवों तक ब्राह्मण कुलमें जन्म पाया है।

मगर इसका सर्वथा क्षय नहीं हुआ, परिणामतः शेष रहा हुआ कर्म आखीर के भव में उदयमें आया, और भगवान महावीर स्वामी का देवानंदा की कोंखमें च्यवन हुआ।

दूसरी तरफ एक दौरानी और जैठानी का युगल था, जेठानी ने धोखा बाजो से दौरानी के रत्न चूरवा लीये, दानोंमें काफी लड़ाई हुई, कुछ रत्न पीछे दीये गये, इसी समय दौरानीने आवेश में आकर कह दिया कि–'यदि में सच्ची हुं और तूं जूठी है तो इसका बदला दूसरे भवमें तुजे यही मिलेगा कि–तेरा धन-माल पुत्र सब मेरा हो जाय!' बस वैसा ही हुआ। दौरानी भद्रिक थी वह मर करके सिद्धार्थ की रानी बनी, जेठानी मर करके ऋषभदत्तकी पत्नी बनी, और पूर्वभवके लेन-देनके अनुसार देवानंदा का पुत्र देवके द्वारा त्रिशला रानीको मीला। कर्मकी गति विचित्र है।

दिगम्बर—क्या ब्राह्मणकुल यह नीचगोत्र है?

जैन—नहीं जी। किन्तु यहां तो मरीचिने जिस कुलका अभिमान किया था उसके मुकाबले में यह उच्चता और नीचता मानी जाती है। वास्तवमें ब्राह्मणकुल यह भीक्षा प्रधानकुल है ब्राह्मण व ब्राह्मण कन्या को भीक्षुक भीक्षुकी कहने की नजीर महाभारत वगेरह में उपलब्ध है इस हिसाब से क्षत्रियवंश के मुकाबले में ब्राह्मणकुल उत्तम नहीं है। तीर्थंकर शौर्यवान होते हैं अतः उनका जन्म भीक्षुककुल में होता नहीं है, राजवंश में ही

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

होता है। तीर्थंकर सिवाय ओरों के लीये तो ब्राह्मणकुल भी उच्च कुल है। उस कुल के गणधर हुए हैं कई मोक्ष में भी गये हैं।

दिगम्बर—क्या एक भव में भी गोत्रकर्म बदल जाता है? उच्चगोत्री नीच और नीचगोत्री उच्च बन जाता है?

जैन—दिगम्बर शास्त्र से भी यह सिद्ध है कि-एक ही भव में भी गोत्रकर्म का परावर्त्तन हो जाता है। मोक्ष योग्य शूद्र के अधिकार में (पृ, ८८, ८९) इस बिषय के काफी दिगम्बर प्रमाण दिये गये हैं। पाठक वहां से पढ लेवे। गोत्रकर्म बदल जाता है। भगवान् महावीर के गोत्रकर्म बदलने पर ही गर्भका परावर्त्तन हुआ है। गर्भ का परावर्त्तक था इन्द्र के आज्ञांकित 'हरिण गमेषी देव'।

दिगम्बर—देवशक्ति तो अजीब मानी जाती है। दिगम्बर शास्त्र में भी ऐसी अनेक बात हैं। देखिये—

(१) देवने सीताके लीये धधकता हुआ अग्निकुंडको जलका कुंड बना दिया और उसमें कमल भी खील उठे।

(पद्मपुराण)

(२) देवने शूली का ही स्वर्णसिंहासन बना दिया, तलवार को मोतियन की माला बना दी। (सुदर्शन चरित्र)

(३) देवने काले सर्प की फूल माला बना दी।

(सोमारानी चरित्र)

(४) देवने मुरदेसे निकाले हुए दांत और हड्डिओंको खीर के रूपमें बना दिये, थाली का चक्र के रूप में परावर्त्तन कर दिया।

(पद्मपुराण, परशुराम अधिकार)

(५) मुनिसुव्रत स्वामी का आहार होने पर देवने ऋषभदत्त शेठके घर पर रत्नों की व फूलों की वर्षा की, भोजन अक्षय हो गया, उस भोजन से हजारो आदमी तृप्त हुए।

(हरिवंश पुराण)

(६) जटायु (गीध) एक पारिन्दा था। मुनि के दर्शन से वह सोनेका बन गया। और उसके सिरपर रत्न तथा हीरों की जटा निकल आई। इसमें भी देव करामत दिख पड़ती है।

(पद्मपुराण)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

इसी प्रकार देवद्वारा गर्भ परावर्त्तन होना तो संभवित है। मगर इस विषय में ओर भी कई बाते विचारणीय है।

जैन—इस गर्भ परावर्त्तन से तत्कालीन भारतीय विज्ञान कितना विकसित था उसका पत्ता चलता है। गर्भ परावर्त्तन यह कल्पित गप्प नहीं है आजके डॉक्टर भी ऑपरेशन द्वारा गर्भ परावर्त्तन करके आलम को आश्चर्य चकित करते हैं। थोडे ही वर्ष पहिले की बात है कि—

एक अमेरिकन डोक्टरने एक भाटिया ज्ञातिकी गर्भवती जनानाके पेटका ऑपरेशन किया था। शुरूमें डॉक्टरने गर्भवती-बकरी के पेटको चीरकर उसके बच्चेको बीजलीके सन्दूक में रख दिया और जनाना का पेट चीर कर उसके बच्चेको बकरीके गर्भस्थान में रख दिया, बादमें उस जनाना के पेटका ऑपरेशन किया। ऑपरेशन खतम होते ही उस बच्चेको जनानाके पेटमें और बकरीके बच्चेको बकरी के पेटमें पुनः स्थापित कर दिये। दोनोंको टांके लगा दिये और दोनोंको जिन्दे रक्खे। समय होने पर उन दोनोंने अपने२ बच्चेको जन्म दिया।

इस प्रकार नड़ियाद, मोरत, वगेरह स्थानों में कई करामती ऑपरेशन होते रहते हैं।

आजका यह विज्ञान भी गर्भपरावर्त्तन विषयक सब शंकाओ को रफे दफे करा देता है।

यह भी मार्के की बात है कि–तीसरे महिने का गर्भ पींड-रूप बनकर उठाने योग्य होता है, अतः हरिणगमेषीने भगवान् को ८३ वे दिन त्रिसला के उदर में रखा है। और त्रिसलारानी के उदर में जो कन्या गर्भ था उसे उठाकर देवानंदा के उदरमें ला रक्खा है।*

---

* जुदा जुदा प्राणीओमां गर्भ विकास काळ जुदो जुदो होय छे. देडकामां पंदर दिवसनो गर्भ विकास काळ होय छे अने देडकानी मादा पाणीमां इंडां मुके त्यारथीज पंदर दीवसमां ते ईंडानी अंदर गर्भनो विकास थाय छे अने त्यारे नानी माछली जेवुं हेंडपोल जन्मे छे गीनीपीगमां एकवीस दीवसनो गर्भ विकास काळ छे. ससला अने खीसकोली पांत्रीस दीवस, बिलाडीमां पंचावन दीवस, कुतरामां बासठ दीवस, सिंहमां त्रण महिना, डुक्करमां चार महिना,

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जिनागम में यह भी खुलासा कर दिया है कि-गर्भ को देवानंदा के योनिमार्ग से लिया था और कुछ चिरफाड़ करके सीधा त्रिशला के उदर में रक्खा था। बात भी ठीक है कन्या गर्भ की मोजुदगी में भगवान के गर्भ को सीधा उदरमें रखना ही उचित मार्ग था।

इन सब घटनाओं को मद्दे नजर रखकर शोचने से 'गर्भ-परावर्त्तन' विषयक सब विचारणिय बातें हल हो जाती हैं।

दिगम्बर—इस हालत में 'त्रिशला रानी' सती मानी जायँ ?

जैन—उसके सतीत्वमें कोसी भी प्रकार की बाधा आती नही है। कारण ? ८३ वे दिन गर्भपरावर्त्तन हुआ उस समय वह गर्भ न वीर्य स्वरूप था न शुक्र स्वरूप था और न प्रवाही द्रव्य था, किन्तु छ पर्याप्तिपूर्ण पांचो इन्द्रियवाला पींड रूप था, और इसमें न पर पुरुषका सेवन हुआ है, न पर वीर्य ग्रहण हुआ है न योनिमार्ग से गर्भ आया है और न स्वेच्छापूर्वक कार्य हुआ है।

रींछमां छ महिना, गायमा नवमहिना अने दश दीवस, घोडामां अगीआर महिना अने हाथीमां बावीस महिनानो गर्भ विकास काळ होय छे. मनुष्य गर्भनो विकास काळ नव महीना अने दस दीवसनो होय छे.

(गुजरात वर्नाक्युलर सोसाइटी अमदावाद प्रकाशित स्व० लालभाइ गुलाबदास शराफ स्मारकविज्ञान अने इन्डस्ट्रीझ ग्रंथमाळा अं. १, 'जीव विज्ञान' प्र० ४३ गर्भ पोषण प्रकार अने गर्भविकास काल पृ. २७९

जे जातीनो गर्भ होय ते जातीना अंगोनो पूर्ण विकास गर्भमां पोषणथी अमुक काळमां थाय छे. (जुओ गर्भपोषण अने गर्भ विकास काळ) आ काळने गर्भ विकास काळ कहेवामां आवे छे. आ प्रमाणे मनुष्य गर्भनो संपूर्ण विकास २८० दीवसमां थाय छे. मनुष्य गर्भना अंगोनी प्राथमिक रचना तो त्रणज महिनामां थइ जाय छे परन्तु तेमनी संपुर्ण खिलवट करवा तेमने बराबर मजबुत करवा अने तेमनो पूर्ण विकास साधी मनुष्य शरीरना पूर्ण रंग रूप अने लक्षणो आपवा बीजा छ महीना जोइए छे.

पहेला त्रण महिनामां गर्भने काचो गर्भ एम्बीओ Embeyo कहेवामां आवे छे अने पछीना छ महीनामां तेने पक्व गर्भ एटले फीटस Foetus तरीके ओळखवामां आवे छे.

(जीवविज्ञान पृ० ४४ गर्भ विज्ञान प्र० २८७–२८८)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

वास्तवमें देवद्वारा चीर फाड़ पूर्वक सीधा उदरमें ही गर्भ स्थापन हुआ है। इसमें असतीत्व को अवकाश ही नहीं है।

क्या दूसरे के बच्चेको अपनाने से या उनका तबादला करनेसे सतीत्व नहीं रहता है ?

गर्भपरावर्तनमें सतीत्वका विनाश हो ऐसी एक भी बात बनती नहीं है, अतः 'त्रिशला रानी' सती ही है।

देवकी के छै छै गर्भों का परावर्तन हुआ है किन्तु देवकीरानी सती ही मानी जाती हैं।

दिगम्बर–इस हालतमें भगवान् महावीर स्वामी कीसके पुत्र माने जाय ?

जैन–गर्भपरावर्तन होने पर या गोद लेने पर बच्चा दोनोंका माना जाता है। इसके दृष्टांत भी मीलते हैं। जैसे कि—

(१) इन्द्रने हरिणगमेषी द्वारा देवकी रानी के ६ पुत्रों का भद्दिलपुरकी वणिक पुत्री अलकाके ६ पुत्रो से परावर्तन करवाया ये लडके मुनिजी बनकर मोक्षमें भी गये हैं इन सबके दो दो मातापिता माने जाते हैं।

(हरिवंश पुराण, भाव प्राभृत गा० ४६ की टीका. पृ० १७५)

(२) कृष्ण वासुदेवका भी नंद और यशोदाके वहां परावर्तन हुआ है, अतः वे भी नंदकेलाला, नंददुलारे, यशोदानंदन, वसुदेवपुत्र, देवकीनंदन, यादवराय, इत्यादि नामसे पुकारे जाते हैं।

इसी प्रकार भगवान् महावीर स्वामी भी ऋषभदत्त व देवानंदाके और सिद्धार्थराजा व त्रिशला रानीके पुत्र हैं

भगवान महावीरस्वामीने भगवतीजी सूत्र में ऋषभदत्त और देवानंदाकी जीवनी आलेखित की है और वहीं देवानंदा ब्राह्मणी को अपनी माताके रूपमें जाहिर की है।

वाकई में यह घटना कल्पित होती तो इसे आगममें स्थान नहीं मीलता। और इस घटना में कोई सांप्रदायिक वस्तु तो है नहीं।

दिगम्बर–माननीय पूज्यों की ऐसी २ घटनायें सुरक्षित रहे वह ठीक नहीं है, अतः इस चरित्रांशको आगममें दाखिल नहीं करना चाहिये था, इसे तो साफ उडा देना था।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

जैन–स्वयं तीर्थंकर भगवान्ने श्रीमुख से जो फरमाया है उसे उडा देना, यह तो भारी अज्ञानता है, सत्यका द्रोह है, महा पाप है। इस घटना के पीछे अनेक सत्य छीपे हुए हैं।

जैसे कि—जगत्कर्तृत्वका निरसन, कर्मकी स्थीति स्थापकता, जीवकर्म्मका सम्बन्ध, कर्म विपाककी विषमता, बन्ध, मोक्ष, आत्माका विकास, उत्क्रमवाद, अप्पा सो परमप्पा, और जैनदर्शन की सिद्धि वगेरह वगेरह।

दिगम्बर–सुना है कि–खरतरगच्छके आ० जिनदत्तसूरिजी असलमें दिगम्बर हुमड थे, मगर बादमें श्वेताम्बर मुनि बने हैं, वे इस गर्भापहार को कल्याणक भी मानते हैं।

जैन–कीसी अंशमें यह ठीक बात है। आ०जिनवल्लभसूरिजि ने ६ कल्याणककी प्ररूपणा करके 'षट्कल्याणक मत' चलाया है, और आपके ही पट्टधर आ० जिनदत्तसूरिजी ने उसे अपनाकर 'खरतर' मत चलाया है। इस प्रकार आ०जिनदत्तसूरिजी गर्भापहार नामक छठे कल्याणक के स्थापक नहीं किन्तु समर्थक हैं।

यहां वास्तविक सत्य इतना ही है कि–भगवान् महावीरस्वामीका गर्भापहार हुआ हैं और वह प्रसंग कल्याणक के रूपमें नहीं किन्तु जीवनी की विशेष घटना के रूपमें माना जाता है, इसके अतिरिक्त गर्भापहारकी मना करना वह एकांत पक्ष है, और गर्भापहार को कल्याणक मानना वह भी सर्वथा एकांत पक्ष है यूं ये दोनो एकांत पक्ष ही हैं। मगर यहां एक बात स्पष्ट हो जाती हैं कि–दिगम्बर मत गर्भापहारकी मना करता है, अत एव संभवतः दिगम्बर की हेसियत से ही आ० जिनदत्तसूरिजीने गर्भापहार पर ज्यादह जोर दिया है, माने एक सत्य घटना पर विशेष प्रकाश डाला है।

यहां भ०महावीरस्वामी के नीचगोत्र कर्मका उदय, ब्राह्मणी की कोखमें आना, हरिनैगमेषी के द्वारा गर्भका परावर्तन होना १४ स्वप्नों का अपहरण और त्रिशला रानी के उदरमें साड़े छे महिने तक बसना, ये सब इस आश्चर्य में शामील है।

दिगम्बर–श्वेताम्बर कहते हैं कि—(७) चमरेन्द्र ऊपरके देवलोक में जाता नहीं है, किन्तु 'पूरण' नामका तपस्वी मरकर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

'चमरेन्द्र' बना, और उसने ऊपरके सौधर्म देवलोकमें अपने ठीक शिर पर बैठे हुए 'सौधर्मेन्द्र' को वहांसे हटानेके लीए सुसुमार पुरमें खडे २ ध्यान करते हुए भगवान महावीरस्वामीका शरण लेकर प्रथम देवलोकके सौधर्मावतंसक बिमानमें प्रवेश किया, और इन्द्र को कोसा। वह सातवां 'चमरोत्पात' आश्चर्य है।

जैन-देव और असुरोमें स्वाभाविक वैर बना रहता है, अतः यह घटना बनी है।

आ० नेमिचंद्र सिद्धांत चक्रवर्ति भी फरमाते हैं कि—

चमरो सोहम्मेण य, भूदाणंदो य वेणुणा तेसिं।
विदिया बिदिएहिं समं, इसंति सहावदो नियमा ॥२१२॥

चमरेन्द्र सौधर्मेन्द्रसे इर्षा रखता है, भूतानंद वेणुसे इर्षा रखता है और वैरोचन धरणेन्द्र वगेरह असुरेन्द्र ईशानेन्द्र वगेरह देवेन्द्रों से इर्षा रखते हैं, उनका यह वैरभाव स्वाभाविक ही निश्चय से बना रहता है।

(त्रिलोक सार गाथा २१२)

यद्यपि भूवनपति देव इतनी ऊर्ध्वगति करनेकी ताकात रखते हैं मगर वे इतनी ऊर्ध्वगति करते नहीं है, फिर भी यह चमरेन्द्र ऊपर गया अतः वह 'अघट घटना' मानी गई है।

इस घटनामें सौधर्मेन्द्र को जिनेन्द्रभक्ति का भी अच्छा परिचय मीलता है। क्योंकि-सौधर्मेन्द्र ने भी चमरेन्द्र को वज्र फेंककर भगाया तो सही, किन्तु भगवान् महावीर स्वामीके शरण लेने के कारण छोड़ भी दीया।

यहां असुरेन्द्र सोधर्म देवलोकमें गया, यह 'आश्चर्य' माना जाता है।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मानते हैं, कि-(८) तीर्थंकर भगवान् का उपदेश निष्फल जाता नहीं है, किन्तु ऋजुवालुका नदीके किनारे पर प्रथम समोसरनमें दिया हुआ भ० महावीर स्वामीका उपदेश सीर्फ देव-देवीओंकी ही पर्षदा होनेके कारण निष्फल गया। वह आठवा 'अभाविता परिषद्' आश्चर्य है।

जैन-दिगम्बर शास्त्र भी इस घटनाकी गवाही प्रकारान्तर

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

से देते ह। वे बताते हैं कि-'भगवान् महावीर स्वामीको वै० शु० १० को केवलज्ञान हुआ, परन्तु उनका 'दिव्यध्वनि' ६६ दिन तक नहीं खीरा, अत: उनका प्रथम उपदेश श्रा० कृ० १ को हुआ।'

माने—सर्वज्ञ होने के पश्चात् ६६ दिवस तक तीर्थंकर भ० महावीर स्वामीका उपदेश ही नहीं हुआ।

श्वेताम्बर शास्त्र तो 'तीर्थंकरनामकर्म' के उदयके कारण केवल प्राप्ति के दिवस से ही भ० महावीर स्वामीका उपदेश दान मानते हैं। साथ साथमें यूं भी मानते हैं कि-पहिले दिन मनुष्य समोसरन में न आ सके, देव आये थे कि जो अविरति होते हैं अत: उस समय का भ० महावीरस्वामीका उपदेश निष्फल गया, बादमें दूसरे ही दिन वै० शु० ११ को भगवान् अपापा में पधारे, वहां उन्होंने उपदेश दिया, जीव और कर्म आदिकी शंकाए हटवाकर इन्द्र भूति गौतम आदिको दीक्षा देकर 'गणधर' बनाये,× त्रिपदीका दान किया और चतुर्विध संघकी-तीर्थकी स्थापना की।

इस प्रकार सर्वज्ञ होने पर भी तीर्थंकर भगवान् की देशना निष्फल जाय, यानी दिगम्बरीय कल्पना के अनुसार वे उपदेश ही न देसके-मौन रहे, यह 'अघटन घटना' तो है ही।

दिगम्बर—भगवान् महावीर स्वामीका दिव्यउपदेश ६६ दिन तक नहीं हुआ उसका कारण 'वहां गणधर की उपस्थीति नहीं थी,' वही है ऐसा दिगम्बर शास्त्रमें बताया गया है, मगर यह ठीक जचता नहीं है। क्योंकि-दिगम्बर मानते हैं कि भगवान् ऋषभदेवकी वाणी विना गणधर के ही खीरी थी, जिस तरह वह खीरी थी उसी तरह भ० महावीर स्वामी की वाणी भी विना गणधर के खीर सकती थी, और तीर्थंकर भगवान भी अमुक खास श्रोता के अधीन है नहीं, फिर ६६ दिनतक उसकी वाणी क्यों न खीरी? इस प्रश्नका कोई उत्तर नहीं है, अतः इस घटना को भी आश्चर्य तो मानना ही चाहिए!।

जैन—यहां १२ पर्षदा की अनुपस्थीति, महाव्रत, अणुव्रत आदिका अस्वीकार, और तीर्थकी स्थापना नहीं होना, यह 'आश्चर्य' है।

× जीवाजीव विसय संदेह विणासणमुवगय
वड्ढमाण पादमूलेण इंदभूदिणा वहारिदो।
(षट्खंडागम पु० १ पृ० ६४)

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दिगम्बर–श्वेताम्बर मानते हैं कि-(९) तीर्थंकर भगवान् का सर्वज्ञ होने के पश्चात् उपसर्ग होते नहीं है, इतनाही नहीं, उनके नाम लेने वालेके भी उपद्रव शान्त हो जाते हैं। किन्तु भ० महावीर स्वामी को शिष्याभास गोशाल द्वारा उपसर्ग हुआ, एवं छै महिने तक अशाता वेदनीय का उदय रहा। वह नौवां 'उपसर्ग' आश्चर्य है।

जैन–दिगम्बरशास्त्र छद्मस्थ तीर्थंकर को और खास करके "उपसर्गाभाव" अतिशय द्वारा सर्वज्ञ-तीर्थंकर को सर्वथा उपसर्ग रहित जाहिर करते हैं, और भगवान् पार्श्वनाथ के उपसर्ग को 'आश्चर्य' में दर्ज भी मानते हैं तो फिर सर्वज्ञतीर्थंकर को उपसर्ग होवे वह 'आश्चर्य' है ही।

श्वेताम्बर शास्त्र सिर्फ सर्वज्ञ तीर्थंकर के लिए ही उपसर्ग की मना करते हैं, अतः मंखलीगोशाल द्वारा सर्वज्ञ भ० महावीर स्वामी को उपसर्ग हुआ वह अघटघटना मानी जाती है।

इस मंखलीपुत्र गोशाल का जीक्र दिगम्बर शास्त्र में भी मीलता है।

दिगम्बर–केवली भगवान् को अशातावेदनीय और वध-परिषह होते हैं, फिर उपसर्ग होवे उसमें 'आश्चर्य' क्या है?

जैन–३४ अतिशय होने से तीर्थंकरों को उपसर्ग होता ही नहीं है, अत एव तीर्थंकर को 'उपसर्ग होना' वह आश्चर्य माना जाता है।

यहां मुनि सुनक्षत्र और मुनि सर्वानुभूति की तेजोलेश्या से मृत्यु, भगवान् को उपसर्ग और छै महिने तक पित्तज्वर-दाह का रोग इत्यादि सब इस 'आश्चर्य' में दर्ज है।

दिगम्बर–श्वेताम्बर मानते हैं कि—(१०) सूर्य और चन्द्र अपने मूल विमान के साथ कभी भी यहां आते नहीं है, किन्तु सूर्य और चंद्र अपने मूल विमान के साथ भ० महावीरस्वामी को वंदन करने के लीए कौशाम्बी में आये, वह दसवां 'सूर्य-चंद्रावतरण' आश्चर्य है।

जैन–इन्द्र वगेरह को यहां आना हो तो वे अपने स्वाभाविक वैक्रिय रूप से नहीं किन्तु उत्तरवैक्रिय रूप से ही यहां आते है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

व्यंतर संगमक वगेरह सामान्य जाति के देव कभी २ यहां मूल देह से भी आ जाते हैं। सूर्य और चंद्र जो ज्योतिषीओं के इन्द्र हैं वे भी मूलवैक्रिय रूप से यहां आते नहीं है और उनके असली विमान भी यहां लाये जाते नहीं है, फिर भी वे अपने मूलरूप से ही अपने असली विमान में बैठकर श्रीजीके पास आये तो वह आश्चर्य रूप है ही।

दिगम्बर–उस समय सारे भरतक्षेत्र में तो अंधेरा छा गया होगा?

जैन–सूर्य और चन्द्रने परिक्रमा और प्रकाश करने के कार्य चालु रक्खे थे, अतः अंधेरा नहीं हुआ था।

दिगम्बर—वे विमान में बैठकर तीर्थंकर के पास आवे इसी से धर्म की प्रभावना होती है, मगर वह कार्य तो उनके नकली देहसे नकली विमान में बैठ आने पर भी हो सकता है, तो संभव है कि वे इसी तरह आये होंगे?

जैन—इसी तरह तो वे कई दफे आते जाते हैं और उनमें आश्चर्य भी गीना जाता नहीं है, मगर जब 'अघटन घटना' बनती है तभी उसे 'आश्चर्य' माना जाता है। यहां वे मूल रूप से और असली विमान में आये वह 'विशेषता' है और वही 'आश्चर्य' है, उसमें जैन धर्म की प्रभावना भी विशेष रूप में मानी जाती है।

दिगम्बर–यदि यह घटना वास्तविक होती तो दिगम्बर भी धर्म प्रभावना का अंग मान कर इसे स्वीकार लेता, मगर दिगम्बरोने इसे अपनाया नहीं है, अतः शुबा होता है कि–यह घटना शायद ही बनी हो।

जैन–दिगम्बर शास्त्र इस घटना को अवश्य ही अपना लेते। मगर इस घटना के पीछे एक ऐसा सत्य छीपा हुआ है कि जो दिगम्बर मान्यता के खीलाफ में है, अत एव दिगम्बरोने अपनाया नहीं है। जो यह है—

सूर्य और चंद्र अपने विमान को लेकर कोशाम्बी के समोसरन में आये उस समय वहां चकाचौंध हो गया था, आर्या मृगावती वगेरह 'अभी तो दिवस है' ऐसे ख्याल से वहां हीं बैठे

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

रहें। उनके विमान के चले जाने पर देखा तो अंधेरा सा ही हो गया था, अतः आर्या मृगावती भी एकदम अपने उपाश्रय में जा पहूंची। उस समय उनकी गुरुणी आर्या चंदनबालाने फरमाया कि-'तुम्हें इतना उपयोग शून्य बनना नहीं चाहिये कि दिवस है या नहीं है उसका पत्ता भी न लगे, इत्यादि' इतना सुनते ही आर्या मृगावती अपनी गलती का पश्चात्ताप करने लगी और उस समय वहां ही उसी ही शुभ भावना के जरिए घातियें कर्मों को हटा कर 'आर्या मृगावती'ने केवल ज्ञान प्राप्त किया। उन्हें केवलीनी देख कर 'आर्या चंदनबाला'ने भी मैंने केवली की अशातना की एसा मानकर उसका पश्चात्ताप करते करते केवलज्ञान पाया। इस प्रकार सूर्य और चंद्र के अवतरण के साथ दो आर्याओं के केवलज्ञान की घटना भी जड़ी हुई है।

महानुभाव! दिगम्बर समाज स्त्रीमुक्ति की तो मना करता है, फिर वह चंदनबाला और मृगावती के केवलज्ञान और उसके आदि कारण रूप सूर्य चंद्र के अवतरण को अपने शास्त्र में कैसे दाखिल करे! बस इस कारण से ही दिगम्बर शास्त्रोंने इस घटना को अपनाया नहीं है।

यहां सूर्य और चंद्र का मूल विमान के साथ आना और कृत्रिम विमान से ज्योतिर्मंडल का कार्य करना, ये सब आश्चर्य रूप हैं।

दिगम्बर-इन २० उपसर्गों के वास्तविक स्वरूप जाणने पर श्वेताम्बर और दिगम्बर में कोन सच्चा है और कोन जूठा है? उसका ठीक ज्ञान हो जाता है।

जैन-जब तो आपने इस विषय में श्वेताम्बर कितने प्रमाणिक है? उसका ठीक निर्णय भी कर लीया होगा। अस्तु।

वाकई में जो सच्चा है वह सदा सच्चा ही रहता है।

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

दूसरा भाग समाप्त

For Private And Personal Use Only

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailassagarsuri Gyanmandir

श्री चारित्र स्मारक ग्रन्थमाला प्रकाशित पुस्तक

नं.	नाम	मूल्य
१०	जैनाचार्यों (सचित्र)	०—४—०
११	विश्व रचना प्रबंध (सचित्र)	१—८—०
१२	दिनशुद्धि-दीपिका (विश्वप्रभा)	२—८—०
१७	जैन तीर्थोनो नकशो	०—८—०
१९	बृहद् धारणा यंत्र	०—८—०
२०	विहार दर्शन (भाग १, २)	१—४—०
२२	पट्टावली समुच्चय भा० १	१—८—०
२४	तपगच्छ श्रमण वंशवृक्ष (सं० दूसरा)	१—०—०
२६	श्री चारित्रविजय (गु०)	१—४—०
	,, चरित्र (हिन्दी)	...
२८	प्राकृत लक्षण (चंडकृत)	...
२९	श्री चारित्र पद्यावली	०—२—०
३०	जगद्गुरु का पूजास्तवनादि	
३१	श्वेताम्बर-दिगम्बर भा० १, २	२—४—०

श्री शारदा मुद्रणालय—पानकोर नाका—अमदावाद.

For Private And Personal Use Only